कुतब शतक
और उसकी हिन्दुई

डॉ० माताप्रसाद गुप्त

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

लोकोदय ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक-२४३
सम्पादक एवं नियामक :
लक्ष्मीचन्द्र जैन

Lokodaya Series : Title No. 243
KUTAB SHATAK
AUR USKEE HINDUI
(Thesis)
DR. MATAPRASAD GUPTA
Bharatiya Jnanpith
Publication
First Edition 1967
Price Rs. 7.00

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय-केन्द्र
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम संस्करण १९६७
मूल्य ७.००

सन्मति मुद्रणालय,
वाराणसी-५

प्रियवर

मुकुन्द और माधव

को

प्रस्तावना

पुरानी खड़ी बोली एक साहित्य-रंक भाषा मानी जाती रही है, और इसे साहित्यमें सर्वप्रथम प्रयुक्त करनेका श्रेय दक्षिण भारतके उन सूफी कवियो और लेखकोंको दिया जाता रहा है जो उत्तर भारतसे वहाँ गये थे। आठ वर्ष हुए रोडा कृत 'राउल वेल' नामका एक शिलांकित काव्य प्रकाशमें आया, जो ईसवी ११वीं शती का है। अब यह एक सुसम्पादित रूपमें अपनी भाषाके अध्ययन-विश्लेषणके साथ 'राउल वेल और उसकी भाषा' नामसे प्रकाशित भी है (सम्पादक—प्रस्तुत लेखक, प्रकाशक—मित्र प्रकाशन (प्रा०) लिमिटेड, प्रयाग)। इसमें एक टक्की रमणीका वर्णन है, जो रचनाकी अन्य छः रमणियोंकी भाँति ही उसकी अपनी भाषामें किया गया है। यह वर्णन कुछ पंक्तियोंका ही होते हुए भी खड़ी बोलीका प्राचीनतम रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है, और इससे ज्ञात होता है कि खड़ी बोली केवल दिल्ली-मेरठकी ही भाषा नहीं थी, वह टक्क की भी भाषा थी, जो पहले पंजाब और अब हरियाणा प्रदेशमें आता है, और इससे यह भी प्रमाणित होता है कि खड़ी बोली भाषा और साहित्यका इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना उत्तर भारतकी अन्य आधुनिक भाषाओंका है : 'राउल वेल' में ही टक्कीके अतिरिक्त हमें पहली बार राउली (वर्तमान पश्चिमी राजस्थानी), मालवी, मराठी, गौड़ी (बंगला), ब्रज तथा अवधीके प्राचीनतम प्रामाणिक रूप उपलब्ध होते हैं। किन्तु इस 'राउल वेल' की टक्की और दक्खिनीके बीचकी कड़ी उपलब्ध नहीं थी। बीचकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जिसपर आश्चर्य है कि विद्वानोंका ध्यान अभीतक नहीं गया था, गोरखनाथकी वाणियाँ हैं। गोरखनाथकी वाणियों और उनकी भाषा का रूप सन्दिग्ध माननेके कारण ही कदाचित् उनकी ऐसी उपेक्षा हुई है। किन्तु विश्लेषणसे यह निश्चित रूपसे प्रमाणित हुआ है कि गोरखनाथकी वाणियोंकी भाषा पूर्वीय हिन्दी न होकर—जैसा सामान्यत: माना जाता है—पुरानी खड़ी बोली है (दे० आदिकालीन हिन्दी भाषा'—प्रस्तुत लेखक-द्वारा लिखित और शीघ्र प्रकाशनीय)। उसके बादकी और अधिक साहित्यिक कड़ी प्रस्तुत 'कुतब शतक' है, जिससे न केवल पुरानी खड़ी

बोलीके भाषा-रूप पर एक अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण प्रकाश पड़ा है, वरन् जिसने एक तो यह प्रमाणित कर दिया है कि ललित साहित्यमें खड़ी बोलीका भी प्रयोग उतना ही प्राचीन है जितना कि उत्तरी भारत की किसी भी बोली या भाषाका, और दूसरे यह कि सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्योंके जिस रूपसे हम अब तक परिचित रहे हैं, उससे भिन्न और किंचित् स्वतन्त्र रूप भी प्रचलित था, जो इस रचनाके साथ पहली बार प्रकाशमें आ रहा है और इस दृष्टिसे यह रचना दाऊद की 'चांदायन' के समकक्ष है।

पाँच वर्षोंसे अधिक हुए जब मैं राजस्थान विश्व-विद्यालय जयपुर में था, वहाँ के हिन्दी विभागके एक प्राध्यापक और 'राजस्थानी भाषा और साहित्य (सं० १५००–१६५०)' के विद्वान् लेखक डॉ० हीरालाल माहेश्वरीसे इस महत्त्वपूर्ण कृति और इसके वार्त्तिक तिलककी सर्वाधिक प्राचीन प्रतियोंकी, जो बीकानेरके अनूप संस्कृत पुस्तकालयमें हैं, अपने लिए की हुई प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुईं। उदयपुर जाने पर श्री मुनि कान्तिसागरसे उसकी एक अन्य प्राचीन प्रति प्राप्त हुई। इसी प्रकार श्री मुनि जिनविजयजीकी कृपासे जोधपुर-के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानसे उसकी एक अन्य प्राचीन प्रति मिल गयी। रचना-की कतिपय अन्य प्रतियाँ भी मिलती है, किन्तु सर्वाधिक प्राचीन प्रतियाँ ये ही हैं, और रचनाके पाठ-सम्पादनके लिए ये पर्याप्त लगीं, इसलिए इनकी सहायता-से रचनाका यह संस्करण उस समय मैंने तैयार कर भारतीय ज्ञानपीठको दे दिया था। सन्तोष है कि अब यह प्रकाशित हो रहा है।

इस संस्करणकी आधार-भूत प्रतियोंके लिए बीकानेरके अनूप संस्कृत पुस्तकालयके अधिकारियों और डॉ० हीरालालका, जोधपुरके प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान और उसके सम्मान्य निदेशक श्री मुनि जिनविजय जी, एवं उदयपुर के श्री मुनि कान्तिसागर जीका हृदयसे आभारी हूँ, जिनकी सौजन्यपूर्ण सहायता-के बिना यह कार्य असम्भव था, और, प्रकाशनके लिए भारतीय ज्ञानपीठके अधिकारियोंको धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने कृतिको इस सुन्दर रूपमें प्रकाशित किया है।

मुंशी विद्यापीठ,
आगरा,
३. ९. १९६६

—माताप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

भूमिका

कुतब शतक की हिन्दुई

कुतब शतक

कुतब शतक का वार्तिक तिलक

■ ■

भूमिका

•

प्रतियाँ

इस रचनाकी सर्वाधिक प्राचीन प्रतियाँ तीन हैं, जो निम्नलिखित हैं—

१. (अ०) : अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेरकी प्रति, जिसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति कुतब शतकं समाप्तं । संवत् १६३३ वर्षे । आषाढ़ मासे कृष्ण पक्षे सप्तम्यां तिथौ सोमवासरे घटिका ४८ पल० ४ उत्तर भाद्रपद नामयौमध नक्षत्रे घटी ६० पल० सौभाग्य नाम्नि योगे घटी ३ पल ३ राज्य श्री संग्राम तत्पुत्र राज्य श्री साँवलदास पठनाय कुतब दी शतकं लिलिखे । वा० श्री कनक प्रभस्यान्तेवासिना मु० सकलारथेन । वाचकस्थरनन्द तातू प्रतीहार पुरस्थ वाचकस्य श्रेयांसिभूयांसि भूयासु ।"

रचनाकी प्राप्त प्रतियोंमें सबसे अधिक प्राचीन यही है और पाठकी दृष्टिसे भी यह सबसे अधिक प्रामाणिक है। वर्तमान सम्पादन इसकी एक सावधानीसे की हुई प्रतिलिपिके आधारपर किया गया है जिसे राजस्थान विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके प्राध्यापक डॉ० हीरालाल माहेश्वरीने किया था। इस प्रतिलिपिके लिए मैं उनका हृदयसे आभारी हूँ। प्रतिके प्रारम्भ और अन्तके पत्रोंके छायाचित्र भी उन्हींके सौजन्यसे प्राप्त हुए हैं।

२. (ध०) : प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुरकी प्रति, जो उसके सम्मान्य निदेशक श्री मुनि जिनविजयजीके सौजन्यसे प्राप्त हुई थी, और जिसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति श्री कुतबशतं समाप्तं। श्री संवत् १६७० वर्षे वैशाख मासे कृष्ण पक्षे शनिवारे। श्री मन्नागपुरीय तपागच्छ स्वच्छातुच्छ सुगच्छ समुल्लासन सजल जलधराणां श्री अमरकीर्ति सूरीश्वराणां शिष्य धर्मकीर्तिनालेखितं श्री बेला सांकरसी श्री नागपुर मध्ये।"

यह रचनाकी दूसरी प्राचीनतम प्रति है और पाठकी दृष्टिसे पर्याप्त महत्त्व-की है। इस प्रतिके उपयोगके लिए मैं श्री मुनिजीका आभारी हूँ।

३. (का०) : मुनि श्री कान्तिसागर, उदयपुरकी प्रति जिसकी पुष्पिका निम्नलिखित है—

"इति श्री कुतब दी साहिबां बात सम्पूर्णम्। शुभं भवतु। रामाय नमः। श्रीकृष्णाय नमः। कल्याणमस्तु।"

यह प्रति भी पाठकी दृष्टिसे महत्त्वकी है। इसमें लेखन-काल नहीं दिया हुआ है, किन्तु यह उपर्युक्त दूसरी प्रतिके आसपासकी ही लिखित प्रतीत होती है। इस प्रतिके उपयोगके लिए मैं मुनि कान्तिसागरजीका आभारी हूँ।

रचनाकी कुछ और भी प्रतियाँ हैं जो अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी हैं। वे उपर्युक्तसे बादकी हैं और पाठकी दृष्टिसे भी कदाचित् इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जितनी उपर्युक्त हैं। यदि ये प्राप्त हो सकीं तो अगले संस्करणमें उनका उपयोग भी किया जा सकेगा।

उपर्युक्तके अतिरिक्त रचनाके एक वार्तिक तिलक (टीका) का पाठ परिशिष्टके रूपमें दिया जा रहा है और उसकी भाषाका विश्लेषण किया जा रहा है। इसकी एकमात्र प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेरमें है और संवत् १७२२ के लिखे हुए एक गुटकेमें है। इसकी भी प्रतिलिपि उपर्युक्त डॉ० हीरालाल माहेश्वरीसे प्राप्त हुई थी, जिसके लिए मैं पुनः उनका आभारी हूँ।

पाठ-सम्पादन

रचनाकी उपर्युक्त तीन प्रतियोंमें-से अ० स्वतन्त्र पाठ-परम्पराकी है, क्योंकि उसकी एक भी विकृति अन्य दोमें नहीं मिलती है।

ध० तथा का० कहीं-कहींसे संकीर्ण सम्बन्धसे सम्बन्धित हैं और एक पाठ-परम्पराकी प्रतियाँ हैं, यह उनकी निम्नलिखित विकृतियोंसे प्रमाणित है :

१. रचनाके प्रारम्भमें दोनोंमें एक गद्य वार्तिक है। ध० में यह अपेक्षाकृत छोटा और का०मे बड़ा है। यह अ०में नहीं है और निश्चित रूपसे प्रक्षिप्त है। ध० वाले विवरण ही का०में अपेक्षाकृत अधिक विस्तार और अधिक अतिरंजित रूपमें दिये गये हैं। उदाहरणार्थ—

(१) ध० का 'एक लाख टका' का०में 'दो लाख टका' हो गया है।

(२) सम्पादित पाठके १०३.२ तथा १०४.१ दोनोंमें पूर्ववर्ती चरणसे अन्त साम्यके कारण छूटे हुए हैं।

कुछ और छोटे-मोटे विकृति-साम्यके स्थल पाद-टिप्पणियोंमें दिये गये पाठान्तरोंमें देखे जा सकते हैं। ये स्थल अधिक नही है। इसलिए यह विकृति या संकीर्ण सम्बन्ध बहुत निकटका नहीं ज्ञात होता है। इसे कहीं-न-कही दूरका ही होना चाहिए। फिर भी इतने विकृति-साम्यसे यह प्रमाणित हो जाता है कि दोनो प्रतियोंकी पाठ-परम्परा एक-दूसरेसे स्वतन्त्र नही है।

इस सम्बन्धको यदि हम व्यक्त करना चाहें तो इस प्रकार कर सकते हैं.
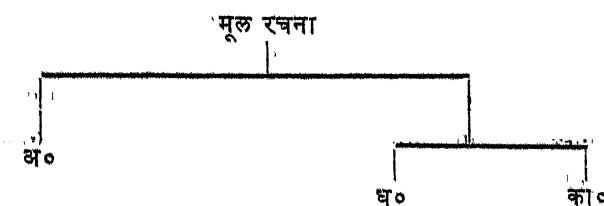
फलतः पाठ-निर्धारणमें अ० के साक्ष्यको उतना ही महत्त्व मिला है जितना ध० और का० के सम्मिलित साक्ष्यको। जहाँपर तीनों प्रतियोंका पाठ समान है, उसे स्वीकार किया गया है। जहाँपर अ० का पाठ ध० और का० में-से किसीसे भी मिल जाता है, अन्य पाठको अस्वीकार कर अ० के पाठको स्वीकार किया गया है, जहाँपर अ० में एक पाठ है और ध० तथा का० में कोई अन्य पाठ, वहाँपर जो पाठ अपेक्षाकृत प्राचीनतर और अधिक सम्भव ज्ञात हुआ है, वह स्वीकार किया गया है। जहाँपर तीनों प्रतियाँ तीन पाठ देती हैं वहाँपर प्रायः अ० के पाठको स्वीकार किया गया है। अ० के पाठको यह विशिष्ट मान्यता उसकी प्रतिकी अपेक्षाकृत अधिक प्राचीनताके कारण तो दी ही गयी है, उसका पाठ भाषा आदिकी दृष्टिसे रचनाके, प्राचीन रूपको अधिक सुरक्षित रखे हुए प्रतीत हुआ है, इसलिए भी उसको यह महत्त्व दिया गया है।

परिशिष्टमें वार्त्तिकका पाठ उसकी एकमात्र प्राप्त संवत् १७२२ की प्रतिके अनुसार दिया गया है। उसका सम्पादन भविष्यमें उसकी और प्रतियाँ मिलनेपर ही किया जा सकेगा।

रचनाका नाम

रचनाका नाम उसके पाठके बीचमें कहीं नही आता है। प्रयुक्त प्रतियोंके अन्तमें आनेवाले नाम हैं : अ० 'कुतब शतक' तथा 'कुतबदी शतक', ध० 'कुतब शत', का० 'कुतबदी साहिबां बात'। निर्धारित पाठ-सम्पादनके सिद्धान्तोंके अनुसार नाम 'कुतब शतक' होना चाहिए, क्योंकि वह अ० में तथा अपर शाखाकी प्रति ध० में 'कुतब शत' के रूपमें मिलता है। रचना वात-बन्ध (वार्ता-बन्ध) काव्यरूपमें प्रस्तुत की गयी है, इसलिए उसका अन्य नाम 'कुतबदी साहिबां बात' भी सार्थक है।

किन्तु प्रयुक्त तीनमें-से एक प्रतिमें भी छन्दों या अनुच्छेदोंकी संख्या सौ या उसके आसपास नही है। इनकी संख्या किसी प्रतिमें आदिसे अन्त तक किसी क्रमसे दी हुई भी नहीं है। केवल अ० में कुछ दूर तक क्रम-संख्या दी हुई है, बादमें पुनः नयी क्रम-संख्याएँ हैं। उसमें ४७ तक तो क्रम-संख्या एक है, उसके बाद विभिन्न प्रसंगोंमें आनेवाले दोहोंकी क्रम-संख्याएँ मात्र है और वे स्वतन्त्र हैं। शेष प्रतियोंमें इतना भी नहीं मिलता है। इसलिए इन ४७ अनुच्छेदोंकी संख्या-पद्धति देखकर शेष-रचनामें भी अनुच्छेदोंकी क्रम-संख्याएँ प्रस्तुत सम्पादकने लगा दी हैं। इस प्रकार संख्याएँ देनेपर रचना ११४ अनुच्छेदोंमें समाप्त हुई है, और उसका 'शतक' नाम भी सार्थक हो सका है।

वार्त्तिकमें अनुच्छेद भी नहीं थे। आगेके विवेचनोंमें उसके स्थल-निर्देशके लिए तथा यों भी उसका अभिप्राय ठीक-ठीक समझनेके लिए प्रस्तुत लेखकने उसे १६ अनुच्छेदोंमें बाँट दिया है।

रचयिताका नाम

रचनामें कहीं भी रचयिताका नाम नहीं आता है और न उसकी प्रतियोंकी पुष्पिकाओंमें। विभिन्न प्राप्त प्रतियोंके पाठोंमें इतनी समानता है कि रचना लोक-साहित्यकी वस्तु नहीं मानी जा सकती है। है वह किसी एक कविकी कृति ही, यद्यपि उसका नाम हमें ज्ञात नहीं हो सका है। सम्भव है आगेकी खोजोंसे वह ज्ञात हो सके।

यह रचयिता सूफी रहा होगा, यह स्पष्ट रूपसे ज्ञात होता है, क्योंकि रचनाका स्वर आदिसे अन्त तक सूफ़ी है, जैसा हम आगे देखेंगे। किन्तु यह कवि हिन्दी काव्यकी परम्पराओंमें निष्णात था—यह उसकी रचनासे भली-भाँति प्रमाणित है। दोहोंकी रचना तो उसने इतनी कुशलता और कला-

त्मकताके साथ की है कि वे अपभ्रंशके सर्वोत्कृष्ट दोहोंकी परम्परामें रचे हुए प्रतीत होते हैं। उसके गद्यकी भाषा सुथरी बोलचालकी हिन्दुई है, जिसमे तुकोंके लिए आग्रह है, जो मध्ययुगीन गद्यकी विशेषता थी।

वार्त्तिक-लेखकने भी अपना नाम वार्त्तिकमें नहीं दिया है और न प्रतिकी पुष्पिकामें उसका नाम आता है। सम्भव है आगेकी खोजोंसे ही इस 'वार्त्तिक-तिलक'के रचयिता और उसके पूर्ण पाठका भी ज्ञान हो सके।

रचना-तिथि

रचनामें रचना-तिथि नहीं दी हुई है: उसके प्रारम्भ और अन्त केवल कथाके प्रारम्भ और अन्तके है, रचनाके विषयके नहीं। रचनाकी प्राचीनतम प्रति संवत् १६३३ की है। यदि रचना इसके ७५-७६ वर्ष पूर्वकी भी मानी जाये तो इसका रचना-काल सन् १५०० ई० के आसपास होना चाहिए। भाषाकी दृष्टिसे रचना कदाचित् इससे भी पूर्वकी होनी चाहिए, जैसा हम आगेके विवेचनसे देखेंगे, बादकी नहीं। मेरा अपना अनुमान है कि रचना पन्द्रहवीं शती ईसवीकी होनी चाहिए। उत्तरी भारतकी पुरानी खडी बोलीकी कोई तिथियुक्त रचना प्राप्त होनेपर ही इसकी रचना-तिथिके सम्बन्धमें और अधिक निश्चयपूर्वक कुछ कहा जा सकेगा।

वार्त्तिक तिलककी तिथि भी इसी प्रकार अनिश्चित है। उसकी प्राप्त प्रति संवत् १७२२ की है। उसका रचना-काल यदि प्रतिलिपि-तिथिसे ७५-७६ वर्ष पूर्व माना जाये तो वह संवत् १६४७ के आसपास पड़ेगा। इस प्रकार वह ईसवी सोलहवीं शतीके अन्तकी होनी चाहिए। उसकी भाषा, जैसा हम आगे देखेंगे, 'कुतब शतक' की भाषासे कमसे कम एक शती बादकी होनी चाहिए, यह तथ्य भी इसी अनुमानकी पुष्टि करता है। इसकी रचना-तिथिका भी अनुमान उत्तरी भारतकी खड़ी बोलीकी कोई तिथियुक्त रचना प्राप्त होनेपर अधिक निश्चयात्मकताके साथ हो सकेगा।

कथा-सार

[अनु० १-११] दिल्लीका एक दावर (न्याय-कर्ता) दानिशमन्द नामका था। उसकी एक ढाढिनी थी, जिसका नाम देवर (देवल) था। दावरकी एक कन्या थी, जिसका नाम साहिबा था। इस साहिबासे प्रीति होनेके कारण उसे उसने एक बड़ा वचन दे डाला और वह यह था कि उसका विवाह वह शाहज़ादेसे करायेगी। दिल्लीमें फीरोजशाह राज्य करता था, जिसका शाहज़ादा कुतुबुद्दीन

जवान हो गया था, किन्तु उसे अब भी अपनी लज्जालु माता बीबी बिवानीके द्वारा नियुक्त पाँच सौ वृद्धा परिचारिकाओंसे घिरा रहना पड़ता था। ये परिचारिकाएँ इसलिए नियुक्त थीं कि शाहज़ादेपर बाहरकी दुनियाका कोई असर न हो। यह देखकर उस शाहज़ादेसे मिलनेकी उस डाकिनीने एक युक्ति निकाली। उसने मालिनका वेष किया और एक छाबड़ेमें पक्की नारंगियाँ लेकर वह शाहज़ादेके पास पहुँच गयी। शाहज़ादेने उससे नारंगियाँ क्रय कर पाँच सोनेके टके दिये और नारंगियाँ दो-दो चार-चार करके उसने उपस्थित परिचारिकाओंको बाँट दीं। उस समय वह मालिन चली गयी, किन्तु थोड़ी देर बाद वह लौटकर पुनः आयी और अपनी नारंगियाँ वह शाहज़ादेसे यह कहकर वापस माँगने लगी कि वे एक-एक मुहरकी दावर दानिशमन्दकी कन्याके द्वारा माँगी जा रही थीं। शाहज़ादेने कहा कि वे खायी जा चुकी थीं। डाकिनीने कहा कि वह एक नहीं सुन सकती थी और यदि नारंगियाँ वापस न हुईं तो वह सुलतानसे कहने जा रही थी। शाहज़ादेने पूछा कि वह कौन-सी और कैसी कन्या थी जो इतने अच्छे दाम दे रही थी। इस प्रश्नपर उस मालिनने अपना वास्तविक परिचय दिया और शाहज़ादेको अपना अभिप्राय बताया। तदनन्तर वह उस कन्याका नख-शिख वर्णन करने लगी और उसने उसके अंगोंका विशद वर्णन किया। शाहज़ादेने विश्वास नहीं किया और कहा कि यदि वह उसे साथ ले चलकर उस कन्याको दिखाती तो उसे ही विश्वास हो सकता था। मालिनने कहा कि वह जुमरात (बृहस्पति) को मिल सकती थी यदि राजकुमार फ़क़ीर बनकर दावरके यहाँ पहुँचता और अन्य फ़क़ीरोंके साथ उबले हुए गरम चावलोंकी याचना करता। यह कहकर वह चली गयी।

[अनु० २०-२७] जुमरात आयी और शाहज़ादा जुमा मसजिदमें पहुँचा, जो दावरके घरसे मिली हुई थी। वहाँ उसने देखा कि झुण्डके झुण्ड दरवेश आये हुए थे जिनमें-से बहुतेरे दावरके घरसे उसकी सहन तक किसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु उसे देखकर वे तमाम दरवेश यह कहते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे कि ख़ुदाका फ़रिश्ता आया हुआ था। इस हलचलका लाभ उठाकर शाहज़ादेने उनके छोड़े हुए फ़क़ीरी उपकरणोंको धारण कर लिया और जिस समय सुलतान नमाज़के लिए गया, वह दावरके दरवाज़ेपर जा पहुँचा और वह भी अन्य दरवेशोंके साथ उबले हुए गरम चावलोंकी याचना करने लगा। दावरकी कन्या वहाँपर उस डाकिनीके साथ उपस्थित थी। डाकिनीने शाहज़ादेको उसे दिखलाया। दोनोंने एक-दूसरेको देखा और वे पारस्परिक आकर्षणसे आबद्ध हो

गये। शाहज़ादेने सोचा कि वह दावरकी उस कन्याको भगा ले जाये और इसके कन्धे भी फड़कने लगे। ढाढ़िनी यह ताड़ गयी। उसने सोचा कि यदि यह उसे भगा ले गया तो लोग उसे ही बदनाम करेंगे, इसलिए उसने शाहज़ादे-से संकेतोंमें कहा कि कुछ समय तक वह और प्रतीक्षा करे; किन्तु इसी अवसर-पर शाहज़ादेके प्रति दावरकी कन्याने अपने प्रणयका निवेदन किया और शाह-ज़ादेने वचन दिया कि वह आमरण उससे प्रेम करेगा।

[अनु० ३८-५१] नमाज़ खत्म करके सुलतान और उसके पीछे-पीछे शाह-ज़ादा वापस हुए। शाहज़ादा अपनी माता बीबी बिवानांके महलमे गया और वहींपर पर्यंकमें पड़ गया। उसकी दशा बिगड चली। सवेरा हुआ। वैद्य उपचार करने लगे, दानिशमन्द झाड़-फूँक करने लगे, किन्तु कोई लाभ न हुआ। दानिशमन्दोंको देखकर वह चिल्ला पडता, 'अरे यह साहिबांकी नजर है, साहिबांकी नजर है, (जिसके कारण) न मैंने रात जानी है और न फ़जर (प्रात) जाना है।" बादशाहने सुना तो वह कुपित हुआ कि दरवेशोंने उसपर नजर कर दी है। किन्तु बीबी बिवानांको विश्वास यह था कि फ़कीरोंकी दुआओंसे वह चंगा हो जायेगा और उसने प्रचुर धन शाहज़ादेपर वारकर फ़क़ीरोंको दिया। फिर भी शाहज़ादेकी दशामें कोई सुधार न हुआ और जब भी कोई दानिशमन्द उसकी झाड़-फूंकके लिए आता और अंजलिमें पानी लेता, शाहज़ादा उससे कह उठता, "अरे यह साहिबांकी नजर है, साहिबांकी नजर है, जिसके कारण न मैंने रात जानी है और न फ़ज़र (प्रातः) जाना है।" इसी प्रकार कई दिन बीत गये और कोई युक्ति न चली।

[अनु० ५२-७५] उधर साहिबां भी खाटपर पड़ गयी। ढाढिनीसे उसने नाड़ी देखनेको कहा तो ढाढिनीने उसकी नाड़ी देखकर बताया कि उसके दिल-में एक और दिल आ गया था, जिसके कारण उसकी नाड़ी दुहरी चल रही थी: एक तो उसकी थी और दूसरी शाहज़ादेकी थी, जिसके परिणामस्वरूप जब खाना उसने गरम खाया, शाहज़ादेका दिल झुलस गया; ये दोनों दिल जुड़े ही रहनेवाले थे और जुड़े हुए ही इस लोकसे विदा होनेवाले थे। यह कहकर उसने वैद्याका वेष बनाया और सुलतानके दरबारमें उपस्थित हुई। लोग उसे वहाँ ले गये जहाँपर शाहज़ादा पड़ा हुआ था। ज्योंही उसने अंजलिमें पानी लिया, शाहज़ादा पुनः पूर्ववत् चिल्ला उठा। वैद्याने उसे ढाढ़स दिलाया और नाड़ी दिखानेको कहा। राजकुमार उसे पहचान गया। वैद्याने रोगका निदान कर लिया और रोगीने भी उस रोगको स्वीकार कर लिया। शाहज़ादेने नेत्र

खोल दिये। बिवानाँ द्रव्य लुटाने लगी। बैद्याने ढोलक मँगायी और उसकी तालपर वह गाने लगी। जैसे ही उसने एक दूहा गाया, शाहज़ादा उठ बैठा। दूहेमें उसने बताया कि साहिबाँके हृदय-सरोवरमें अब वह हंस बनकर केलि कर रहा था, किन्तु उसकी दशा अब शोचनीय हो रही थी। यह सुनते ही शाह-ज़ादेका शरीर काँपने लगा। बीबी बिवानाँने इसका कारण पूछा तो बैद्याने बताया कि शाहज़ादेके दिलमें एक और दिल आ गया था, इसलिए ऐसा हो रहा था और कहा कि शाहज़ादेके स्वस्थ होनेका एकमात्र यही उपाय था कि दोनों दिल मिल जाते, अन्य कोई युक्ति काम नहीं कर सकती थी। उसने बताया कि शाहज़ादा और दावर दानिशमन्दकी कन्याने एक-दूसरेको जुमा मसजिदमें भरपूर देख लिया था, जिससे दोनोंकी यह हालत हो गयी थी। बिवानाँने जाकर यह बात सुलतानसे कही। सुलतान दौड़ा-दौड़ा दावरके पास आया और उससे बताया कि शाहज़ादा जी गया है, पर अब उसे अपनी कन्या-का विवाह उसके साथ करनेके लिए प्रस्तुत होना चाहिए। दावरने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया।

[अनु० ७६-८८] विवाहकी तैयारी हुई। बीबी बिवानाँके साथ शाहज़ादा दावरके दरवाज़ेपर पहुँचा। इस अवसरपर डाढिनी अपने सच्चे रूपमें उपस्थित हुई और उसने सेहरा गाया। विवाह सम्पन्न हुआ। साहिबाँ शाहज़ादेके साथ बिदा होकर उसके घर गयी। सवेरा होनेपर डाढिनी शाहज़ादेके घरपर गयी और उसने दोनोंके प्रथम रात्रिके मिलनका वर्णन गीतोंमें किया। अब दोनोंके दिन नित्य-नवीन केलिके साथ व्यतीत होने लगे।

[अनु० ८९-१००] ऋतु बदली। वसन्तके बाद ग्रीष्मका आगमन हुआ। प्रासादको ग्रीष्मोचित उपकरणोंसे सज्जित किया गया। शाहज़ादेको भोग और योगमें समान रुचि थी। गायक कभी उसे भोगके गीत सुनाते, कभी योगके, यह सोचकर कि न जाने उसे दोनोंमें कौन-से रुचें। एक दिन दो नटिनियाँ आकर खड़ी हुईं। एक योगिनीका स्वांग किये हुए थी और दूसरी भोगिनीका। योग और भोगके समर्थनमें दोनोंने अपने-अपने दूहे कहे और फिर वे चली गयीं।

[अनु० १०१-११४] रात्रि होने लगी थी, शाहज़ादेको कुछ ठण्ड-सी लगी। उसने साहिबाँसे आसव मँगाया। साहिबाँ दौड़ी-दौड़ी गयी। दो बार उसने प्याले भर-भर कर दिये। तीसरी बार जब वह प्याला भरने गयी, उसके हाथमे प्याला गिरकर टूट गया। वह डरती हुई सासके पास गयी। शाहज़ादे-ने देखा कि वह देर तक नहीं आयी थी, तो वह उसकी खोजमें निकला। फर्श-

पर बिछी हुई अबीरमें उसे साहिबाँके पदचिह्न दिखाई पड़े और साथ ही वह प्याला भी टूटा मिला। वह हँस पड़ा और मनमें उसने कहा, "मैंने करोड़की खैरात करनेका अपने मनमें संकल्प किया था और यह .खूब रहा कि पत्थरोंका यह प्याला टूट गया और उससे डरकर मेरी पत्नी भाग गयी।" इतनेमें उसकी माँ वहाँ आ पहुँची। शाहज़ादा सकुच गया। माँने कहा, "साहिबाँने हमें .खून [करनेका जैसा जुर्म] दिया।" शाहज़ादेने पूछा, "माँ, .खून क्या ?" माँने कहा, "साठ लाखका क्रय किया हुआ प्याला टूटा पड़ा है; और क्या .खून ?" शाहज़ादेने कहा, "माँ, मैं तो सुलतान फ़ीरोजशाहका उत्पन्न किया हुआ और समरकन्दकी शाहज़ादी बीबी बिबानाँका जन्म दिया हुआ हूँ—साहिबाँका न्याय [भले ही] उसके पिता दावरके पास हुआ करे।" यह कहकर जब उसने लाल-निर्मित दो पात्र मँगाये तो न जाने कितने आ गये और एक-एक करके उन सबको उसने माताके सिरपर वार—फेरकर तोड़ डाला। उस समय सारी धरती लाल हो रही थी। सुलतानने सुना। उसने जौहरियोंको बुलाकर उनकी क़ीमत अँकवायी। उन्होंने बताया कि तीन अरब बासठ करोड़ बारह लाखकी सम्पत्ति कुतुबुद्दीनने गँवा दी थी। सुलतानने हुक्म दिया कि टुकड़े भण्डारमें रख दिये जायें। कुतुबुद्दीनने निवेदन किया, "उत्तराधिकारमें टुकड़े पाऊँगा तो तुम्हारा नाम न चलेगा।" सुलतानने कहा, "तू जो चाहे सो करे, यह सब तेरा ही है।" सुलतानने हुक्म दिया; वे टुकड़े गवाक्षोंपर चुन दिये गये, फ़क़ीर उन्हें लूटने लगे और बाजे बजने लगे।

रचनाकी ऐतिहासिकता

रचनामें वर्णित घटनाएँ किसी इतिहास-ग्रन्थमें नहीं मिलती हैं। उसमें सुलतान फ़ीरोज़शाह, बीबी बिश्रानाँ, शाहज़ादा कुतुब, दावरकी कन्या साहिबाँ, दावर दानिशमन्द तथा देवर ढाढिनीके नाम आते है। अलग-अलग फ़ीरोज़शाह और कुतुब नामके एकसे अधिक सुलतान और शाहज़ादे इतिहासके पृष्ठोंमें मिलते है, किन्तु किसी सुलतान फ़ीरोज़के साथ शाहज़ादेके रूपमें किसी कुतुबका नाम उनमें नहीं मिलता है। इतिहासमें प्रायः उन्हींके नाम आते है जो या तो गद्दीपर बैठते हैं, या तो किसी प्रकारका इतिहासमें उल्लेख-नीय कार्य करते हैं। इस कथामें कुतुब ऐसा कोई कार्य नही करता है जो ऐतिहासिक महत्त्वका हो, और न सुलतान फ़ीरोज़शाह ही कोई ऐसा कार्य करता है जो उसकी जीवनीमें उल्लेखनीय महत्त्वका माना जा सकता। इसलिए यदि वर्णित घटना अथवा रचनाके पात्रोंपर इतिहाससे कोई प्रकाश नहीं

पड़ता है तो आश्चर्य न होना चाहिए। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वर्णित कथा सर्वथा कल्पित है। रचनामें कल्पनाके पुटके साथ वास्तविकताके तत्त्व होंगे, ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है। किन्तु कथा, कथा ही है, इतिहास नहीं। इसलिए यदि इतिहासके साक्ष्य उसकी पुष्टि न करते हों तो भी रचनाका महत्त्व एक ऐतिहासिक लघुकथाके रूपमें निश्चित है और निस्सन्देह यह रचना मुग़ल साम्राज्यकी स्थापनाके पूर्वके भारतीय वायुमण्डलमें पनपते हुए सूफी दर्शनसे प्रभावित इस्लामी जीवनपर अच्छा प्रकाश डालती है। यह कहना अनावश्यक होगा कि हिन्दीमें अपने ढंगकी यह अकेली रचना है, भारतकी अन्य भाषाओंमें भी कदाचित् ऐसी रचनाएँ कम ही होंगी।

रचनाकी कथा-सम्पत्ति

रचनाकी कथा-सम्पत्ति साधारण है। नायक-नायिकाके जीवनकी दो ही घटनाएँ सामने रखी गयी हैं: एक है उनका पति-पत्नीके रूपमें बँधना और दूसरी है कुछ बहुमूल्य पात्रोंका तोड़-तोड़कर फ़क़ीरोंमें वितरित करना।

पहली घटनाके लिए कवि एक चतुरतापूर्ण युक्तिका आश्रय लेता है: वह एक ढाढिनीकी कल्पना करता है जो मालिन, वैद्या और ढाढिनी—तीन रूपोंमें कथाको आगे बढ़ानेमें समर्थ होती है। मालिन बनकर वह शाहज़ादेसे साहिबाँके रूपकी चर्चा करती है और उसे उससे मिलनेके लिए प्रेरित करती है, शाहज़ादेके विरहोन्मादका वैद्या बनकर उपचार करती है और जब दोनों विवाह-द्वारा एक-दूसरेको प्राप्त करते हैं, सेहरा और मिलन-यामिनीके गीत गाकर उनका मनोरंजन करती है। इसके बाद ही वह कथासे अलग हो जाती है। इस प्रकारकी दूतीकी कल्पना मध्ययुगमें बहुत प्रचलित रही है, और रचनामें इस विषयमें कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ती है। उसके द्वारा किया हुआ रूप-वर्णन, और नायिका तथा नायकके रोगोंका निदान अवश्य सरस और विनोदपूर्ण है।

दूसरी घटनाके लिए नायिका-द्वारा एक बहुमूल्य प्यालेके फूटने और उसके कारण उसकी सासके कुपित होनेके प्रसंग जुटाये गये हैं। इस दूसरी घटनाके पूर्व कविने दो छोटे-छोटे संकेत और रखे हैं जो आनेवाली घटनाके लिए पाठकको तैयार करते हैं: एक तो गायकों-द्वारा योग (ज्ञानयोग) और भोग (प्रेमयोग) के गीतोंका गाया जाना—और यह सोचकर गाया जाना कि दोनों विषयोंमें-से पता नहीं कौन-सा नायकको रुचे, दूसरा दो नटिनियोंका

योगिनी और भोगिनीके वेषमें उपस्थित होना और अलग-अलग ज्ञानयोग तथा प्रेमयोगकी प्रशंसा करना। पहला संकेत तो सर्वथा अविकसित है, किन्तु दूसरा कलात्मकताके साथ विकसित किया गया है, जैसा हम आगे देखेंगे। कुछ ऐसा लगता है कि शाहज़ादा इस समय जीवनके एक मोड़पर आ गया था। जीवन-की सार्थकताके सम्बन्धमे वह चिन्ता करने लगा था, यद्यपि यह चिन्ता कवि-की रचनामे सर्वथा मूक है। इसी समय प्यालेके अकस्मात् टूटने और उसपर एक बवण्डर खडे होनेकी घटना घटित होती है, जो उसकी परमार्थ-वृत्तिको और भी उद्दीप्त कर देती है और वह एक अप्रत्याशित ढगसे अपनी उस वृत्तिको अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

नायकके चरित्रमें यह मोड़ किस प्रकार आता है, इसको अंकित करनेका कविने कोई प्रयास नही किया है। उपर्युक्त घटनाके बाद शाहज़ादेका जीवन किस दिशामें प्रवाहित होता है, यह जाननेकी भी उत्सुकता पाठकके मनमे बनी रह जाती है। वर्णित घटना तो उसके परमार्थ-पथका प्रथम चरण मात्र है।

दोनों घटनाओंमें कोई सम्बन्ध भी नहीं ज्ञात होता है। कुछ-कुछ ऐसा लगता है जैसे विवाह होता या न होता, दूसरी घटना किसी-न किसी रूपमें कोई-न-कोई बहाना पाकर अवश्य ही घटित होती। नायकके परमार्थ-पथमे नायिकाका प्राप्त होना उसका प्रथम चरण भी नही प्रतीत होता है। नायिका-को प्राप्त करनेमें नायकको बाधा होती है और उसको अनायास न पानेके कारण वह विरहोन्माद-रुग्ण हो जाता है, नायककी इतनी ही तपस्या उसकी प्रेम-साधनामें दिखाई पड़ती है।

किन्तु यह निश्चित ज्ञात होता है कि कथा एक सूफ़ी कथा है, जिसमें प्रेम-योग और ज्ञान-योगका अच्छा पुट दिया गया है। कथाका पूर्वार्द्ध सम्भवतः प्रेम-परक है और उत्तरार्द्ध सम्भवत. त्याग-परक, यद्यपि यह भी बहुत स्पष्ट नहीं है।

पर यह सूफ़ी कथा अन्य सूफ़ी कथाओंसे किंचित् भिन्न है, फ़ारसकी सूफ़ी कथाओंमें प्रेमपात्रकी निष्ठुरता और प्रेमीके उससे मिलनकी दुर्गमता अत्यधिक अतिरंजनाके साथ चित्रित की जाती है। इस कथामें यह अतिरंजना नहीं है। अवधीकी सूफी कथाएँ या तो विवाह और मिलन-यामिनीपर समाप्त हो जाती है, और या तो दुःखान्त रूपमें नायक-नायिकाके जीवनकी समाप्ति अंकित करती है। इस कथामें यह भी नही है। इस कथाकी अन्तिम घटना जीवनमें दान और त्यागका महत्त्व अंकित करती है।

सब-कुछ मिलाकर रचनाकी कथा-सम्पत्ति सामान्य ही ज्ञात होती है, उसका महत्त्व इस बातमें है कि अबतक प्राप्त हिन्दीकी सूफ़ी प्रेमकथाओंको पढ़कर उनके सम्बन्धमें जो हमारी धारणा बनी थी, इस कथाको पढ़कर उसमें कुछ संशोधन करना आवश्यक प्रतीत होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि अवधी क्षेत्रमें सूफ़ी प्रेमकथाओंकी एक परम्परा विकसित हुई थी जबकि हिन्दी-की अन्य बोलियोंके क्षेत्रोंमें उससे किंचित् भिन्न सूफ़ी काव्य-परम्पराएँ विकसित हुई थी, जिनपर आगेकी खोजोंसे अधिक प्रकाश पड़ेगा।

रचनाकी भाव एवं विचार-सम्पत्ति

रचनाकी प्रथम घटना भाव-सम्पत्ति प्रधान है। नायक और नायिका परस्पर दर्शनके अनन्तर विरह-व्याधिसे रुग्ण हो जाते है। नायिका तो फिर भी मर्यादाओंके भीतर रहती है, नायक मर्यादाओंका अतिक्रमण कर जाता है। वह उन्मादग्रस्त हो जाता है और तभी स्वस्थ होता है जब उसे नायिकाके प्राप्त होनेका विश्वास हो जाता है। किन्तु प्रेमयोगकी इस कथामें भाव-कल्पना सामान्य है। आशा और निराशाके द्वन्द्वों, उद्देश्य-प्राप्तिके मार्गकी बाधाओं और उनसे संघर्ष करनेकी भावनाओंका विकास कथामें नहीं किया गया है। पहले कविने संकेत तो किया है कि सुलतान दोनोंको मिलने न देगा :

"साहिजादे साहिब्बियाँ साहि करंदे लल्लि।
लज्जा लोयिन नच्चणां लोइ हसंदे कल्हि ॥३४॥"

तथा

"साहिबा साहिब्यां बिरह जइ जीवंदा जाइ।
लज्जा लीक उलंघणी सिर पर पेरो साहि ॥६५॥"

किन्तु आगे इस सूत्रका विकास बिलकुल नहीं किया है। यह ठीक है कि उन्माद-ग्रस्त पुत्रके स्वस्थ होनेका एकमात्र उपाय उसकी मनचाही प्रेयसीका प्राप्त होना था, यह समझकर ही सुलतानने उक्त सम्बन्धके लिए अपनी स्वीकृति दी होगी, किन्तु एक क्षणके लिए भी तो इस प्रकारकी विवशताका भाव कविने सुलतानमें अंकित किया होता। जैसे ही शाहजादेकी माता उससे पुत्रके रोगका कारण बताती है और उसका उपाय करनेको कहती है, सुलतान कह उठता है :

"जहमतियाँ क्या जाणइ।
जिमी आकास तल होइ तउ हम आणइ।"

और जब वह कहती है : "दावल दानसवंद कइ आगलि बिछाओ ऊली।" तो सुलतान बिना एक शब्द कहे उस युक्तिको मान लेता है : "सुलताण मानी। दीन दुणियां एक ठउड होत जाणी ॥७३" और वह नंगे पैरों दावरके पास दौड़ा जाता है। पुत्रका स्नेह बड़ी चीज है और उसके जीवनके लिए बहुत-कुछ किया जा सकता है। किन्तु यह सब रचनामें ऐसे ढगसे हुआ है जैसे पुत्र-मोहने सुलतानको एकदम विवेक-शून्य कर दिया हो। यह अस्वाभाविक तो नहीं है, किन्तु रचनामें भाव-सम्पत्तिकी कमीको अवश्य व्यंजित करता है।

दूसरी घटना विचार-प्रधान है। इसे कविने कुछ अधिक योग्यताके साथ पल्लवित किया है। वसन्त ऋतु समाप्त हो गयी है और ग्रीष्मका आगमन हो गया है। प्रासाद ग्रीष्मका सामना करनेके लिए सज्जित किया गया है। यह ग्रीष्म तप और साधनाका प्रतीक ज्ञात होता है। शाहज़ादेके सम्मुख जो गीत गाये जा रहे हैं वे या तो योग (ज्ञानयोग) के हैं और या तो भोग (प्रेमयोग) के। नटिनियाँ योगिनी और भोगिनीका वेप धरकर उसके समक्ष उपस्थित होती हैं और दूहे कह-कह कर अपने-अपने पक्षका समर्थन करती है। इसी समय नायिका (उसकी प्रेयसी) से प्याला टूटनेका प्रसंग घटित होता है और शाह-ज़ादेकी परमार्थ-वृत्ति एक उग्र रूप ग्रहण कर प्रकट हो पड़ती है। जहाँ वह प्याला टूटा देखता है वहीं प्रेयसीके पग चिह्न भी देखकर वह समझ जाता है कि इसी कारण वह भाग गयी है और वह हँस पड़ता है। वह कह उठता है :

"पद्दर करंदा कोडि कहि मन अप्पणइ विचारि।
पूब स पत्थर भग्गिया बिभग न भग्गी नारि ॥१०७"

और कवि कहता है :

"साहिज़ादा हसता हुइ। पग देपि देपि ऊलसता हुइ। १०८"

पुनः माँ जितनी ही इस सम्पत्ति-विनाशपर क्षुब्ध होती है, उतना ही पुत्र और भी उस सम्पत्ति-विनाशमें संलग्न होता है। पिता जब उसके टुकड़ोंको संग्रहके लिए आदेश करता है, वह इसका भी विरोध करता है और उन्हें फ़कीरोंमें वितरित करनेका अनुरोध करता है जिसे पिता स्वीकार करता है। कहना न होगा कि दूसरी घटनासे यह प्रकट है कि रचनाका प्रमुख सन्देश त्याग और दानका है जिनका सूफ़ी धर्म और इस्लाममें बड़ा महत्त्व है।

रचनाकी काव्य-सम्पत्ति और शैली

रचनामें दो स्थल कविताकी दृष्टिसे कलापूर्ण हैं, एक तो ढाढिनी-द्वारा

किया हुआ नायिकाका रूप-वर्णन और दूसरा नटिनियोंके द्वारा प्रस्तुत किया हुआ ज्ञानयोग और प्रेमयोगका तुलनात्मक स्तवन। नीचे हम इन दोनोंकी विशेषताओंपर दृष्टिपात करेंगे।

रूप-वर्णन शिख-नख-प्रणालीका है। मानवीका रूप-वर्णन इसी प्रणालीपर इस देशमें किया जाता रहा है। कवि केशोंसे यह रूप-वर्णन प्रारम्भ करता है :

"केसा के कसि बंधियाँ के छुट्टियाँ रुलंति।
जाणे सर्पनि अप्पणा चर चिट्ठआ भषंति॥ ११"

नायिकाके केश दो प्रकारके हैं : कुछ तो लम्बे हैं जो वेणीके रूपमें कसकर गूँथे हुए हैं, और कुछ छोटे है उस वेणीमें नही गुँथ सके हैं और जो हवाके लगनेसे हिल रहे है। दोनों प्रकारके ये केश एक-साथ ऐसे लग रहे हैं मानो वे छोटे बाल सर्पिणीके रेंगते हुए चेटुँए हों जिन्हें वह पकड़-पकड़कर खा रही हो। केशोंकी ऐसी गतिशील उपमा अन्यत्र देखनेमें नहीं आती है। वेणीमें न आये हुए छोटे-छोटे बाल हिल रहे हैं, इसलिए रेंगते हुए सर्पिणीके चेटुँओंसे उनकी तुलना उपयुक्त ही है, किन्तु इसके आगे भी, वे वेणीसे मिले हुए हैं, इसलिए उनके सम्बन्धमें यह उक्ति कि मानो सर्पिणी उन्हें खा रही है, एक अत्यन्त जीवन्त कल्पना है। सर्पिणी अपने बच्चोंको खा जाती है, यह प्रसिद्ध ही है।

अब वह नायिकाके नेत्रोंका वर्णन कर रहा है, जो यौवनागमके कारण चंचल हो रहे है। वह कहता है :

"अंगन चंद निलाटियाँ भ्रू तर नच्चइ नयण।
जाणे आण वधाइयाँ आगम हुंदा मयण॥१२॥"

"उस अंगनाका ललाट चन्द्रमाके सदृश है और उसकी भौंहोंके नीचे उसके नेत्र नाच रहे हैं, इसलिए वे ऐसे लगते हैं मानो वे मदनके आगमनपर बधाइयाँ लेकर प्रस्तुत हो रहे हैं।" बधाइयाँ लानेकी एक विशेष प्रथा हिन्दी प्रदेशमें प्रचलित रही है। किसी हर्षके अवसरपर—यथा पुत्रोत्पत्ति और पुत्र-विवाह पर—बहनें या बेटियाँ उपहार लेकर आती है। यह उपहार गाजे-बाजेके साथ लाया जाता है। पास-पड़ोसकी स्त्रियोंको लेकर वे गाती-बजाती-नाचती चल पड़ती हैं और इस उत्सवपूर्ण आयोजनके साथ अपने उपहार प्रस्तुत करती हैं। नायिकाके नेत्रोंमें जो चपलता आ गयी है, उसकी कल्पना कवि इसी प्रकारके नृत्यसे करता है जो मदन नरेशके आगमनपर बधाइयाँ लाते हुए प्रस्तुत किया जा रहा है। अपने प्रिय शासकके आगमनपर नेत्रोंका

उपढौकन लेकर नाचते हुए उसकी सेवामें उपस्थित होनेकी यह कल्पना बेजोड है।

अब वह नायिकाकी वेणीसे लटकनेवाले एक मोतीका वर्णन कर रहा है। वह कहता है :

> "वइंणी बंधि विलंबिया मुत्ती हेक रुलंति ।
> जाने सीप सुमुष्पीयां कंठइ कीर चुणंति ॥१३॥"

"वेणीसे बँधकर लटकता हुआ मोती (नायिकाके नेत्रोके मध्य नासिकापर) इस प्रकार लोट रहा है मानो जिस सीपी-पुटमें-से वह निकला हो उसके समक्ष ही (बैठकर) पासका शुक उसे चुगनेका यत्न कर रहा हो।" उस मोतीके प्रसंगमे नेत्रोकी सीपियोंसे तुलना कितनी सरस हो गयी है। मोतीके शुक-द्वारा चुगे जानेकी कल्पना नवीन नहीं है, नासिकाभरणोंमें पड़े हुए मोतीके सम्बन्धमें यह कल्पना प्रायः मिलती है। किन्तु इस कल्पनामें विशेषता यह है कि उस सीपीके पलकोंकी समक्षतामें ही यह मोती शुक-द्वारा चुगा जा रहा है जिससे इसकी उत्पत्ति हुई है। व्यंजना यह है कि यह बात उस सीपीको कितनी खल रही होगी जिसकी सुकुमार सन्तानकी यह दुर्गति उसके सामने हो रही है!

अब कवि नायिकाके किंचित् उभड़ते हुए उरोजोंका वर्णन कर रहा है। वह कहता है :

> "ही उट्ठा दिट्ठाइयाँ दीहा पंचइ च्यारि ।
> जाणें नी नारिंगियाँ बे अँगीया मझारि ॥१४॥"

"उसके उरोज चार-पाँच दिनोंमे ही उठते हुए दिखाई पड़ने लगे हैं और वे ऐसे हैं मानो हू-ब-हू दो नारंगियाँ उस नायिकाकी कंचुकीमें रख दी गयी हों।" यह कल्पना अवश्य लोक-साहित्यमें बहु-प्रयुक्त है और इसमें कोई उल्लेखनीय नवीनता नही है।

अब वह नायिकाकी कटिका वर्णन करता है। वह कहता है :

> "लंक धनक्कइ मुट्ठियाँ बिधि रसु रंगी बाम ।
> हत्था कांम स पीउ भउ पिय हत्था भउ कांम ॥१५॥"

"उस कामिनीकी कटिको मुट्ठीमें लेकर विधाताने जो उसे रस (प्रेम) में रँगा, उसीसे कामके हाथ पीले पड़ गये और उस कामिनीको हाथोंमें करनेकी कौन कहे, काम स्वयं उस कामिनीके हाथों (वश) में हो गया।" खिलौने

प्रायः कटि-प्रदेशसे ही पकड़कर रंगे जाते हैं, अतः कामको भी जब अपने मादक रंगसे उस कामिनी-पुत्तलिकाको रँगना हुआ होगा, उसकी कटिको उसने अपने हाथकी मुट्ठीमें लिया होगा, किन्तु परिणाम यह हुआ कि उस नायिकाके शरीरके सहज वर्णसे उसकी हथेलियाँ पीली पड़ गयीं और वह स्वयं भी उस कामिनीके वशमें हो रहा। यह कल्पना भी सरस प्रतीत होती है।

अब वह नायिकाके चरणों और उसकी उँगलियोंका वर्णन कर रहा है। वह कहता है :

"पाइ स रत्ता पंकजा अट्ठी अंगुलियांह।
जाणे राई वेलियां फूली नीकलियाह ॥१६॥"

"उसके चरण लाल पंकज हैं और उनकी उँगलियाँ ऐसी सुन्दर हैं मानो राईकी गाछमें निकली हुई फलियाँ हों।" कहना नहीं होगा कि राईकी नयी निकली हुई फलियोंसे पैरोंकी उंगलियोंकी तुलना सुन्दर है, नवीनता तो इसमें है ही।

रूप-वर्णनके ये दोहे गिनतीमें छः है, किन्तु इनमें-से कई ऐसे हैं जिनमें कल्पनाकी जीवन्तता और व्यंजकता अद्भुत मात्रामें मिलती है। सभी उपमाएँ भारतीय जीवनसे ली गयी हैं, यह भी दर्शनीय है।

योगिनी और भोगिनीका स्वाँग करके नटिनियोंने जिस ज्ञानयोग और प्रेमयोगका स्वरूप प्रस्तुत किया है, उसमें उन्होंने एकमात्र नेत्रोंका माध्यम लिया है। एक प्रेमके नेत्रोंका वर्णन करती है और उनका बखान करती है तो दूसरी ज्ञानके नेत्रोंका वर्णन करती है और उनका बखान करती है। भोगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदिए जे दिट्ठां ही पिट्ठ।
पाधर सर जिम कढ्ढीइं नेह समट्ठा निट्ठ ॥९८"

"लोचन तो वे ही देखते हुए होते हैं जो देखते-देखते प्रविष्ट हो जाते हैं और जो स्नेहसे ऐसे दृढ़ और पुष्ट होते हैं कि उनको निकालना (चुभे हुए) शरोंको सीधा निकालने जैसा (कठिन) होता है।" अनीयुक्त बाणोंको सीधे निकालनेकी कठिनाईसे नेत्र-बाणोंके निकाले जानेकी कठिनाईकी तुलना अच्छी बन पड़ी है।

योगिनी कहती है :

"लोयण ते लोयंदीइ जे लोअंदे जग्ग।
अप्पा काम कमच्छलां बहु देषंदा कग्ग ॥९३"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो जगत् (की वास्तविकता) को देखते होते हैं; अपने-आपको तथा अपने कर्म और कर्मछलको बहुतेरे काग भी देखते होते हैं।" स्वार्थी और कर्मछल-पटु व्यक्तिकी तुलना कागसे स्वाभाविक लगती है।

भोगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदीए जे पेम सु वुट्टइ धार।
रीझडियां झड मंडिकइ सव्वसु अप्पए हार ॥९४"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो प्रेम धाराकी वृष्टि करते है और रीझ जानेपर उसकी झड़ी लगाकर सर्वस्व अर्पित करनेवाले होते है।" प्रेमी नेत्रोंकी तुलना उन मेघोंसे कितनी सटीक बैठी है जो झड़ी बाँधकर अपना सब-कुछ दे डालते हैं ! प्रेम सच्चा वही है जो प्राणीको निःस्वार्थ त्यागके लिए प्रेरित कर सके।

योगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदीए जे लोइंदे अप्प।
तीन्ही तिनि अवत्थडी कउ ण करंदा वप्प ॥९५"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो आत्मको देखते होते हैं। उनकी तीन ही अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न और तुरीय होती हैं; वे कभी भी अपने-आपको ढँकते नहीं हैं—सुषुप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं। इस कथनमें कोई कल्पना नहीं है, कहनेके ढंगमें अभिव्यक्तिकी सरलता-मात्र है।

भोगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जो अणरत्तां ही रत्त।
दीया देह स दज्झिया तोइ पडंदा पत्त ॥९६"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो (मादक द्रव्यादिसे) रक्त न होते हुए भी रक्त होते हैं, जिनका देह (पतिंगोंकी भाँति) दीपकसे दग्ध हो गया होता है तो भी जो (दीपकके पास) पहुँचकर उसमे पड़ते ही है।" प्रेमीकी पतिंगेसे तुलना पुरानी ही है, किन्तु 'दीया देह स दज्झिया' मे नवीनता है : पतिंगे अनुभव कर रहे हैं कि दीपक उनको झुलसाकर अधमरा कर चुका है फिर भी वे सहर्ष उसपर अपने जीवनका उत्सर्ग करनेके लिए पहुँच ही जाते हैं।

योगिनी कहती है :

"लोयण ते लोइंदीए जे जुग ओइ अरत्त।
माया ओढण भुल्लिया जांणि कलाली मत्त ॥९७"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो जगत्को अरक्त भावसे देखने हैं और मायाको उसी प्रकार भूले होते हैं जैसे कलाली मत्त व्यक्तिको भूल जाती है।" कलालीके द्वारा मत्त व्यक्तिकी उपेक्षा और योगी-द्वारा की गयी जगत्की उपेक्षा-की तुलना अच्छी बन पडी है।

भोगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जे अंबा ही अब्ब।
ज्युं हीउ पाउस रंगीया ताइ मिलंदा सब्ब ॥९८"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो जलवाले बादलोंके सदृश होते हैं—जैसे ही पावस उनके हृदयको अनुरंजित कर देता है, वे (जलके रूपमें अपना सर्वस्व अर्पण करनेको) इकट्ठे हो जाते हैं।" जलसे आर्द्र बादलोंसे प्रेमी नेत्रों-की तुलना अवश्य ही सरस बन पड़ी है।

योगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जे जाणि परंदा गत्त।
को घरिया पर लग्गीयां रत्ता तोइ अरत्त ॥९८"

"लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो गत (गये) से जान पड़ते हैं। यदि किसी घड़ी वे घर (गृहस्थी) से लगे भी हुए होते हैं तो वे उससे रक्त (अनुरक्त) (ज्ञात) होते हुए भी अरक्त ही होते हैं।" इस कथनमें कोई वैशिष्ट्य नहीं है, किन्तु अन्तिम शब्दोंमें विरोधाभासका किंचित् चमत्कार है।

भोगिनी कहती है :

"लोइण ते लोइंदीए जे रंगइ करियांह।
वीकर बाजि न चढ़ही ज्युं गज बंगरियांह ॥१००"

"लोचन तो वे देखते हुए होते है जो एकमात्र रंग (प्रेम) करते हैं और प्रेम करके जो फिर कुछ भी और नहीं करते हैं, जैसे घोड़ेपर चढ़नेवाला व्यक्ति घोड़ेको बेचकर विकृत अंगवाले हाथीपर नहीं चढ़ता है।" प्रेमके मार्गपर लग जानेके बाद और किसी मार्गमें लगनेकी तुलना घोड़ेको बेचकर विकृत अंगवाले हाथीपर चढ़नेसे अच्छी जमी है।

स्पष्ट है इस स्वांगमें भोगिनी (प्रेमयोगिनी) के कथन जैसे चमत्कारपूर्ण हैं वैसे योगिनी (ज्ञानयोगिनी) के नहीं। दूसरी बात यह द्रष्टव्य है कि ये कथन उत्तर-प्रति-उत्तरके रूपमें नहीं है, अर्थात् एकका दूसरेसे कोई सम्बन्ध नहीं है, दोनों अपने-अपने पथका गुणगान करते है और एक-दूसरेसे स्वतन्त्र रूपसे करते है। एकसूत्रता यदि है तो इतनी ही कि नेत्रोंको लेकर दोनो-के कथन किये गये है और विशेषता है तो इसी बातमे है कि वे एक रोचक शैलीमे किये गये हैं। प्रेमयोग और ज्ञानयोगका मध्ययुगीन द्वन्द्व इस रचनामे नेत्रोके माध्यमसे प्रस्तुत किया गया है। सगुण भक्तिमार्गी कवियोंकी रचनाओमे ही यह द्वन्द्व अभीतक मिला था; सूफ़ी तथा निर्गुण भक्तिमार्गी कवियोकी रचनाओंमें यह द्वन्द्व पहली बार मिल रहा है।

अन्य प्रसंगोंमें भी कही-कहीं उक्तियाँ सरस बन पडी है, यथा नायिकासे नायकके मिलानेके प्रयासकी तुलना द्राक्षावल्लीको आमसे लगानेसे की गयी है :

"साहिब सूं सूरत्तियां हूं मालन इहि कम्म।
जिउं किउं दक्खा वल्लिया जउ र विलग्गइ अंब ॥९"

फ़क़ीरका वेष धारण करनेकी बात सीधी न कहकर फ़कीरीके उपकरणोंको धारण करनेके रूपमें कही गयी है :

"साहिजादे षथां न होउ धरि षल्लरी षवेहि।
डीवी डांग सु सिगरी कमरि करंदा लेहि ॥१८"

नायक-नायिकाके परस्पर तन्मय होनेकी बात एक ही जीवन-रसको दो पात्रोमे विभक्त करनेके रूपमें कही गयी है :

"साहिजादे साहिब्बीयां ढढ्ढिनि ढुंढे मंझि।
जाणे जीवण इक्करा बे पुड कीन्हा भंजि ॥२९"

नायिकाको निर्निमेष देखनेकी नायककी चेष्टाके सम्बन्धमें कहा गया है कि मानो कोई सिंह किसी मृगीको इस प्रकार देख रहा हो कि उसको आँखोके मार्गसे ही निगलना चाहता हो :

"साहिब सारंगी नयण सारंगा रिपु साहि।
अंषी अंषिनु वट्टडी जानि गिलंदी ताहि ॥३१"

प्रेमकी अग्निमें बिना तपे हुए प्रेम-पात्रको प्राप्त करनेकी तुलना इस कच्चे भोजन करनेसे की गयी है जो पेटमें बिकार उत्पन्न करता है :

"तू रस कामन्धा भूषिया साहित बीचु अजांणु ।
साई हाथ पकावना षांहि न कच्चा षांन ॥३२"

आशाके चेतना-शून्य होनेकी तुलना पावसके आगमनपर बिना बादलोंके दर्शन-के भी मयूरोंके नाच उठनेसे की गयी है :

"आसा अन्धी ढढ़िढनी भोग करंदे गोर ।
"गज्जइ गयण न नच्चिया पावस हुंदे मोर ॥३३"

नायिकाका जीवनार्पणका संकल्प नायकपर उसके शरीरको वारनेकी आकांक्षा-द्वारा व्यक्त किया गया है :

"ढढ़िढनिया हिय हत्थ लइ आरतियां करि हेरि ।
साहिजादे सिर उप्परइ मो साहिबियां तन फेरि ॥३६"

विरह दुःखसे पीड़ित नायकके सन्तप्त होनेका एक विनोदपूर्ण कारण असंगतिके रूपमे यह दिया गया है कि नायिकाके गरम भोजन करनेसे नायकका हृदय सन्तप्त हो जाता है :

"ढढ़िढणि ढोरी अंषियां साहिबा संमुहियांह ।
तइ तत्ता षांन षाइया दज्झइ साहि हियांह ॥५४"

वरके सेहरेके लिए डूबते हुए सूर्य और वधूकी माँगमें पड़े हुए सिन्दूरके लिए सन्ध्याकी कल्पना की गयी है :

"वर सिर सोहइ सेहरा वरणी सिरि सिन्दूर ।
जांणे संझ सुमष्षिया सिन्धु सपत्ता सूर ॥७८"

वरकी उँगलीमें पड़ी हुई अँगूठी और वधूके हाथमें पड़ी हुई चूड़ियोंके रक्तवर्णके बारेमें यह कल्पना की गयी है कि मानो कामने किसीके हृदयमें चुभे हुए अपने बाण निकाले हों :

"वर कर वीर अंगूठियां वरणी कर करि लाल ।
जाणे हीयइ हिलगियां काम स कढ़इ साल ॥७९"

ढाढिनीके द्वारा गाये जाते हुए सेहरेकी तुलना वर्षासे तृप्त हुए सारसोंकी मधुर ध्वनिसे की गयी है :

"आसिक अषत भणंदीया सेष सुणंदा सार ।
जांणे जलहर वुट्ठियां सारसु कीया सुठार ॥८०"

इसी प्रकार और भी अनेक स्थल मिलते है जहाँपर रचना अपनी टटकी और कभी-कभी अछूती उक्तियोंके द्वारा पाठकको मुग्ध कर लेती है। फलतः रचना छोटी होते हुए भी काव्य-रसिकोंको चमत्कृत करती है। गद्यमें भी जहाँ-तहाँ ऐसी उक्तियाँ आती हैं, किन्तु ऐसे स्थल इने-गिने ही हैं। रचनाकी सरसता उसके पद्यात्मक अंशोंके कारण ही है। ऐसा लगता है कि गद्यके अनुच्छेद केवल कथाके सामान्य विवरणों तक सीमित रखे गये हैं; जहाँपर सरस कल्पनाकी सम्भावना प्रतीत हुई है, कथन और वर्णन अनायास दूहोंमें किये गये हैं। साथ ही यह द्रष्टव्य है कि समस्त अप्रस्तुत विधान भारतीय जीवनसे लिया गया है।

इन दूहोंमें कविकी शैली अत्यन्त सशक्त है। एक स्थानपर भी उसने कविको धोखा नहीं दिया है। प्रत्येक शब्द अपने स्थानपर जमकर बैठा हुआ इस प्रकार चमक रहा है जैसे आकाशमें नक्षत्र चमकते हैं। शब्दोंमें प्राणवत्ता स्वतः झलकती है, यद्यपि शब्द-चयन सहज ढंगसे किया हुआ है। रचनामें कहीं भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता है, यह रचनाकी बड़ी भारी विशेषता है।

गद्यांशकी शैलीमें यह विशेषता नहीं है। हिन्दीके मध्ययुगमें गद्य उपेक्षित रहा है, यह सभी क्षेत्रोंमें देखा जा सकता है। सरस उक्तियाँ और कल्पनापूर्ण कथनोंके लिए पद्यका ही सहारा वार्त्ता-बन्ध काव्य-रूप तकमें भी लिया जाता रहा है। और कदाचित् ऐसे वार्त्ता-बन्ध काव्योंका पद्य उनके गद्यकी अपेक्षा अपने प्रामाणिक रूपमें अधिक सुरक्षित भी रहा है, क्योंकि गद्य भागको आवश्यकताके अनुसार बड़ा या छोटा किया जाता रहा है जब-कि पद्य अपनी सरसता और स्मरण-सुलभताके कारण बहुत-कुछ मूल रूपमें सुरक्षित रखा गया है।

— माताप्रसाद गुप्त

'कुतबशतक' की हिन्दुई

'कुतबशतक' की भाषा

रचनामे उसकी भाषाका नाम नही आया है और न उसके वार्त्तिक तिलकमे, किन्तु वार्त्तिक तिलकमे निम्नलिखित अंशोमे अन्य भाषाओंके साथ हिन्दुईका नाम उसके कुछ अधिकतर वर्तनी-विषयक विकल्पोके साथ आया है :

"बीबी बीवाना कौ फारसी। हिंदुही। च्यारो ही हकीकति। तरीक बेद की। कुरान की। षुदायकी इन्याइति रहम सौ। दिलमही थी। पैदा हुई।"—(वार्त्तिक तिलक, अनु० ६)

"·····बडा भाई ह्यंदू छोटा भाई मुसलमान। ह्यंदूई मौं पंडित नाम राषौ। सोइ नाम षूब। तब पंडिता आपणा सास्त्र देष्या। तब साहिजादा कुतबदीन नवल नाम नजरि आया।"—(वही, अनु० ११)

"ह्यंदूगी तुरकी कुरांन भी हाजरि हुऐ अवलि पुरान वाला बोला साहिजादे सलामति बहुत षुब सायति का वक्त है एक निवाला उटायए होम करानेवाला बोला ए साहिजादे बहुत षूब सायति का वक्त है घुंट एक ठंढा आब पाणी की लीजिए।—(वही, अनु० १५)

पहले उद्धरणमे 'हिंदुही' का नाम भाषाके रूपमे 'फ़ारसी' के साथ लिया हुआ है। दूसरे उद्धरणमे 'ह्यंदूई' हिन्दुओंकी भाषाके रूपमें उल्लिखित हुई है, जिसमें शाहज़ादेका नाम रखनेके लिए पण्डितोसे अनुरोध किया गया है। तीसरे उद्धरणमें 'ह्यंदूगी' 'तुरकी' भाषाके साथ लायी गयी है जैसे प्रथममे वह 'फारसी' के साथ लायी गयी है। इससे स्पष्ट है कि वार्त्तिक तिलकके लेखकके समयमे दिल्लीके शिष्ट समाजमें दो ही भाषाएँ प्रमुख रूपसे प्रचलित थी, हिन्दुओमें 'हिंदुही', 'ह्यंदूई' या 'ह्यंदूगी' और मुसलमानोमे 'फारसी' अथवा 'तुरकी'। 'ह्यंदूई' वर्तनी-भेदसे 'हिंदूई है, तथा 'हिंदुही' और 'ह्यंदूगी' उसीके अन्य विकल्प है। कुछ लेखकोंने 'हिंदुकी' और 'हिंदकी' भी इस भाषाके नाम बताये है, किन्तु नागरी लिपिमें उद्धृत किये गये इन तीनो विकल्पोंसे स्पष्ट है कि उसका एक नाम

'हिंदुगी' रहा होगा, जिसको फ़ारसी लिपिमें लिखनेपर 'हिंदुकी' या 'हिंदकी' पढ़ा गया होगा।

'कुतबशतक' की भी भाषा यही है। यद्यपि उसका लेखक उसको किस नामसे जानता था यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है, किन्तु इस बातकी सम्भावना यथेष्ट मानी जा सकती है कि वह भी इसको इसी नामसे जानता रहा हो। अन्तर दोनोंकी भाषाओमें इतना ही है कि रचना-की भाषा तिलककी भाषासे अपेक्षाकृत प्राचीनतर है। दक्षिण भारतकी मध्य-युगीन मुसलमानी रियासतोमे इसी भाषाको साहित्यिक भाषाके रूपमे स्वीकार कर लिया गया था और इसमे साहित्य-रचना भी की गयी थी। बादमे इसे ही 'दक्खिनी' कहा जाने लगा था।

आगेके पृष्ठोमे 'कुतबशतक' और उसके वार्त्तिक तिलककी भाषाओका विश्लेषण अलग-अलग कर लेनेके बाद दोनोका तुलनात्मक अध्ययन किया जायेगा। इसी प्रसंगमे दक्खिनीके मिलते जुलते रूपोंके साथ भी इनके रूपों-की तुलना की जायेगी। दक्खिनीका अध्ययन काफ़ी पूर्णताके साथ किया जा चुका है, किन्तु उत्तरी भारतकी पुरानी 'हिन्दुई'की जानकारी यथेष्ट रूपमे न होनेके कारण 'दक्खिनी' का अध्ययन प्रस्तुत करनेवाले लेखकोंने दक्खिनी शब्द-रूपोके इतिहासके सम्बन्धमें कभी-कभी भ्रान्तियाँ भी की हैं और अनेक ऐसे रूपोंको उन्होंने पंजाबी, राजस्थानी और अवधी तकका बताया है जो कि पुरानी खड़ी बोलीके थे। आगे इन भ्रान्तियोंका निरा-करण यथास्थान किया जायेगा।

कुतबशतकके शब्द-रूप

संज्ञा

संज्ञा : एक० (अविकृत रूप)

पुल्लिग शब्द सामान्यतः प्रत्ययहीन रूपमें प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरण देना अनावश्यक होगा।

–उ : कहीं-कहींपर अकारान्त शब्द कर्ता और कर्म कारकोंमें –उ प्रत्यय-के साथ प्रयुक्त हुए हैं :

कर्ता – ओ ही 'हालु' (५०)।

कर्म – 'दीनु' लीयां दुनया विछोड़ी (२३), तत्ता 'भत्त' लाओ (२५), 'भत्तु' लइ आवनइ हइ (२६)।

–आं। आंह · दो स्थानोंपर अकारान्त शब्द कर्तामे –आं। आंह प्रत्ययोके साथ प्रयुक्त हुए है

कर्ता – जउ जोरां तउ तुज्झ ही जउ गोरां तउ तुज्झ (३७), तइ तत्ता भात षाइया दज्झइ साहि 'हियांह' (५४)।

आगे हम देखेगे कि यह –आ प्रत्यय इकारान्त स्त्री० में (–इयां) मे परिवर्तित होकर बहुत प्रयुक्त हुआ है। यह अवधीके पु० –आ। –वा तथा स्त्री० –इयासे तुलनीय है · बिहरत हिया करहु पिय टेका ('पद्मावत' छन्द ३५४), उ घोडवा कहाँ गा? उ घोड़िया कहाँ गइ? यह –आं स्वार्थिक प्रत्यय ज्ञात होता है। –आंहका –ह एक अतिरिक्त स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें जोड़ा हुआ लगता है। यह –ह पद्यो तक ही सीमित है, सो भी तुकोके लिए।

–इयां . कहीं-कहीपर अकारान्त पु० शब्द स्वार्थिक –इया प्रत्ययके साथ भी प्रयुक्त हुए है

जानेकी 'करतारियां' (१०), अंगन चंद 'निलाटिया' (१२), साहिब-साहि 'कुतुब्बिया' (६०)।

स्त्रीलिंग शब्द भी सामान्यतः प्रत्ययहीन रूपमे प्रयुक्त हुए है; इनका भी उदाहरण देना अनावश्यक होगा।

–आं : स्त्री० इ। ईकारान्त शब्दोंको कहीं-कहींपर स्वार्थिक –आं प्रत्यय जोड़कर –इयां अन्त्य कर दिया गया है :

साहिब सो 'सूरत्तियां' (१), साहिब सूं 'सूरत्तियां' (९) जिउं किउं दक्खा 'वल्लियां' जउ र बिलग्गइ अंब (९) बे 'मालिनियां' दिट्ठाइयां (१७), 'बीबियां' आई (२०), 'बीबिया' हरम द्वार धाई (२०), 'गुलाबियां' जागी (२१), 'ढढ्ढिनिया' सोना भला (३५), 'ढढ्ढिनियां' हिय हत्थ लइ (३६), 'बीबियाँ' सहित सुलताण जाण्या (४२)।

–इयां : कही-कहीपर अकारान्त शब्दोंमें भी स्वार्थिक –इयां प्रत्यय जोडा गया है : साहि घरा साहिब्बिया जिण दिण्णियां सुजाणि – (६२)।

–आंह : इसी प्रकार कही-कहीपर –आंह स्वार्थिक प्रत्यय भी प्रयुक्त हुआ है : पाइ स रत्ता पंकजां अढ्ढी अंगुलियांह (१६)।

इन स्वार्थिक प्रत्ययोंके सम्बन्धमें वही कथन लागू होता है जो ऊपर पुल्लिग शब्दोंके स्वार्थिक प्रत्ययोंके बारेमें किया गया है।

संज्ञा : बहु० (अविकृत रूप)

पुलिग शब्दोंके बहु० निम्नलिखित प्रकारसे बनाये गये है।

–आ : अकारान्त शब्दोके बहु० एक० अविकृत रूपमें –आ लगाकर बनाये गये है : जाणै सपनि अप्पणा चर 'चिंटुआ' भषति (११), 'केसा' के कसि बंधियां (११), 'जोवणा' खूब हइ (४), 'हत्था' कांम स पीउ भउ पीय 'हत्था' भउ काम (१५), 'सज्जणा' जागे (७६), ढाहिया 'ढंगा' (७६), निहसिया नीसाण 'नादा' (७६), नारिया 'नादा' (७६), वाए वज्जण 'वज्जणा' (८१)।

–आं : इसी प्रकार वे –आं लगाकर भी बनाये गये है :

पाइ स रत्तां 'पंकजां' (१६), लज्जा गउ जुअ 'जोवणां' (६१), मिलि 'सज्जणां' सचोल (८१)।

दक्खिनी हिन्दीमें केवल –आ प्रत्यय मिलता है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि –आ या तो परवर्ती है और या तो प्रतिलिपिकारोंकी भूलसे –आंके सानुनासिकके बिन्दुके छूटनेके कारण हो गया है।

एक स्थानपर अकारान्त शब्दका बहु० –ह लगाकर भी बनाया गया है : बारि 'ऊंछह' लगाये (९०)।

–आन : दो स्थानोंपर एक अकारान्त शब्दका बहु० –आन लगाकर बनाया हुआ है : 'दोस्तान दोस्तान' करि हुस्तक्यां दीनी, 'दोस्तान दोस्तान' तत्ता भत्तु लाओ (२५)। यह –आन फ़ारसीका प्रत्यय प्रतीत होता है।

–ए : आकारान्त संज्ञा शब्दोंका बहु० –ए लगाकर बना है : पांच सोवनके 'टके' देवरइ घरे (४), मेरे 'दीदे' दूषण लग्ग (८), 'दीदे' घूरते हुइं (२१), दीदे लग्गे (२४), साहिबा 'दीदे' उनइ (२७), 'दीदे' दिग्ध उचाइयां (२८), साहिलादे के 'षवे' फुरकणइ लागे (३०), साहिजादइ आपणें 'कपरे' कीए (३८), 'दीदे' दुराए (४०), षान 'षानजादे' मलिक 'मलिकजादे' मीयां 'मीयां जादे'

---

१. दे० 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ४६, 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० २६६।

(४३), फेरिबे दस लाख 'टके' सिर उप्परइं (४९), इतनी करतइ 'कपरे' फेरे (५५), दीदह सुं 'दीदे' जोरे (५५), साहिजादे 'दीदे' न भरू (५७), सुणतइ ही 'लल्ले' किए (६७), दावल दाण स पूंगरी 'दीदे' दीठिहुं मूरि (७१) दुनी के 'दीदे' ऊधरे (७४) 'गायणे' गावरणइ लागे (७६), दोउ 'दूहे' कहे (९१), मांगि बे लाल 'ढमरे' (१०९), 'वज्जे' वज्जत वज्जिया (११४)।

—ए : लगाकर बहु० बनानेकी यह प्रवृत्ति दक्खिनीमे भी इसी प्रकार मिलती है।[1] किन्तु डॉ० श्रीराम शर्माका कहना है कि "दक्खिनीमें राजा-राजे-जैसे प्रयोग मराठीका प्रभाव प्रकट करते है।"[2] यदि उनका आशय —ए लगाकर उपर्युक्त प्रकारसे बहु० बनानेके सामान्य नियमसे है, तो उनका यह मत ठीक नही है, प्रस्तुत रचनासे यह भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है।

कहीं-कहीपर बहु० के लिए एक० रूप भी प्रयुक्त हुआ है : जारणे सपनि अप्पणा चर 'चिंदुआ' भषति (११), भूतर नच्चइ 'नयण' (१२). 'पाइ' स रत्ता पंकजा (१६), 'तबीब' तमाम सब सुलताण कोके (४४)।

स्त्री शब्दोके बहु० निम्नलिखित प्रकारसे बनाये गये है।

—या। यां, इया। इयां : अकारान्त शब्दोके बहु० —या। —इयां, अथवा इया। इयां लगाकर बने है

'बाडियां बेलियां' नयणे दिषावइ (३), दोस्तान दोस्तान कहि 'हस्तक्यां' दीनी (२३), सुलतांण 'निवाज्या' कीनी (३८), दाणसवंदइ अपनइ अपनइ घरह की 'वाटयां' लीनी (३८), हस्तइं ही 'वात्या' कीया (३९), इतनी 'वात्या' करतइ साहिजादइ 'जहमत्यां' कीन्ही (४१), 'आवाज्या' वाजी (५६), जिण ही जीय 'जहमत्तिया' (६६), क्या 'वातिया' निसीब (६८), 'जहमतीयां' क्या जाणइं (७३), दरिया हिया 'तरंगिया' कउ ए गिलदा खेलि (८७)।

दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु यां। इयां प्रत्यय ही वहाँ मिलते हैं।[3] असम्भव नहीं कि प्रतिलिपि प्रमादके कारण —या। इयाका 'कुतबशतक' में कही-कहीपर —या। इया हो गया हो।

---

१. वही।

२. वही।

३. 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० ४७ तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३००।

–इं : अकारान्त शब्दोंके बहुवचन कहीं-कहींपर –इं लगाकर भी बनाये गये है, यह –इं परवर्ती -एं से तुलनीय है :

'किताबइं' रही (३८)।

–यां : इकारान्त शब्दोंके बहुवचन रूप –यां जोड़कर बनाये गये हैं :

ढढ्ढिण ढोरी 'अंखिया' (५३), के दिन केही 'केलिया' (८७)।

इसी प्रकार, ईकारान्त शब्दोंके भी—

पक्कीया 'नारिंग्या' 'जभीर्‌या' भर्‌या (४), 'बेलिया' बंकीया कर्‌या (४), साहिजादे आपणी 'जंभीरियां' सुहगीया न बेचुगी (५), सु मुहर मुहर 'जंभीरिया' मागती है हइ (५), मुहर मुहर 'जंभीरिया' नकी पाछी ल्यावहु (५), पेरो साहि 'दुहाइया' (७), जाणी आण 'वधाइया' (१२), 'आरतिया' करि हेरु (३६), वर कर वीर 'अंगूठियां' (७६)।

इकारान्त तथा ईकारान्त शब्दोंमें -यां लगाकर बहु० बनानेकी यह प्रवृत्ति दक्खिनीमें भी पायी जाती है[1]।

इकारान्त शब्दोंके साथ पद्योंमें –या के अतिरिक्त कभी-कभी स्वार्थिक –ह भी जुड़ा हुआ है :

पाइ सरत्ता पंकजा अट्ठी 'अगुलियांह' (१६), बे मालनियां दिट्ठाइयां के सोनी 'गल्हरीयाह' (१७), लइ चलि 'संगरियांह' (१७)।

यह –ह एक अतिरिक्त स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें एक० पुंल्लिग शब्दोंमें भी प्रयुक्त हुआ है, यह हम ऊपर देख चुके है।

स्त्री० शब्दोंमें भी कहीं-कहींपर बहु० के स्थानपर एक० रूप ही प्रयुक्त हुआ है; यह हम ऊपर एकवचन रूपोंके प्रसंगमें भी देख चुके हैं :

इतनी 'वात' करतइं (७६, ८९, ९०, ९१), दुइ 'नटिणी' आइ षरी हुई (९१)।

संज्ञा : एक० (विकृत रूप)

आकारान्त पुंल्लिग शब्दोका –आ प्रायः –ए में परिवर्तित हुआ है :

'साहिजादे' कुं जीयावणा (५१), साहिबा 'साहिजादे' कुं वरणा (७५), 'साहिजादे' कुं क्या सुरोग (९०), 'साहिजादे' कुं ठंड लागी (१०१),

---

१. वही।

'साहिजादे' सुं कम्म (६), 'साहिजादे' सुं सइतान लर्या (५१), 'साहि-जादे' सुं वषाणइ (७६), 'साहिजादे' के षवे फुरकणइ लागे (३०), 'साहिजादे' दिल अउर दिल (६९), 'साहिजादे' की दूसरी वइरणि आई (५०), 'साहिजादे' कइ साथि गोर महि वाहणा (५१)।

किन्तु कहीं-कहीपर यह –आ –अइ। –ऐ मे भी परिवर्तित हुआ है : 'खानइ' की क्या चलावइ (४०), बे 'दीयै' की जाला (१०२)।

इन दोनोमें-से –अइ अपेक्षाकृत कदाचित् प्राचीनतर है। वही –ए मे बदल गया लगता है। दक्खिनीमे –ए रूप ही मिलता है।[1] किन्तु हो सकता है कि यह फारसी लिपि-मात्रमे उसका पुराना साहित्य मिलनेके कारण भी हो, क्योंकि फारसी लिपिमे –अइ और –ए एक ही प्रकारसे लिखे जाते है।

अकारान्त पुंल्लिग शब्द कभी-कभी अविकृत रूपमे भी प्रयुक्त हुए है

'मरणा' तई का बुराई (१०६), 'दरिया' का गर्व बादे (४३), 'साहिजा' की साहिबां की (५३), 'जमा' की राति (१९)।

दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।[2]

विकृत रूप-निर्माणकी उपर्युक्त प्रवृत्ति आकारान्त पुंल्लिग शब्दो तक ही सीमित है।

संज्ञा : बहु० (विकृत रूप)

पुंल्लिग : अकारान्त शब्दोंका बहु० –आ : –आं अथवा –ह। –हु लगा-कर बना है :

–आ : 'सादा' नइं वग्गे (२४), 'सादा' नइं वजावउ (७५), 'सादा' नइ वाजण लागे (११३)।

–आं : 'दुसमणां'के दिल जरे (७४), मानुं चांद 'तारा' सुं रिसानइ (१०९)।

अकारान्त शब्दोके बहु० –आ जोड़कर दक्खिनी हिन्दीमे भी बनते रहे हैं।[3] हो सकता है कि प्रतिलिपि प्रमादके कारण ही 'कुतबशतक' मे –आं का –आ हो गया हो।

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३०१।

२. वही, अनु० ३१६, तथा ३१६ के कुछ उदाहरण।

३. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ४८, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३०१।

–ह । –हु : बंदा 'बंदियहु' की बंदिगी देषणइ हु गया था (३९), दानिस-बंदइ अपनइ अपनइ 'घरहु' की वाद्या लीनी (३८), 'तबीबहु' हाथ धरे (५१), 'इयारहु' के हीए भरे (७४)।

स्त्रीलिंग ईकारान्त शब्दोंका बहु० कुछ स्थानोंपर –न । नु लगाकर बनाया गया है :

साहिबा 'सहिन' क्यां भरी है (२६), अंषी 'अंषिनु' वट्टडी साहि गिलंदी ताहि (३१)।

दक्खिनीमे भी इस –न का प्रयोग मिलता है।[1]

संज्ञा – लिंग-निर्माण :

पु० अकारान्त । आकारान्त शब्दोंके स्त्रीलिंग –अ । –आ के स्थानपर –ई लगाकर बनाये गये हैं :

आगइ दावल की 'पूंगरी' हुइ (५), साहिब सारी 'वत्तडी' (६), कुण स केही 'पूंगरा' (७), जाएो आण 'वधाइयां' (१२), 'फूल्ली' नी कलियांह (१६), अंषी अंषिनु 'वट्टडी' (३१), बीबी बीहुन 'वत्तडी' (६९), दावल दान स 'पूंगरी' (७१), दुइ 'नटिर्णी' आइ षरी हुई (९१), माया ओढण भुल्लिया जाणि 'कलाली' मत्त (९७)।

स्त्रीलिंग-निर्माणकी यह विधि दक्खिनीमें भी इसी प्रकार पायी जाती है[2]।

कभी-कभी पु० अकारान्त शब्दोंका स्त्री० –नि । –नी जोड़कर बनाया गया है :

जाएो 'सपनि' अप्पणा चर चींटुवा भषंति (११), तबीबानी तबीबानी' करि पुकारी (५६)।

यह प्रकृति दक्खिनीमें भी पायी जाती है[3]।

इ । ईकारान्त शब्दोंका बहु० भी –नि । –नी । –न जोड़कर बनाया गया है, केवल पु० शब्दका इकार । ईकार अकारमें परिवर्तित हो गया है :

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० २६०।
२. वही, अनु० ३०६।
३. वही।

'अग्गा 'मालनी' खुब हइ (४), बे 'मालनी' आइयां करे (४), टुक एक गयां 'मालनी' फिरि आई (५), साहिब सुं सूरत्तियां हूं 'मालन' इहि कम्म (९), जाणु साहिजादे की दूसरी 'वइरणि' आई (५०)।

दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।[1]

कहीं-कहींपर कु० मे यह स्त्री० रूप केवल –नि। –नी जोडकर बनाया गया है :

ढढिनी। ढढिनि (रचनामें अनेक बार), 'ढढिनी' 'मालिनी' का वेष कर्‌या (४), अबे 'मालिनी' यां तू इहि काम आई (९)।

दक्खिनीमे भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।[2]

कभी-कभी कु० मे एक ही शब्द (यथा माली>मालनी। मालिनी) उपर्युक्त दोनों रूपोंमें मिलता है। यह प्रतिलिपिकारोंके प्रमादसे हुआ भी सम्भव हो सकता है।

प्रथमा विभक्ति

–इ।इं : पुल्लिग एकवचनमें अकारान्त-आकारान्त शब्द सामान्यत' –इ।इं लगाकर प्रथमाका विभक्तियुक्त रूप बनाते हैं, आकारान्त शब्दोंका आकार ऐसी अवस्थामें अकारमें परिवर्तित हो जाता है :

इते बीच 'साहिजादइं' किसऊ की डीवी चोरी (२३), 'साहिजादइ' आपणी कपरे कीए (३८), 'साहिजादइ' जहमत्यां कीन्हीं (४१), 'तबीवइ' रोग जण्या (५८), 'साहिजादइ' कुमकुमइ वरपे भराए (९०), दाणसंवद साहिजादीसुं 'साहिजादइ' कह्या (१०१), रंग पर रंग ऊढनी 'साहिजादइ' दीनी हइ (१०२), 'साहिजादइ' लीन्हा (१०२), टुक एक जातइं 'साहिजादइ' कह्या (१०६), जाणइं चंद 'वादलइ' छिपाया (१०८)।

–ए।एं : कहीं-कहीं पर आकारान्त शब्दके –आ के स्थानपर ए।एं लगाकर भी प्रथमाके विभक्तियुक्त रूप बने हैं : दोइ 'साहिजादे' अप्पणइ हत्थइ कीया (४), 'साहिजादे' चादरि सिर उपरि लीनी (२२)।

–इं : ईकारान्त शब्दोंका प्रथमा विभक्तियुक्त रूप –इं जोडकर बना है : 'रोगीइं' रोग मान्या (५८)।

---

१. वही।

२. वही।

–इ : पुल्लिग बहुवचनमें अकारान्त शब्दोंके साथ भी –इ प्रत्यय लगाकर प्रथमाका विभक्तियुक्त रूप बना है :

'दानिसवंदइ' अपनइ अपनइ घरह की वाट्यां लीनी (३८)।

किन्तु ऐसे उदाहरणोंमे शब्दोंका मूल बहु० रूप कदाचित् वही है जो एक० का है।

–इाइं तथा एाएं में-से प्राचीनतर कदाचित् प्रथम है : दूसरा प्रतिलिपि-कारोंकी अपने समयकी भाषाके प्रभावसे आया हुआ लगता है।

विभक्तियुक्त अर्थोंमे निर्विभक्तिक प्रयोग भी अनेक मिलते है·

पु० एक०: 'साहिजादा' सइतान र जाण्या (२०), 'साहि' साहिबा उँचाई (३०), 'सुलताण' निवाजा कीनी (३८), 'सुलतांण' सुरति कीनी (३८), 'सुलतांण' देस देस मुलक मुलक कुं फुरमाण दीनइ (३८), 'तबीब' तमाम सब सुलतांण कोके (४४)।

पु० बहु०: 'तबीबह' हाथ धरे (५१)। [–ह इस प्रयोगमे स्वार्थिक प्रतीत होता है।]

विकृत रूपोके स्थानपर निर्विभक्तिक रूपोंको प्रयुक्त करनेकी प्रवृत्ति दक्खिनी हिन्दीमें भी पायी जाती है।[1]

यह ध्यान देने योग्य है कि 'ने' का प्रयोग रचनामें कही भी और किसी रूपमें भी नही मिलता है। पुरानी दक्खिनीमें भी बहुत-कुछ यही अवस्था थी। डॉ० श्रीराम शर्मा लिखते है : "कारक चिह्नके रूपमें दक्खिनी 'ने' को सामान्यतः अस्वीकार करती है, केवल साहित्यिक दक्खिनीमें ही कहीं-कहीं 'ने' का प्रयोग मिलता है।········ख्वाजा बन्दे नवाजकी रचनाओंमे हम 'ने' का प्रयोग देखते हैं। उनके परवर्ती लेखक बुरहानुद्दीन जानमकी रचनाओंमे 'ने' का प्रयोग अधिक नहीं है।"[2] किन्तु ख्वाजा बन्दे नवाजकी रचनाओंमें 'ने' के मिलनेके कारणका अनुमान करते हुए डॉ० शर्मा लिखते हैं : "इसका एक कारण यह हो सकता है कि ख्वाजा बन्दे नवाजका अधिकांश समय दिल्लीमें बीता था। उस समय दिल्लीके आस-पासकी खड़ी बोलीमें 'ने' का प्रयोग होने लगा था।"[3] उनके इस कथनसे मैं सहमत नही हूँ क्योकि प्रस्तुत रचनासे यह प्रमा-

१. वही, अनु० ३१५।
२. वही, अनु० ३१५।
३. वही।

णित हो जाता है कि ख्वाजा बन्दे नवाजके कदाचित् एक शताब्दी बाद तक भी दिल्लीके आस-पासकी खड़ी बोलीमे 'ने' का प्रचलन नही हुआ था। या तो ख्वाजाने यह प्रयोग अन्यत्रसे ग्रहण किया होगा, और या तो उनकी रचनाओका प्रस्तुत रूप इस रचनाके भी बादका होगा।

–इ. स्त्रीलिंग एकवचनमें भी अकारान्त। आकारान्त शब्द उसी प्रकार –इ लगाकर प्रथमाका विभक्तियुक्त रूप बनाते है जैसे पुल्लिगमें : पाँच सोवन्न के टका 'देवरइ' घरे (४), अबे 'फिरस्तइ' फेरे (४७)।

सविभक्तिक अर्थमें निर्विभक्तिक प्रयोग स्त्रीलिंग एक०में भी अनेक मिलते हैं :

'साहिब' सारी बत्तडी साहिजादे सु कम्म (६), 'मालनी' संच जाण्या (२०), दीदे दिग्घ उंचाइयां 'साहिब' साहिब अंगि (२८), 'बीबी' हुं रोवणा माड्या (५१), 'ढढिणि' ढोरी अंषियां साहिब समुहियांह (५४), मां' अर-दास करी (१०८)।

स्त्री० बहु० मे भी निर्विभक्तिक प्रयोगके इस प्रकारके उदाहरण मिल जाते हैं: जाणे 'अपछरां' अमी हर्या (१०२)।

द्वितीया विभक्ति :

एक० में सर्वाधिक प्रयुक्त विभक्ति 'कुं' है, जो अकारान्त। इकारान्त शब्दोंके साथ पु० तथा स्त्री० दोनोंमें मिलती है :

पूव 'कुं' पूत्र होइगा (४), दावल 'कुं' तीन दिन हुए खाना खाया (५२), इती बात 'कुं' का समीना (७५), नदरि ज लब्भइ नदरि 'कुं' नदरि पुकारत जाइ (७२),

पु०। स्त्री० बहु० मे भी –कुं का प्रयोग इसी प्रकार मिलता है : सुलतांण देस देस 'कुं' मुलक मुलक 'कुं' फुरमाण दीनइ (३८)।

आकारान्त शब्दोमे 'कुं' 'आकार' को 'एकार' में बदलकर लगता है :

साहिजादे 'कुं' जियावणा (५१), साहिबा साहिजादे 'कु' वरणा (७५), साहिजादे 'कुं' क्या सुरोग (९०), साहिजादे 'कुं' ठंढ लागी (१०१)।

'कूं' के रूपमें यह 'कुं' दक्खिनी मे भी मिलता है, यद्यपि इसके सम्बन्धका

डॉ० श्रीराम शर्माका यह कथन मान्य नहीं लगता है कि "दक्खिनीका 'कूं' व्रज-के 'कहं' 'कहुं' से सम्बन्धित है।"[1]

एक० स्त्री० में कहीं-कहीं पर 'नु' विभक्ति भी मिलती है :

साहिजादा बीबीय 'नु' पकरि कइ उसही महल मइ आन्या (४०), पाछइ क्या कीजइ तबीबियां 'नु' (५९)।

इसी प्रकार पु० बहु० मे कहीं-कहीं पर नइ। नइं विभक्ति भी मिलती है :

सादा 'नइं' वग्गे (२४), सादा 'नइ' बजावउ (७५), सादा 'नइं' वाज-णइ लागे (११३)।

कही-कही पर सविभक्तिक अर्थोंमें निर्विभक्तिक रूपोंका प्रयोग भी हुआ है : 'साहिजादा' जिलावइ (५९)।

तृतीया विभक्ति

तृतीयाके रूप-निर्माणके लिए दो कुलोंकी विभक्तियोंका प्रयोग किया गया है : 'स' कुलकी तथा 'त' कुल की। 'स' कुलकी विभक्ति –'सुं' 'सूं' 'सौं' हैं और 'त' कुलकी हैं 'तइ', 'तइं', 'ती तथा 'थी'।

सुं। सूं। सौं : साहिब 'सुं' सुरत्तियां वर बोलिया वडाम (१), सुल्ताण 'सु' कहुंगी (५), साहिजादे 'सुं' कम्म (६), साहिब 'सौं' सुरत्तिया (९). साहिजादे 'सुं' सइतान लर्‌घा (५१), साहिबा ढढिनी 'सुं' कहे (५२), दीवह 'सुं' दीवे जोरे (५५), साहिजादे 'सुं' वषाणइ (७६), दाणसंवद साहिजादी 'सुं' साहिजादइ कह्या (१०१), मानूं चांद तारां 'सुं' रिसानइ (१०९)।

–थी : षूब 'थी' षूब होइगा (४८)।

–तइं। तइ : तउ कहइगे ढढिनी 'तइ' हुई बुराई (३०), षूब 'तइ' षूब होइं (४९), अबे मरणा 'तइं' क्या बुराई (१०६)।

–ती : न जाणीयइ गिरइ 'ती' क्या होइ (१०१)।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'सुं' बिभक्ति 'साथ' के आशयसे प्रयुक्त हुई है, जबकि 'तइ'। 'तइं' तथा 'ती'। 'थी' कार्य-कारण भावसे 'द्वारा' के अर्थमें प्रयुक्त हुई हैं।

दक्खिनीमें 'सूं', 'ते'। 'तें' तथा 'थे। थें' विभक्तियाँ मिलती हैं।[2]

---

१. वही, अनु० ११६।

२. 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० २४, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ११७।

कु० में एक-दो स्थानोंपर —ए विभक्तिसे भी काम लिया गया है :

वाडिया वेलियां 'नयणे' विषावइ (३), टुक एक 'धीरे' (४)।

कहीं-कहीं पर निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलते हैं :

तूं इहि 'काम' आई (९), अंषी अंषिनु 'वट्टडी' आनि गिलंदी ताहि (३१), 'लज्जा' न डरु (५७), 'लाजनु' सोचना हूवा (७३) 'पावहं पाव' सुलताण दरबारि आया (७४)।

चतुर्थी विभक्ति

चतुर्थीकी विभक्ति 'कुं' या 'कुं ताई' है।

—कुं : नाडी अत्थि तदोष 'कुं' नत्थि तदोष न लेषु (५२)।

—कुं ताई : पालिग तइ उतरि करि सलाम 'कुं ताई' हुआ (४९)।

ये विभक्तियाँ दक्खिनीमें भी मिलती हैं।[1]

क्रियार्थक संज्ञाएँ विकृत रूप-मात्रमें प्रयुक्त हुई हैं : बंदा जमा मसीति बंदियहु की बंदिगी 'देखणइ' हु गया था (३९), जमा मसीति 'देषणइ' गया था (४६)।

पंचमी विभक्ति

पंचमीकी विभक्तियाँ —हुतइं। हुतइ, —तइ और —थी है :

—हुतइं। हुतइ : दानसबंद कइ घर 'हुतइ' सहन केहुकी बाट चाहते हइ (२१), मंदिर 'हुतइं' डोल कई मंदिरि मांगी (५९)।

—तइ : कुमकुमा कइ अल महि 'तइ' निकस्या (१०६)।

—थी : डीवी डांग खल्लरी म जाणुं कहां 'थी' लीन्ही (४७), दिल्ल मइ 'थी' दिल क्या होइगा (५५)।

इनके साथ दक्खिनीकी ते। तें तथा थे। थें तुलनीय हैं, साथ ही उसमें सुं। से। सेती विभक्तियाँ भी पायी जाती हैं।[2]

कु० में एक स्थानपर पंचमीमें भी निर्विभक्तिक प्रयोग मिलता है : ही उट्ठा विट्ठाइयां 'दीहा' पंचइ च्यारि (१४)।

१. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५६ तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास, अनु० ११८।

२. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५४ तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास' अनु० ११६।

षष्ठी विभक्ति

षष्ठीकी विभक्तियाँ —का परिवारकी हैं, केवल दूहोंमें कभी-कभी —हुंदा— परिवारकी विभक्तियाँ मिल जाती हैं।

—का परिवारकी विभक्तियाँ निम्नलिखित है :

—का : पुल्लिग एक० की विभक्ति — का है, किन्तु अपने सामान्य रूपमें यह तभी प्रयुक्त होती है जब इसके बाद आनेवाली संज्ञा भी अपने सामान्य रूपमें हो :

मालिनी 'का' भेष करचा (४), साष 'का' सोरंभ आया (२२), दावल दानसवंद 'का' घर (२८), इंद्र 'का' गर्व भाग्या (४२), दरिया 'का' गर्व वादे (४३), तबीब 'का' भेष करि आई (५६), जीउ 'का' जीउ जाणु (५६), तारहु 'का' तेज छई (८९), एक जोगिणी 'का' स्वांग कीये एक भोगिणी 'का' (९१), पाचि 'का' काराबा (१०२), सारइ लाल 'का' प्याला (१०२), मा साहिबा 'का' न्याउ अछाए'''(१०९)।

—की : स्त्री० एक० की विभक्त —की है :

ढढिणि दाणसवंद 'की' (१), दानसंवद 'की' पूँगगी हइ (५), पुदाइ 'की' बंदिगी करते हइ (२१), अंगे खुदाइ 'की' फिरस्तई आया (२३), सुलतांण केलि 'की' खडकी खड़े हइ (३८), साहिजां 'की' साहिबा 'की' (५३)।

अपने विकृत रूपमें —का विभक्ति —कइ। —के मे परिवर्तित हो जाती है :

—कइ : साहिजादे 'कइ' आगइ धरयां (४), दावल दानिसवंद'के' (कइ ?) मांगिस इतना भात (१९), दानिसवंद 'कइ' घरह केहुकी बाटइ चाहते हइ (२१), दावल 'कइ' दरवारि वाइ वग्गे (२४), कइ साहिजादे 'कइ' साथि गोर मइ बाहुणा (५१), सुलताण 'कइ' दरबारि आई (५६), दावल दानसवंद 'कइ' आगलि बिछाओ ओली (६३), तीजइ 'कइ' आवत इं हुयाल कीन्हा (१०२)।

—के : करणी 'के' भारतर भरया (१०२), मां 'के' सिर ऊपर फेरि फेरि भाने (१०९)।

'कइ' तथा 'के' में से 'के' परवर्ती ज्ञात होता है, और हो सकता है कि प्रतिलिपि-प्रक्रियाकी परम्परामें आया हो।

बहु० पु० की विभक्ति 'के' है :

पाँच सोवन्न 'के' टका देवरइ धरे (४), दरेस पंच सइ भांग 'के' नूते दीदे घूरते हुइ (२१), साहिजादे 'के' पवे फुरकणइ लागे (३०), मालनी 'के' औसान भागे (३०), साहिजादे 'के' सिर ऊपर अवारणा हुइ (४८), तबीब 'के' रोर भागे (५८), पंच सइ सोने 'के' टके घोरइ मिलाओ (५८), सुलतांण 'के' बखत बड़े (७४), दुनी 'के' दीदे ऊघरे (७४), इयारह 'के' दिल-भरे (७४), दुसमणां 'के' दिल अरे (७४), पय हढिणिया 'के' बोल (८१)।

बहु० स्त्री० की विभक्ति –कीया। क्यां है :

जमा मसीति मिस्त 'क्यां' भोरइ लागी (२२), साहिबा सहिन 'क्यां' भरी हुइ (२६), जब की सहण 'क्यां' 'सिराई (५५)।

एक० की 'का', 'की' और बहु० की 'के' तथा 'कियां' विभक्तियाँ दक्खिनीमे भी मिलती हैं।[१] 'का' का विकृत रूप दक्खिनीमें 'के' मिलता है। 'कइ' नहीं। किन्तु प्राचीन दक्खिनीमें यदि वह 'कइ' रहा हो तो आश्चर्य न होगा, क्योंकि दक्खिनी साहित्यके लिए प्रयुक्त फ़ारसी लिपिमें 'कइ' तथा 'के' एक ही प्रकारसे लिखे जाते है।

–हुंदा परिवारकी विभक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

–हुंदा : एक० पुं० की विभक्ति –हुंदा है : लोयन 'हुंदा' लम्भ (१०), आगम 'हुंदा' मयण (१२), अंबर 'हुंदा' इंदला (८५)।

–हुंदे : बहु० पु० की 'हुंदे' है : पावस 'हुंदे' मोर (३३)।

हुंदा-समूहकी ये विभक्तियाँ केवल पद्योंमें मिलती हैं, अतः ऐसा ज्ञात होता है कि ये प्राचीनतर भाषारूपकी सम्पत्ति थी और पद्योंमें इनका प्रयोग कुछ-न-कुछ बना हुआ था, यद्यपि तत्कालीन बोलचालकी भाषामे षष्ठीके क्षेत्रमें –का समूहकी विभक्तियोंने पूरा अधिकार कर लिया था।

एक० पु० मे एक स्थानपर -हिं विभक्ति भी मिलती है :

–हिं : 'जुवाणिहि' जोग जूआ (७३)।

षष्ठीके लिए कुछ निर्विभक्तिक प्रयोग भी रचनामें मिलते है :

लंक 'धण' कइ मुट्ठियां (१५), 'पिय' हत्थां भउ काम (१५) हत्था

---

१. 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५५, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३२० –उदाहरण।

'काम' स पीउ भउ (१८), 'अंगी अंगिनु' वट्टडी जाणि गिलंदी ताहि (३१), 'साहिबां' नजरि (५६), 'साहिजादे' दीदे देषणाइ लग्गे (५८), 'साहिजादे' दिल अउर दिल (६९), पाछइ 'साहा' सुषासण असपती अंस चडाया (७४), 'दावल' दरबार सोर हूआ (७४), 'बीबियां' संग साहिजादा आइ दावल दरहि वादा (७६), 'जादे' जा दिन आगला 'साहिब' सा दिन रूप (८८), 'सट्ठि लष' लिअंदा प्याला भग्गा हइ (१०८), 'सट्ठि लप' लिअंदा (१०८) 'समरकंद' साहिजादी बीबी बिवाणां जाए (१०९)।

सप्तमी विभक्ति

सप्तमीकी सर्वाधिक प्रयुक्त विभक्ति –'इ' तथा –'अइ' हैं, जो अकारान्त शब्दोमें लगती है।

–इ : जाणे नी नारंगियां बे अंगिया 'मभारि' (१४), 'कमरि' करंदा लेहु (१८), इतई बीच साहिजादा दावल कइ 'दरबारि' जाइ वग्गे (२०), जाणेअग्गि अयांगियां पड़ी पुराणइ 'दंगि' (२८), दीदे दिग्घ उचाइयां साहिब साहिब 'अंगि' (२८), जब की सहुण क्यां 'सिरि' आई (५५), दावल दानिस-वंद कइ 'आगलि' बिछाओ ओली (७३), पावहं पाव सुलतांण दावल कइ 'दरबारि' आया (७०), बीबियां 'संगि' साहिजादा आइ दावल दरहि वादा (७६), वरणी 'सिरि' सिंदूर (७८), कउण गिलंदा 'षेलि' (८७), की पग 'पंतरि' चुक्कियां (१०४), टुकरे 'भंडारि' घरावउ (११०), 'घरि घरि' लग्गी लाइ (११२)।

–अइ : दोइ अप्पणाइ 'हत्थइ' कीयां (४), जाणे सीपि सुमुक्खियां 'कंठइ' कीर चुणंति (१३), जागतइ वेल्हतइ लगी किरण 'सुबिहाणइ' (४०), टुक एक जमा मसीति भिस्त क्यां 'भौरइ' लागी (२२), नारी दुइ 'जाइगहइ' हइ (५३), 'साहिजादइ' साहिबां हियां (५७), साहिब सा 'हत्थइ' किया 'हत्थइ' साहिब साहि (७७)।

इस –अइ का परिवर्तित रूप –ए है जो दक्खिनीमें मिलता है[1]। –अइ और –ए में प्राचीनतर –अइ लगता है। सम्भव है पुरानी दक्खिनीमें भी –अइ रूप ही रहा हो, जिसे फ़ारसी लिपिके कारण –ए पढ़ा गया हो, क्योंकि फ़ारसी लिपिमें दोनों एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३२१।

कभी-कभी आकारान्त शब्दोंका –आ –ए में परिवर्तित हो गया है, और उसके साथ –ह जुड़ गया है : किन्तु इसका एक ही उदाहरण है और वह पद्यमें मिलता है : घरि षल्लरी 'षवेह' (१८)।

कभी-कभी अकारान्त। आकारान्त शब्दोंको इकारान्त करके उनमे स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमे –आ। –आंह लगाया गया है ·

'हेलियां' साहिजादे कह अग्गइ धर्‌यां (४), जाणे सीप 'सुमुक्खियां' (१३), ढट्ठिणि ढोरी अंखियां साहिब 'संमुहियांह' (५४), जे मुत्ताहल दिट्ठियां तइ तन 'मभ्फरियां' (६४)।

इनके अतिरिक्त स्थिनिवाची स्वतन्त्र शब्दोंके घिसे हुए रूप भी जुड़े हुए मिलते है। इनमें-से दो प्रमुख है : एक तो 'मै' परिवारके और दूसरे 'पर' परिवारके।

'मै' परिवारके है मइ। मि। मै। महि। मंहि। मांहि : उसही महल 'मइ' आन्या (४०), महल 'मइ' आवतइ इंद्रका गर्व भाग्या (४२), दिल्ली सहर 'मइ' ए ज घेरे (४७), कइ साहिजादे के साथ गोर 'मइ' वाहणा (५१), दिल 'मै' दिल आया (५३), पंच सइ सोने के टके षोरइ 'मि' लाओ (५८), अबीर 'महि' मुझइ भरम होइ (१०१), कुमकुमा कइ जल 'महि' तइं निकस्या (१०६), अबीर 'मंहि' षोजइं षोज देष्या (१०६), दीली 'मांहि' सौर पर्‌या (५१)।

'पर' परिवारकी हैं परि। पर तथा उप्परइ। उप्परि। उप्पर।

परि। पर : साहिजादां पलंग 'पर' लेट्या (४०), रंग 'पर' रंग ओढनी साहिजादइ दीनी हइ (१०२), जाणे नील कमल 'पर' बे दीयै की जाला (१०२), सिर 'परि' पेरो साहि (८५), चादर सिर 'परि' लीनी (१०८), लइ टुकरे गउष 'परि' चीना (११३)।

उप्परइ। उप्परि। उप्पर : साहिजादे चादरि सिर 'ऊपरि' लीनी (८२), साहिजादे सिर 'उप्परइ' मो साहिबीयां तनफेरि (३६), साहिजादे के सिर 'उप्पर' अवारणा हइ (४८), फेरिबे दस लाष टके उर सिर 'उप्परइं' (४६), मां के सिर 'उप्पर' फेरि फेरि माने (१०९)।

निर्विभक्तिक प्रयोगोंकी भी सप्तमीमें कोई कमी नहीं है :

'बरस' नव तीनि तेगह पवाणा (२), एकसि 'द्यउस' देवर ढढिनी मालिनी का भेष कर्‌यां (४), पिय 'हत्था' भउ काम (१५), जाणे राई

'बेलियां' फूल्ली नीकलियांह (१७), ढढ्ढिनी 'गाइबा' ही गुमान बोली (२७), दीदे दिग्घ उचाइयां साहिब साहिब 'अंग' (२८), ढढ्ढिनियां हिय 'हत्थ' लइ—(३६), जउ 'जोरां' तउ तुज्झ ही जउ 'गोरां' तउ तुज्झ (३७), सुलताण केलि की 'खडकी' खडे हुइ (३८), आणि 'दरबार' रोके (५१), ढढिणि ढोरी अंषियां साहिब 'संमुहियाह' (५४), नारी नारि 'सुहत्थियां' नारी नारि 'सुहत्थ' (५७), साहि 'घरां' साहिबियां जिणि दिण्णियां सुजाणि (६२), 'लज्जा' गउ गुण आगुणी घण 'लज्जा' वउहार (६१), 'लज्जा' गउ जुअ जोअणा (६१), साहिबियां सर 'मद्धरा' हंस करंदा केलि (६३), जमाजमीति 'मसीतिया' दुहु दिट्ठियां रसाइ (७२), वर 'सिर' सोहइ मेहरा वरणी 'सिरि' सिंदूर (७८), प्रथम 'पलिंगा' साहिबा साहि दिहंदा वयण (८५), इह अउर उगंदा 'गयणा' (८५), जे अंबा ही 'अब्ब' (९८), आए 'पग' पाण (१०१), 'फुरमाण' धाई (१०२)।

दक्खिनीमें भी इसी प्रकारके निर्विभक्तिक प्रयोग पाये जाते हैं[1]।

सम्बोधन :

सम्बोधनकी दो प्रणालियाँ मिलती हैं। एक तो सम्बोधनात्मक अव्ययोंके साथ पुकारनेकी, और दूसरी बिना इस प्रकारके अव्ययोंके पुकारनेकी। प्रथम प्रणालीके प्रयोग भी दो प्रकारके हैं; या तो संज्ञाएँ अपने सामान्य रूपमें आयी हैं और या तो विकृत रूपमें।

सामान्य रूपमें : एक० पु० : 'साहिजा' मुझइ जानता हुइ (४९), 'साहिजा' साहि वहां (४९)। एक० स्त्री० : 'साहिबां' दीदे उनइ (२७), 'साहिबां' साहिजादा जीवइगा (५५), 'साहिबां' आसा आणि (१०१), 'मालणियां' तैं दिट्ठियां (१७), 'ढढिनियां' सोना भला (३५), 'ढढिनियां' हिय हत्थ करि (३६)।

बहु० पु० : 'दोस्तान दोस्तान' करि हस्तक्यां दीनी (२२), 'दोस्तान दोस्तान' तत्ता भत्तु लाओ (२५), दरेस 'दोस्तान' भत्त लइ आवनइ हुइ (२६)।

विकृत रूपमें : एक० पु० : 'साहिजादे' आपणी जंभीरियां सुहंगीयां न बेच्चुगी (५), 'साहिजादे' केही कहूं साहिब मूरति सुभ्म (१०), 'साहिजादे' धंधा न होउ (१८), 'साहिजादे' किणि बुझाइयां (५८)।

१. वही।

प्रयुक्त अव्यय निम्नलिखित प्रकारके है :

पु० । स्त्री० 'बे' : 'बे' दावल दानमवंद का घर (२५), 'बे' दावल साहिजादा जीइयां (७४), 'बे' साहिबा अजहुं न आई (१०६) ।

पु० । स्त्री० 'अबे' . 'अबे' मालनिया तूं इहि काम आई (९), 'अबे' जमा राति कदि हुइ (२०), 'अबे' फिरस्तइ फेरे (४७), 'अबे' मरणा तइ क्या बुराई (१०६) ।

स्त्री० 'रि' : देषि 'रि' दिषुं (५३) ।

दक्खिनीमे भी ये दोनों प्रणालियाँ पायी जाती है। उसमे उपर्युक्तमे-से 'रि' का पुल्लिग रूप 'रे' है तथा एक अन्य अव्यय 'ऐ' है[1] ।

मिश्र विभक्तियाँ :

कहीं-कहींपर एकसे अधिक विभक्तियाँ एक साथ ही आयी है : दिल्ल 'मइं थी' दिल्ल क्या होइगा (५५), कुमकुमा कइ जल 'महि तइ' निकस्या (१०६) ।

सर्वनाम

उत्तम पुरुष :

एकवचन : कु० मे एक० कर्त्ताके दो रूप आते है : 'हूं' तथा 'मइं' :

हूं : हां साहिजादे 'हूं' इहि काम आई (९), 'हूं' मालनी इहि काम (९) ।

मइं । मइ : 'मइ सउणा सुणि दिट्ठिया (६३), 'मइं' जाणिया निसीब (६९) ।

यह मइ । मइं दक्खिनीके 'मैं' से तुलनीय है। डॉ० श्रीराम शर्माने लिखा है कि 'मइं' रूपका प्रयोग दक्खिनीके अनुप्रासके लिए ही पंक्तिके अन्तमें हुआ है।"[2] किन्तु यह सम्भावना भी विचारणीय है कि वास्तविक रूप 'मइं' ही रहा हो, कमसे कम पुरानी दक्खिनीमे, इसीलिए अनुप्रासके स्थानोमें अब भी 'मइं' बना हुआ है, अन्यथा 'मइं' और 'मैं' के फ़ारसीमें सर्वथा एक-से लिखे जानेके कारण और आधुनिक उर्दू तथा हिन्दीमे 'मैं' का ही प्रचलन होनेसे

१. वही, अनु० ३२२ ।

२. वही, अनु० २२३ ।

शेष स्थानों पर 'मइं' को भी 'मैं' पढ़ा गया हो। दक्खिनीमें 'हूँ' नहीं है।

एक० कर्म-सम्प्रदान : कु० में इसके दो रूप मिलते हैं, एक तो 'मुझ' से बना हुआ 'मुझइ' तथा दूसरा 'मेरा' से बना हुआ 'मेरे कुं' :

—मुझइ : साहिजादा 'मुझइ' जाणता हइ (४९), अबीर महि 'मुझइ' भरम होइ (१०१)।

—मेरे कुं : 'मेरे कुं' सहम होइगा (४८)।

दक्खिनीके 'मुझे' और 'मेरे कूं' तुलनीय है।[1] 'मुझइ' और 'मुझे' फ़ारसी लिपिमें समान रूपसे लिखे जाते है, इसलिए यह विचारणीय है कि पुरानी दक्खिनीमें रूप 'मुझइ' था या 'मुझे'।

एक० सम्बन्ध : कु० में इसका रूप 'मेरा' है :

एक० मेरइं : एक पुंगरा 'मेरइं' हो पुराणा (४६)।

बहु० मेरे : 'मेरे' दीदे दूषण लग्ग (८)।

दक्खिनीका 'मेरे' इससे तुलनीय है।[2] यह विचारणीय अवश्य है कि जो सामान्यतः 'मेरे' समझा जाता रहा है, वह पुरानी दक्खिनीमें 'मेरइ' तो नहीं था, क्योंकि फ़ारसी लिपिमें दोनों एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

सम्बन्ध० मे पद्योंमें 'मैं' के विकृत रूप 'मो' तथा 'मुज्झ' बिना प्रत्ययके भी प्रयुक्त हुए हैं : 'मो' साहिबियां तन फेरि (३६), यह करंदा 'मुज्झ' हइ (३७)।

दक्खिनीमें मुंज। मुझ ही मिलता है।[3] 'मो' नहीं मिलता है।

बहुवचन : कर्त्ता बहु० के रूपमें 'हम' तथा उसके विकृत रूपमें 'हमइं' हैं :

हम : 'हम' तब हीं पाई (५५), तब कछू 'हम' गावइ (५८), 'हमहु' सुलतान पेरो साहि उपाए (१०८)।

हमइं : जहमतियां 'हमइं' सोधी (७३)।

इस 'हमइं' का —अइं संज्ञाकी कर्त्ता विभक्ति -अइं से तुलनीय है।

विकृत सम्बन्ध० : एक० : हमारा : 'हमारा' क्यां तू पराई (५५), 'हमारा' क्या चलइ (६६)।

बहु० : हमारे : 'हमारे' हस्तइं हस्तइं दीदे दूषणइ आया (३९)।

---

१. वही। २. वही। ३. वही।

ये सभी रूप दक्खिनीके रूपोसे तुलनीय हैं।[1]

सर्वनाम : मध्यम पुरुष

कु० में मध्यम पुरुष सर्व० के लिए 'तूं' तथा उसके विभिन्न रूप है। अविकृत एक० में तु। तू। तू प्रयुक्त है।

या 'तू' इहि काम आई (९), 'तू' रस कामंधा भूषिया (३२), 'तु' कहां थां (३८), हमारा क्या 'तू' पराई (५५)।

अविकृत बहु० : 'तुमहं' प्रयुक्त हुआ है . 'तुमहं' बहर करणा (७५)।

विकृत एक० कर्त्ता के दो रूप मिलते है : 'तइ' तथा तइं :

तइ . 'तइ' तत्ता षांन षाईया (५४)।

तइं : ते 'तइ' ही हसि हंसरा वइ वर गंजरियाह (६४)।

किन्तु हो सकता है कि 'तइ' में 'इं' का बिन्दु भूलसे छूटा हुआ हो।

विकृत एक० सम्बन्धके लिए 'तेरा' तथा 'तुज्झ' प्रयुक्त मिलते है :

तेरा : सुलतांण कह्या 'तेरा' ई हइ (१११)।

तुझ : जउ जोरां तउ 'तुज्झ' ही जउ गोरां तउ 'तुज्झ' (३७), और करंदा 'तुज्झ' (३७)।

'तूं', 'तेरा' 'तुज्झ' और 'तुम्ह' दक्खिनीमें भी पाये जाते हैं।[2]

सर्वनाम। विशेषण : निकटवर्ती निश्चयवाचक

अविकृत एक० : कु० में इसका रूप पु० 'इह' तथा स्त्री० 'अइ' है।

पु० : इह : 'इह' अउर उगंदा गयण (८५)।

स्त्री० : अइ : दुनी साहिजादइ 'अइ' मत्यां लीनी (४१)।

विकृत एक० का रूप 'इहि' है : 'तू' इहि काम आयी (९) हूं मालनी 'इहि' काम आयी (९), हूं मालनी 'इहि' कम्म (९)।

अविकृत बहु० का रूप 'ए' है जो पुल्लिंगका है :

'ए' . दिल्ली सहर मइ 'ए' ज घेरे (४७)।

विकृत बहु० का 'एण' है जो पुल्लिगका है .

---

१. 'दक्खिनी हिन्दी,' पृ० ४६, तथा 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास,' अनु० ३२५।

२. दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास, अनु० ११४।

'एण' . 'कंपण' लागे अंगवल 'एण' सुणंदा हल्ल (६७) ।

'इह' और 'एण' से दक्खिनीके 'ई', 'ये' और 'इन' तुलनीय है ।[1]

सर्वनाम । विशेषण : दूरवर्ती निश्चयवाचक

कु० में तीन परिवारोंके सर्व०। वि० दूरवर्ती निश्चयवाचकके रूपमें प्रयुक्त हुए हैं : वह परिवार, स परिवार और त परिवारके। किन्तु स परिवारका प्रयोग बहुत सीमित है : वह केवल अविकृत एक० कर्त्ताके लिए ही प्रयुक्त हुआ है, शेष रूपोंके लिए उसने त परिवारको अपना स्थान दे दिया है।

वह परिवार :

अविकृत एक० : ओह । ओही (ओह + ई) हालु (५०) ।

विकृत एक० : वइ : 'वइ' पुज्जइ दिल लब्भियां (६२) ।

उस : अब 'उस' सुं क्या करण आईयां (५८) । 'उस' का वरण सुहंदा झग्ग (८), मां साहिबा का न्याउ अछए 'उस' कइ दावल पछइ (१०९) ।

'त' परिवार :

विकृत एक० कर्त्ता : जिणि लगाइयां 'तिणि' ही बुझाइयां (५८) ।

वही, कर्म : अंपी अंपिनु वट्टडी जाणि गिलंदी 'ताहि' (३१) ।

वही, करण : 'तिसही सुं' पुकारइ (४५), 'तिस ही सुं' यों कहइ (५०)

विकृत बहु०, कर्त्ता । कर्म : 'ते' तइ ही हसि हंसरा वइ वर गंजरियाहं (६४), 'तें' सु कहंदी गाइ (८४), 'ते' हवाल कहणा (१०२), जिणि खाइयां 'ते' दिषावहू (५) ।

वही, सम्बन्ध : 'तिन्ही' तिन्नि अवत्थडी (९५) ।

स परिवार :

अविकृत एक० : सा : जादे जा दिन अग्गला साहिब 'सा' दिन रूप (८८)

वही : सो : जिण ही जीय जहमत्तियां 'सोई' हुआ तबीब (६६) ।

वही : सु : 'सु' मुह मुहर जंभीरियां मांगती हुइ (५), बोलणा हुइ 'सु' बोलि (५९), ते 'सु' कहदी जाइ (८४) ।

---

१. वही, अनु० ११४ ।

इन तीनों परिवारोंका प्रयोग दक्खिनीमे भी हुआ है और अन्तर भी अधिक नहीं है।[1]

सर्वनाम : विशेषण : निजवाचक

निजवाचक सर्वनामके रूपमे 'अप्प' । 'आप' का प्रयोग हुआ है।

एक० कर्त्ता० : आप 'आपइ' छपी किनहुं छिपाई (१०६)।

वही, कर्म० अप्प · जे लोइंदे 'अप्प' (९५)।

वही, सम्बन्ध (अविकृत) : 'अप्पाण' पर डर (२५)।

वही, सम्बन्ध (विकृत) : अप्पणइ : दोइ 'अप्पणइ' हत्थइ कीयां (४), 'अपनइ अपनइ' घरह की बाटयां लीनी (३८), खइर करंतइ कोडि कहि मन 'अप्पणइ' विचारि (१०७)।

बहु० कर्त्ता, पु० : अप्पा . 'अप्पा' काम कमच्छला बहु देखंदा कग्ग (९३)

वही, सम्बन्ध (अविकृत) पु० : अप्पणा : जाणे सर्पनि अप्पणा चर चिंटुआ भषंति (११)।

वही, सम्बन्ध (अविकृत), स्त्री० : आपणी : आपणी जभोरिया सुहंगियां न बेचुंगी (५)।

वही, सम्बन्ध (विकृत), पु० : आपणइ · 'आपणइ' कपरे कीए (३८)।

इन प्रयोगोंसे तुलनीय है दक्खिनीका अपना । अपन ।[2]

सर्वनाम । विशेषण : सम्बन्धवाचक

सम्वन्ध वाचक सर्वनाम । विशेषण 'ज' परिवारके हैं। विशेषणके रूपमें अविकृत रूप प्रयुक्त होता है और सर्वनामके रूपमें दोनों प्रयुक्त होते हैं : अविकृत तथा विकृत रूप।

एक० विशेषणके रूपमें :

जो : 'जो' दरवेस ज्युं था (२३), 'जोई' दानसवंद आवइ (५०)।

जु : 'जु' फुरमाण दीना (७५)।

जा : जादे 'जा' दिन अग्गला (८८)

---

१. वही, अनु० ३३२–३३३।

२. वही, अनु० ३३०।

एक० सर्वनामके रूपमें :

कर्त्ता (अविकृत) जो . 'जो' आवे (२०) ।

कर्त्ता-कर्म (विकृत) : जिण । जिणि : 'जिण' मुहर अंभीरियां लिन्न (७), 'जिणि' लगाइयां तिणि बुझाइयां (५८), साहि धरा साहिबियां 'जिणि' दिण्णयां सुजाणि (६२), जिण' ही जीय जहमत्तियां (६६) ।

सम्बन्ध० पु० : जिसका, स्त्री० : जिसकी : 'जिसकी' सूरति लोवतइं-(८) ।

बहु० विशेषणके रूपमें :

जे : अप्पाण पर डर गया 'जे' आण मर (२५), 'जे' 'जे' रत्ति उगत्तियां कालिह कहंदी केलि (८२), 'जे' रति सुट्ठि सुगुंठीयां (८४) ।

बहु० सर्वनामके रूपमें :

कर्त्ता-कर्म (अविकृत) : जे : 'जे' मुत्ताहल दिट्ठियां तइ तन मंकरियां (६४), 'जे' दिट्ठा ही पिट्ठ (९२), 'जे' लोअंदे जग्ग (९३), 'जे' पेम सु वुट्ठइ धार (९४), 'जे' लोइंदे अप्प (९५), 'जे' अणरत्ता ही रत्त (९६), 'जे' जुग जोइ अरत्त (९७), 'जे' अंबा ही अब्ब (९८), 'जे' जाणि परंदा गत्त (९९), 'जे' रंगइ करियांह (१००) ।

कर्त्ता-कर्म (विकृत) जिणि । जिणइ : 'जिणि' षाई है ते दिषावहु (५), 'जिणइ' दुणिया जाणी (१०२) ।

अविकृत 'जो' तथा विकृत 'जिस' दक्खिनीमें भी प्रयुक्त होते रहे हैं ।[1]

सर्वनाम । विशेषण : अनिश्चयवाचक

अनिश्चयवाचक सर्वनाम । विशेषणके रूपमें 'कोउ । को' और 'के' के विभिन्न रूप प्रयुक्त हुए हैं ।

एक० सर्व० कर्त्ता : कोउ : जब सब 'कोउ' कुसादे होउ तउ कछू कहुं (५०) ।

विशे० : को : मिलावणा तमहुं 'को' घो (७३), 'को' घरियां घर लग्गियां रत्ता तोइ अरत्त (९९) ।

विशे० : के : 'के' दिन के ही केलियां 'के' दिन केही केलि (८७) ।

१. वही, अनु० ३३४ ।

विकृत कर्त्ता० 'किन' : 'किन' हुं छिपाई (१०६)।

विकृत सम्बन्ध 'किसऊ' : 'किसऊ' की डीवी 'किसऊ' की डांगी, 'किस हू' की खालरी चोरी (८३)।

विकृत सम्बन्ध 'केहु' : 'केहु' की वाट इ चाहते हइ (२०)।

'एक' विशेषणका भी प्रयोग अनिश्चयवाची सर्व० के रूपमे हुआ है :

अविकृत 'एक-स' : 'एकस एकस कु' गहुंगी (५)।

विकृत कर्त्ता एकइं : 'एकइं' योग (९०), 'एकइं' भोग (९०)।

'को', 'किस' तथा 'किन' दक्खिनीमे भी प्रयुक्त हुए है।[1]

सर्वनाम। विशेषण : प्रश्नवाचक

जीववाची प्रश्नवाचक सर्वनाम 'कउण'। 'कुण' परिवारके है, और अजीववाची 'क्या' परिवारके :

अविकृत 'कउण' : 'कउण' करंदा कारिण (६२), 'कउण' गिलंदा षेलि (८७), 'कउण' करंदा वप्प (९५), 'कउण' हुअंदा हाल (१०५)।

विकृत कर्त्ता 'किणि' : साहिजादे 'किणि' बुझाइया (५८)।

विशे० 'कुण' : 'कुण' स केही पूंगरी जिहि मुहर जंभीरिया लिन्न (७)।

सर्व०। विशे० 'क्या' : खाइयां 'क्या' कहावइ (५), षानइ की क्या चलावइ (४०), अर दिल्ल मइं थी दिल 'क्या' होइगा (५५), सुलतांण 'क्या' रिसाई (४८), 'क्या' स नर, क्या स नारी (५६), 'क्या' करहिगा मरू (५७), अब उससुं 'क्या' करण आइयां (५८), पाछइ 'क्या' कीजइ तबीबियानु (५०), हमारा 'क्या' चलइ (६६), 'क्या' बातियां निसीब (६८), जहमतीयां 'क्या' जाणइं (७३), इती बात कुं 'क्या' समीना (७५), ढढिणियां 'क्या' गाया (८४), न जाणीइ साहिजादे कुं 'क्या' सु रोग (९०), न जाणीयइ गिरइती 'क्या' होइ (१०१), अबे मरणा तइं 'क्या' बुराई (१०६), मां 'क्या' षून (१०८), अउर 'क्या' षून (१०८)

कह्या : सुलतांण 'कह्या' इउं कीया (७४)।

सर्व० काइं : हूआ हूअंदे 'काइं' (११४)।

उपर्युक्त 'कउण' तथा 'क्या' से दक्खिनीके 'कौन' तथा 'क्या' तुलनीय है।[2]

---

१ 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास'. अनु० ३३५, तथा 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० ५१।

२. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास,' अनु० ३३७-३३८।

'कउण' तथा 'कौन' का अन्तर नागरी तथा फारसी लिपियोंके अन्तरके कारण तो नही है, यह अवश्य विचारणीय है।

विशेषण

विशेषण : गुणवाचक

रचनामे विशेषणोके लिंग तथा वचन विशेष्यके लिंग-वचनके अनुरूप दिखाई पडते हैं। एक०के लिए सामान्यरूपोंमें –आ तथा –ई लगाकर क्रमश: पुल्लिग और स्त्रीलिंग बनानेकी व्यापक प्रवृत्ति है।

एक० पु० –आ : वर बोलिया 'वडाम' (१), साहिजादा कुतबदी 'जुआंणां' (२), तेगह 'पवाणां' (८), वरण 'सुहदा' झग्ग (८), मांगि स 'तत्ता' भात (१९), जाणे जीवण 'इक्करा'—(२९), तू रस 'कामंघा' 'भूखिया' (३२), ढढ्ढिनिया सोना 'भला' (३५), तइ 'तत्ता' षान षाइया दाझइ साह हियांह (५४), नेह 'समट्ठा' निठ्ठ (९२)।

एक० स्त्री० –ई : ढढ्ढनि दानसवंदकी 'अठ्ठी' देवर नाम (१) 'दोसी' अगा बीबी बिवाना बइट्टी (३), कुण स 'केही' पुंगरी (७), 'पक्की' जाणि जंभीरियाँ (८), 'झुट्ठी' मालनि रुन्न (७), साहिजादे 'केही' कहूं साहिब सूरति सुम्भ (१०), विधि रसु 'रंगी' बाम (१५), पाइ स रत्ता पंकजां 'अट्ठी' अंगुलियांह (१६), आसा 'अंधी' ढढ्ढिनी (२३), ढढ्ढिणि या 'णीकी' कही (५२), 'नीकीय' नारी देषु (५२), इह तउ 'उलटी' कही (३३), साहिघरां साहिबियां जिण दिण्णियां 'सुजाणि' (६२), लज्जा लीक 'उलंघणी' (६६), 'असि' अस माना तर तरुणि (७१), वसंत रितु 'पाछी' भई (८९)।

बहु० पु० –आ। आं : ही 'उट्ठा' दिट्ठाइयाँ (१४), पाइ स 'रत्तां' पकजां (१६)।

बहु० पु० –ए : सब कोउ 'कुसादे' होउ (५९), सुलतान के बषत 'बडे' (७४), दुनिया दाणसवंद 'बडे' वषाणइ (७५)।

बहु० स्त्री० –यां 'पक्किया' नारिग्या गंभीन्यां भर्यां (४), बेलियां 'बंकियां' कन्या (४), अपनी जंभीरिया 'सुहंगिया' न बेचुंगी (५)।

बहु० स्त्री० –यांह : जाणे राई वल्लियां फूल्ली 'नीकलियांह' (१६)

कहीं-कहीं बहु०के लिए भी एक० रूप ही प्रयुक्त हुआ है : 'मूआ' बहूंदा साहि (११४)।

दक्खिनीमें भी प्राय. इसी प्रकार गुणवाचक विशेषणोंके लिंग और वचन-का निर्माण होता है।[1] डॉ० श्रीराम शर्मा लिखते है, "पंजाबीमें विशेष्यके लिग और वचनके अनुसार विशेषणके लिंग तथा वचन प्रभावित होते है, दक्खिनीमें इस प्रकारके प्रयोग पंजाबीके प्रभावको प्रकट करते हैं।"[2] दक्खिनी-मे भी यह प्रवृत्ति खडी बोलीसे ही गयी है, यह इस रचनासे प्रमाणित है। इन्शाके गद्यमें जो यह प्रवृत्ति मिलती है, वह भी इसी कारण है।

विशेषण : परिणामवाचक

पु० इता : 'इता' ही पूछता सदि हइ (२०)।

स्त्री० इती। इतनी : 'इती' बात करतइं बीबियां ऊठी (७३), 'इती' बात कुं क्या समीना (७५), 'इतनी' बात करतइ—(३८), 'इतनी' वात्यां कर-तइ—(४१) 'इतनी' करतइ कपरे फेरे (५५), 'इतनी' बात करतइ—(७६), (८९), (९०), (९१), (१०१)।

स्त्री० उंती : न जाणउ 'उंती' घरी कित एक अमरे (१०९)।

पु० कितएक : न जाणउ उती घरी 'कितएक' अमरे (१०९)।

पु०। स्त्री० कुछ : 'कुछु' षाहु 'कुछु' षुलावहु (२५)।

दक्खिनीमें भी ये विशेषण मिलते है।

विशेषण : संख्यावाचक

संख्याएँ बहुत थोड़ी मिलती है :

एक। एक –स। एक–सि। हेक : सदकइ 'एक' फुरमाण लहुं (५९), 'एकस –एकस' कुं गहुंगी (५), 'एकसि' द्यउस देवर—(४), मुती 'हेक' रुलंति (१३)।

दोइ। दुइ। दो : 'दोइ' अप्पणइ इत्थइ कीया (४), बार 'दुइ' च्यारि यों ही पुकान्या (४६), यों करंतइ रोज 'दुइ' च्यारि गले (५१), नारिंगी 'दो दो' च्यारि बंटे दीयां (४)।

बे : जाणे नी नारिंगियां 'बे' अंगिया मझारि (१४)।

जुय : लज्जी गए 'जुय' जोवणा (६१)।

तीनि : 'तीनि' अरब—(११०)।

---

१. वही, अनु० ३५१।

२. वही, अनु० ३५३, ३५५।

तीजी : ढढिणी 'तीजी' बार (८३)।

च्यारि : बार दुइ 'च्यारि' (४६), रोज दुइ 'च्यारि' गले (५१), नारिंगी दो दो 'च्यारि च्यारि' बंटे दीयां (४)।

पाँच : 'पाँच' सोवनके टके देवरइ धरे।

दस, बारह, बासठ, नवे, सइ, लाष, करोड़, अरब : फेरिबे 'दस' 'लाष' टके (५९), 'नवे' 'पंच' 'सइ' हत्थ सोवन्न लट्ठी (६), दरेस 'सइ' पंच—(२१), पंच 'सइ' सोने के टके (५८) तीनि 'अरब' बासठ करोड़ बारह लाष (११०)।

ये संख्याएँ प्राय. इसी प्रकार दक्खिनीमे भी मिलती है।[1]

क्रिया

क्रियार्थक संज्ञा :

यह धातुमें णा । ना लगाकर बनी है :

भत्तु लइ 'आवनइ' हुइ (२६, ३८), लज्जा लोयन 'नच्चवणा' लोय हसंदे कलिल (३४), दुनिया दुक्ख लगाइया अति 'जागणा' अरंग (३५), बीबी दुख 'लइनइ' कहइ परि 'दूषना' न जाणइ (४०), हाला कइ 'मारणा' न थी (४७), 'मारणा' हइ कि 'जियावणा' हइ (४८), माल 'वारणा' हइ (४८), साहिजादे से सिर ऊपर 'अवारणा' हइ (४८), 'फेरणा' हइ (४८), सुलताण 'दहणा' खूब हइ (४९), बीबीहुं 'रोवणां' मांड्या (५१), 'बोलणा' हुइ सु बोलि (५९), साहिजादे कुं 'जीयावणा' (५१), जं 'धावणा' सु घाउ (७०), लाजहुं 'सोचणा' हूआ (७३), 'मिलावणा' तुमहुं को थी (७३), ते हवाल 'कहणा' (१०२), जिणइ दुनिया जाणी तिणइ का 'लहणा' (१०२)

डॉ॰ श्रीराम शर्माके अनुसार दक्खिनीमें-ना लगाकर क्रियार्थक संज्ञा-रूप बने हैं।[2] किन्तु 'णा' और 'ना' फ़ारसी लिपिमें एक-से लिखे जाते है, इसलिए यह विचारणीय है कि पुरानी दक्खिनीमें क्रियार्थक संज्ञाओमें फ़ारसीके 'नूं-अलिफ़' का ध्वनिक मूल्य क्या था।

प्रेरणार्थक रूप

यह धातुमे –आव् और –लाव् लगाकर बना है।

–आव् : विरषे भराए (९०), बारि उंछह लगाए (६०), घर बणाए

१. वही, अनु॰ ३५३, ३५५।
२. वही, अनु॰ ३७०।

(९०), भूषण भराए (९०), बितन तणाए (९०), नयणे दिषावइ (३), खाइयांका कहावइ (५), ते दिषावहु (५), षानइकी क्या चलावइ (४०), टुकरे भंडारि धरावउ (११०)।

लाव् : कुछ षाहु कुछ षुलावहु (२५), जीव इ तउ जिलाओ (५८)।

विधिके रूप :

ये प्रच्छन्न 'तू' के साथ –इ। –हि, –अइ। –ए अथवा –अ लगाकर, प्रच्छन्न 'तुम'के साथ –उ। –अउ। –अहु। –ए लगाकर और प्रच्छन्न 'आप'के साथ –ई। –इय अथवा –ई। इं लगाकर बने है।

–इ। –हि : 'धरि' षल्लरी षवेहि (१८), आरतियां करि 'हेरि' (३६), 'देषि' रि दिषुं (५३), बोलणा हइ सु'बोलि' (५९), मो साहिबियां तन 'फेरि' (३६) 'खाहि' न कच्चा षान (३२), साहिबां आसा 'आणि' (१०१), 'मागि' बे लाल ढमरे (१०९), 'राषि' भावइ 'गमाइ' (१११)।

–अइ। ए : साहिबां दीदे 'उनइ' (२७), बे मालिनियां आइया 'करे' (४)।

–अ : ईर कहंदा 'बुज्झ' (३७)।

–उ। अउ . तबीब तमांम दूरि 'करउ' (४८), जं धावणा 'सु घाउ' (७०) तउ मिलि मगल 'गाउ' (७०), नीकी नाडी 'देषु' (५८), साहिजादे दीदे न 'भरु' (५७), लज्जी न 'डरु' (५७), कीयां सु 'करु' (५७), टुकरे भंडारि 'धरावउ' (१११)।

–अहु : एताल 'ध्यावहु' (५), नातर मुहर मुहर जंभीरियां—'ल्यावहु' (५), कुछ 'षाहु' कुछ 'षुलावहु' (२५)।

–ओ : पंचसइ सोनइ के टके षोरइ मि 'लाओ' (५८), जीवइ तउ 'जिलाओ' (५८), दावल कह आगइ 'बिछाओ' ऊली (७३)।

आदरार्थक प्रच्छन्न 'आप' के साथ यह रूप –ई। –इय लगाकर बना है :

–ई : क्या 'रिसाई' (४८), ढोल कई मंदिरि 'मांगी' (५०), जुबान 'हुंवांगी' (५९), पाधर सर जिम 'कड्ढीइं' (९२)।

कर्मवाच्यके क्रियारूप –ईइ अथवा –इबा लगाकर बने है :

–ईइ न 'जाणीइ' क्या सुरोग (९०), न 'जाणीइ' गिरइ थी क्या होइ (१०१)।

–इबा : 'फेरिबे' दस लाख टके सिर उप्परइ' (४९)।

क्रिया : सामान्य वर्तमान काल

सामान्य वर्तमान कालकी एक० क्रियाएँ सामान्यतः धातुमें –इ। अइ जोड़कर बनायी गयी है :

–इ। अइ : 'गज्जइ' गयण न नच्चिया पावस हुंदे मोर (३२), पूबतइ पूब 'होइ' (४९), 'दज्झइ' साह हियाह (५४), सहरा ढढिणी सु 'गाणइ' (७६), साहिजाद सुं 'वषाणइ' (७६), तुग तोरण करस 'ठाणइ' (७६), वर सिर 'सोहइ' सेहरा (७८), काम स 'कड्ढइ' साल (७९), अबीर मह मुझइ भरम 'होइ' (१०१), 'देषइ' तउ पग लस्या (१०६), एक पाइ षरा कुतुब दी अरदास 'करइ' (१११), जीमी 'जीवइ' कुतुबदी (११४)।

किन्तु इस रूपका प्रयोग भूतकालके अर्थमें भी हुआ है—क्रियाका रूप तो वर्तमान कालका है, किन्तु आशय उसमे भूतकालका है :

बाडिया बेलिया नयणे 'दिखावइ' (३), साहिजादा आगइ सरकणइ न 'पावइ' (३), कपूर पानइ न 'भावइ' षानइ की क्या 'चलावइ' (४०), बीबी दुष लइनइ कहइ परि दूषना न 'जाणइ' (४०), जोइ दानसवंद 'आवइ' पानी 'अंजरइ' (४५, ५०), तिस ही सुं यों 'पुकारइ' 'कहइ' (४५, ५०)।

–ए : कहीं-कहींपर यह –अइ –ए में परिवर्तित हो गया है।

'जाने' की करतारियां (१०), जो 'आवे' (२०), दरबार देपतइ दरिया का गर्व 'वादे' (४३), साहिबा ढढ्ढिणी सु 'कहे' (५२)।

ऐसा ज्ञात होता है कि यह परिवर्तन प्रतिलिपि-प्रक्रियामें हुआ है क्योंकि –ए कदाचित् –अइ से परवर्ती है।

हइ : (ह् + अइ) : होना – वर्गकी क्रियाएँ 'हइ' रूपमे तीन प्रकारकी हैं : एक वे है जो सामान्य वर्तमान कालको व्यक्त करती हैं, दूसरी वे हैं जिनमें किसी कार्यके होते होनेका भाव है और तीसरी वे जिनमें कार्यके आगे होनेका भाव है। पहलेमे केवल 'हइ' प्रयुक्त हुआ है, दूसरेमें क्रियाका वर्तमान कृदन्त रूप और 'हइ' है तथा तीसरेमें क्रियाका क्रियार्थक संज्ञा रूप और 'हइ' हैं—

१. मालनी षूब 'हइ' (४), जोवणा षुब 'हइ' (४), अबे जमा की राति कदि 'हइ' (२०), एह करंदा मुज्झ 'हइ' (३७), सुलताण दइणा षूब 'हइ' (४९), नाडी दुइ जाइगहइ 'हइ' (५३), तेरा ई 'हइ' (१११)।

२. सुलताण फुरमाण देता ई 'हइ' (४), मुहर मुहर जंभीरियां मांगती 'हइ' (५),—पूछता सदि 'हइ' (२०), मुझइ जाणता 'हइ' (४९), साहिजादा

हसता 'हइ' (१०८), पग देषि ऊलसता 'हइ' (१०८)।

३. मुझे धावनइ 'हइ' (२६), दरेस दोस्तान भत्तु लइ आवनइ 'हइ' (२६), फेरणा 'हइ' (४८), फकीर मारणा 'हइ' जीयावणा 'हइ' (४८), माल वारणा 'हइ' (४८), साहिजादे के सिर ऊपर वारणा 'हइ' (४८)।

कही-कहीपर धातुमें –अ प्रत्यय लगाकर भी सामान्य वर्तमानका काम लिया गया है :

–अ : मुख मुंदिया न 'जीव' (९०)।

अछए (अछ् + अए) : 'हइ' के स्थानपर 'अछए (अछ + अए) का प्रयोग भी एक स्थानपर मिलता है : मा साहिबा का न्याउ 'अछए' (१०८)।

अत्थि–नत्थि : संस्कृतके 'अस्ति-नास्ति' के प्राकृत रूप 'अत्थि-नत्थि' का प्रयोग भी एक स्थानपर हुआ है : नाडी 'अत्थि' तदोष कु 'नत्थि' तदोष न लेपु (५२)।

–इ : एक० 'इ' रूपसे बहु० का भी काम लिया गया है :

अंगन चंद निलाटियां भूतर 'नच्चइ' नयण (१२)।

हइ (ह् + अइ) · इसी प्रकार एक० 'हइ' से भी बहु० का काम लिया गया है :

दरवेस पंचसइ आसाउरी करते 'हइ' (३०), दरवेस सइ पंच मांग के नुते दीदे घूरते 'हइ' (८०), दरवेस सइपंच षुदाइ की बंदिगी करते 'हइ' (२०), दानिसवंद कइ घरह तइ सहन केहुकी वाटइ 'चाहते हइ' (२०)।

–अ : इसी प्रकार –अ का प्रयोग भी बहु० के लिए किया गया है :

> अंगन चंद निलाटियां भू तर नच्चइ नयण।
> जाणे 'आण' बधाइयां आगम हंदा भयण ॥ (१२)

यह अवश्य सम्भव है कि बहु० –अइ तथा हइ मे अनुस्वारका बिन्दु रहा हो, जो प्रतिलिपि-क्रियामें छूट गया हो।

एक० -उ। अउं : रचनामें उत्तम पुरुष एक० तथा बहु० के रूप भी मिलते है। एक० का रूप धातुके साथ –उं। अउं जोड़कर बना है :

न 'जाणु' निवासा न 'जाणु' फजरि (४५,५०,५६), डीवी डांग षल्लरी न 'जाणु', कहा थी लीन्ही (४७), जीउ का जीउ 'जाणुं' (५६), न 'जाणउं' उंती घटी कित एक अमरे (१०६)।

एक० हूं : किन्तु कही-कहीपर वह वर्त्तमान कृदन्तके साथ 'हूँ' जोड़कर बना है : हां मां जाणता 'हूँ' (४९)।

बहु० –अइं : उत्तम पु० बहु० रूप धातुमें –अइं जोड़कर बना है : जह-मतियां क्या 'जाणइं' (७३), तउ हम आएइं (७३)।

दक्खिनीमें 'हइ' के स्थानपर 'है' मिलता है।[1] किन्तु इस सम्भावनापर विचार करनेकी आवश्यकता है कि पुरानी दक्खिनीमें भी 'हइ' तो नहीं था जो फ़ारसीकी लिखावटके कारण अब 'है' पढ़ा जा रहा है—क्योंकि फ़ारसी लिपिमें दोनों एक प्रकारसे लिखे जाते है।

'अछ' धातुका प्रयोग दक्खिनीमें और अधिक मात्रामें 'ह्' धातुकी भाँति हुआ है। इसके सम्बन्धमे डॉ० श्रीराम शर्माका कहना है, 'दक्खिनीमें इस धातुका प्रयोग गुजराती अथवा पूर्वी बोलियोंके प्रभावसे आया।'[2] प्रस्तुत रचनाने इस मतको गलत प्रमाणित कर दिया है। दक्खिनीमें वह खड़ी बोली-से ही गया है और किसी भाषासे नही, यह स्पष्ट है।

वर्त्तमान कृदन्तके साथ 'हइ' और 'हइं' के स्थानपर 'है' और 'हैं' लगा-कर सामान्य वर्त्त० का रूप बनानेकी प्रवृत्ति दक्खिनीमें भी पायी जाती है।[3] उसी प्रकार उत्तम पु० एक० बहु० के उपर्युक्त रूप भी दक्खिनीमें मिलते हैं।[4]

क्रिया : अपूर्ण वर्त्तमान

अपूर्ण वर्त्तमानका सबसे अधिक प्रयुक्त प्रत्यय एक० में –अंदा है, बहु० में इसका रूप –अंदे हो जाता है :

एक० पु० : अंषी अंषिनु वट्टडी जाणि 'गिलंदा' ताहि (३१), साहिजादा साहिबियां साहि 'करंदा' ललि (३४) साहि 'सुणंदा' सार (६१), कउण 'करंदा' काणि (६२), हंस 'करंदा' केलि : (६३), सेष 'सुणंदा' सार (८०), साहि 'दिहंदा' दयण (८५), इह अउर 'उगंदा' गयण (८५), साहि 'गहंदा' पाणि, (८६), दुक्ख 'छिणंदा' सिंचणा सुक्ख 'फलंदा' जाणि (८६), तो न 'बुझंदा' धूप (८८), बहु 'देषंदा' कग्ग (९३) कउण 'हुअंदा' हाल (१०५)।

बहु० पु० : लज्जा लोयन नच्चणा लोय 'हसंदे' कल्हि (३४), झलहल 'झालंदे' नयण (८६), जे 'लोअंदे' जग्ग (९३), जे 'लोयंदे' अप्प (९५)।

---

१. वही, अनु० ३८१।
२. वही, अनु० ३७३।
३. वही, अनु० ३८१।
४. वही, अनु० ३८१।

किन्तु कही-कहींपर बहु० पु० के लिए भी एक० पुं० रूप –अंदा ही प्रयुक्त हुआ है : ज्युही पाउसु रंगिया ताइ 'मिलंदा' सब्ब (९८), जो जाणि 'परंदा' गत्त (९९)।

स्त्री० एक० का प्रत्यय –अंदी है . कालिह् 'कहंदी' केलि (८२)।

अंति : संस्कृतके –अतिका भी प्रयोग अपूर्ण वर्त्तमानके लिए हुआ है, किन्तु उसमें लिग और वचनका ध्यान नही रखा गया है :

केसा के कसि बंधिया के छुट्टिया 'रुलंति' (११), जाणे सर्पणि अप्पणा बर चीटुआ 'भषति' (११), वइणी विधि विलंबिया मोती हैक 'रुलति' (१३), जाणे सीप सुमुष्बिया कंठै कीर 'चुगंति' (१३)

इन दोनो प्रत्ययोंका प्रयोग पद्योमे ही हुआ है, यह अवश्य ध्यानमें रखने योग्य है।

क्रिया : पूर्ण वर्त्तमान

पूर्ण वर्त्तमानके रूप भूतकृदन्त रूपोके साथ 'हुइ' लगाकर बनाये गये है :

स्त्री० एक० : साहिव्यां सहिन क्या 'भरी हुइ' (२६), रंग पर रंग उढनी साहिजादइ 'दीन्ही हुइ' (१०२)।

पु० बहु० : सुलताण केलि की खडकी 'खडे हुइ' (३८)।

दक्खिनीमें भी पूर्ण वर्त्तमान इसी प्रकार बनता रहा है,[1] केवल उसमे बहुवचनका रूप 'हैं' है और एकवचनका रूप 'है' है। किन्तु यह सम्भावना अवश्य विचारणीय है कि पुरानी दक्खिनीमें भी 'हुइ' न रहा हो, जो फारसी-अरबी लिपिके कारण 'है' पढ़ा गया हो, क्योंकि फ़ारसी लिपिमे दोनों एक प्रकारसे लिखे जाते है।

सम्भाव्य वर्त्तमान

सम्भाव्य वर्त्तमानकी रचना संज्ञा और अन्य पुरुषके लिए धातुमें –इ। –अइ लगाकर की गयी है :

–इ। अइ : जउ र 'विलग्गइ' अंब (९) 'जीइ' तउ जिलाओ (५८), जउ कछू बीबीया 'बजावइ'—(५९), साहिब साहिव्या बिरह जइ जीवंदा 'जाइ' (६५), तउ मूए हमारा क्या 'चलइ' (६६), सो दिल दिल अज्जइ 'मिलइ'—(७०), नदरि न 'लम्भइ' नदरि कुं नदरि पुकारत 'जाइ' (७२),

---

१. वही, अनु० ३८४।

षूब-षूब 'होइ' त्युं करावउ (७५), तुमु तरकस अर ईयार 'वाएइ' दुनिया दाणसवंद बड़े 'बपाणइ' (७५),।

–ए : एक स्थानपर –ए लगाकर भी यह रूप बनाया गया है : साहिबा आसा आणि 'आए' पग पाण (१०१)।

उत्तम पु० सर्वनामोंके लिए एक० के लिए -उं। अउं तथा बहु० के लिए –इ। अइ लगाकर सम्भाव्य वर्तमानके रूप बने हैं :

–उं। अउं · साहिजादा के ही 'कहू'' (कहुं ?)' साहिब सूरति सुम्भ (१०), हथ 'देषु' (५७) तउ 'कछु' कहु (५९), सदकइ एक फुरमाण 'लहुं' (५९), तमासा एक अबही 'दिखावउं' (५९), टुकरे 'पाउं' तउ कछू नाम ना 'चलाउ' (१०९)।

–इ। अइ . तउ कछू हम 'गावइ' (५९), साहिजादा 'जिलावइ' (५९), तमासा एक अब ही 'दिषावइ' (५९); जहमतीयां क्या 'जाणइ' (७३), जीमी आकास तल होइ तउ हम 'आएइ' (७३)।

हो सकता है कि कु० मे प्रत्यय –अइं रहा हो, जिसका अनुनासिकका बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें छूट गया हो।

मध्यम पु० बहु० में सम्भाव्य वर्त्तमानका रूप –अउ लगाकर बनाया गया है : जउ सब कोउ कुसादे 'होउ' (५९),

क्रिया : सामान्य भविष्यत् काल

भविष्यत्मे केवल सामान्य भविष्यत्के रूप मिलते है।

संज्ञा तथा अन्य पुरुष एक० में सामान्य भविष्यत् अन्य पु० के रूप धातुमें –अइगा। अहिगा लगाकर बने है :

–अइगा। अहिगा : साहिजादा 'जीवइगा' (५५), क्या 'करहिगा मरा (५७), षूब कूं षूब होइगा' (४), फेरतइ-फेरतइ पुदाइ रहम 'करइगा' (४८), षूब थी षूब 'होइगा' (४८), मेरे कुं सहम 'होइगा' (५५), जोरां ही 'जाइगा' (५५),

बहु० मे धातुमें –अइंगे लगा है : तउ 'कहइंगे' ढढिनी तइ हुई बुराई (३०)।

कहीं–कहीपर एक० में –इहइ प्रत्यय भी जुड़ा है, किन्तु केवल पद्यमे : सोइ लज्जा 'रषिहइ' जाडे साहि निसीब (६६)।

प्रथम पु० एक०मे प्रत्यय (पु०-अउंगा), स्त्री० अउंगी है :

सुहंगीया न 'बेचुगी' (५), तउ सुलताण सु 'कहुंगी' (५), एकस एकस कुं 'गहुंगी' (५)।

द्वितीय पु० बहु०मे प्रत्यय-अहुगे है. जउ न 'देहुगे' तउ सुलताण सु कहुंगी(५)।

दक्खिनीमें भी प्रत्यय ये ही है; -इहइ अवश्य उसमें नही मिलता है।[1]

क्रिया : सामान्य भूतकाल

पुल्लिंग एकवचनके क्रियारूप धातुमे सामान्यत आ। या। इया जोडकर बनाये गये है।

-आ। या। इया : बर 'बोलिया' वडाम (१), एकसि द्यउस देवर ढढणी मालणीका भेष 'कर्‌या (करचा)' (४), टुक एक 'गया' (५), मालनी संच 'जाण्या', (२०), साहिजादा सइतान र 'जाण्या' (२०), सुलताण बाराम बारी 'आया' (२०), साहिजादा जमा मसीति 'आया' (२०), साष का सोरंभ 'आया' (२२), अगर जाती 'जनाया' (२२), दीनु 'लिया' (२३) जो दरवेस ज्यु का त्युं ही 'धाया' (२३), अबे पुदाइकी फिरस्तइ 'आया' (२३), अप्पाण पर डर 'गया' जे आण मर (२५), साहिजादा पछइ सह 'था' (३८), चमाऊ हाथ 'वाह्‌या' (३९), साहिजादा उस ही महल मइ 'आन्या' (४०), पलंग पर 'लेट्या' (४०), तबीबइ तबीब 'लाग्या' (४२), ओषदइ ओषद 'माग्या' (४२), बीबियां सहित सुलतांण 'जाग्या' (४२), महल मइं आवतइ इंद्रका गर्व भाग्या' (४२) बार दुइ च्यारि यो ही पुकार्‌या (४६), दरवेस हु नजरि की 'दीया' (४६), पलिंग तइं उतरि करि सलाम ताई 'हूआ' (४९), यों करतइ दिन 'गर्‌या' (५०), तुलताण षान 'छंड्या' (५१), बीबी हुं रोवणा 'माड्या' (५१), दिल्ली माहि सोर 'पर्‌या' (५१), साहिजादे सु सइतांण 'लर्‌या' (५१), दिल मे दिल 'आया' (५३), तइ तत्ता षांन 'षाईया' (५४), देषतइ पांणी अंजरि पहर एकइ 'पुकार्‌या' (५६), कीया सु 'करा' (५७), साहिजादा 'बोल्या' (५८), तबीबह रोग 'जाण्या' (५८), रोगी इं रोग 'मान्या' (५८), फुरमाण 'हूआ' (५८) स्वर 'हूआ' (५९), सोर 'छूट्या' (५९), दूहा ज्युं कह्या त्यू साहिजादा उठया (५९), मइ सउणा सुणि 'दिष्षिया' (६३), सोई 'हूआ' तबीब (६६), जीवंदा कहि 'गाइया' (६८), अब 'कंपीया'

१. वही, अनु० ३७५ तथा 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५८।

'तबीब' (६८), बीबी बीहन 'पूछीया' (६८), मइं 'जाणिया' निसीब (६९), यों 'बोलिया' तबीब (६९), असि अस 'माणा' तर तरुणि जीमी जीवन मूरि (७१)। लाजहं सोचणा, 'हूआ' (७३), साहिजादा आसिक 'हूआ' (७३), फुरमाण 'हूआ' (७३), पावहं पाव सुलतांण दरबारि 'आया' (७४) सुलताण 'आया (७४), सुकराणा सुकराणा करता सामहा 'धाया' (७४), दावल 'बोल्या' (७५), ताति तूंबर राइ 'रंगा' (७६), 'ढाहिया' ढंगा (७६), साहिजादा आइ दावल दरहि 'वादा' (७६), सारसु 'किया' सुढार (८०), ढढिणि क्या 'गाया' (८४), हलकइ हालि 'अलापिया' (८४), सइ मुह सोम 'विलग्गिया' (८८), दीया देह स 'दज्झिया' (९६), माया ओढण 'भुल्लिया' (९७), ज्यूं ही पाउसु 'रंगिया' वाइ मिलंदा सब्ब (९८), दाणसवंद साहिजादी सुं साहिजादइ 'कह्या' (१०१), करणीके झारतर साहिबा 'भर्‍या' (१०२) जाणें अपछरां अमी 'हर्‍या' (१०२), बार दुइ 'दीन्हा' (१०२) साहिजादइ 'लीन्हा' (१०२), तीजे के आवत इ हवाल 'कीन्हा' (१०२), 'भग्गा' लाल सुभज्जणा (१०५), टुक एक जातइ साहिजादइ 'कह्या' (१०६), कुमकुमाके जल महि तइ 'निकस्या' (१०६), अबीर महि षोजइं षोज 'देष्या' (१०६) प्याला भूजा 'देष्या' (१०६), देषत ही 'हस्या' (१०६), षूब स पत्थर 'भग्गीया' (१०७), लाजनु संकुचि 'आया' (१०८), जानहुं चांद बादलइ 'छिपाया' (१०८), सुलतांण 'सुण्या' (१०९), सुलतांण 'कह्या' (११०), जिण ही जीव 'अरंगिया' (११२), हलकइ जलहल 'ओल्हिया' (११२), टुकरे गउष परि 'चीना' (११३), 'हूआ' हुअंदे काइ (११४)।

केवल कहीं-कहीपर –अउ। ओका भी प्रयोग हुआ है : हत्या कांम स पीउ भउ पिउ हत्था 'भउ' काम (१५), एक पुंगरा मेरइ 'हो' पुराणा (४६), लज्जा 'गउ' गुण आ गुणी (६१), लज्जा 'गउ' जुअ गोवणां (६१), ।

स्त्रीलिंग एकवचनमें –ई प्रत्यय लगा है :

–ई. बीबियाँ लाजलो 'भइ' बंधाना (२), बीबी बिवाना 'बइट्ठी' (३), मालनी फिरि 'आई' (५), साहिब 'सारी' वसडी (६), यां तू इहि काम 'आई' (९), हूँ इहि काम 'आई' (९), 'सोनी' गल्हरियांह (१७), बीबियाँ 'आई' (२०), बीबियां हरम द्वार 'थाई' (२०), जमा-राति 'श्राई' (२०), गुलाबीयां 'जागी' (२२), जमा मसीति भिस्त क्या भोरइ 'लागी' (२२), साहिजादइ किसउ की डीवी किसऊ की डांगी किसहू

की षालरी 'चोरी' (२३), दुनिया 'विछोड़ी' (२३), ढढिनी गाइबां ही गुमान 'बोली' (२७), जाणी अगि अंणगियां 'पडी' पुराणइ द्रंगि (२८), साहि साहिबा 'उंचाई' (३०), तउ कहइंगे ढढिनी तइ 'हुई' बुराई (३०), पुहर एक या राति 'बीती' (३८), .डीवी डाग षल्लरी 'अतीती (३८), 'जगी' किरण सुविहाणइ (४०), फजरि 'हूई' (४८), इतनई करत बीबी बिवाना 'आई' (४८), अम्मां आणि आगइ षरी 'हुई' (४९), यां करतइ राति 'पाई' (५०), दूसरी वइरणि 'आई' (५०), ढढिणिआ णीकी 'करी' (५२), ओहि ओहि इह तउ उलटी 'कही' (५२), ढढिणी कहि 'रहि' (५३), साहिबा 'बोली' (५३), ढढिणी 'बोली' (५५), हम तबही 'पाई' (५५), जब तू सहण क्यां 'सिराई' (५५), हमारा क्या तू 'पराई' (५५), परतीति 'पाई' (५६), तबीबका भेष करि सुलताण कइ दरबार 'आई' तबीबानी तबीबांनी 'पुकारी' (५६), अवाज्या 'वाजी' (५६), ढढिणी 'बोली' (५७, ५९, ६६), आज 'अणंदी' वेलि (६३), इती बात करतइ बीबिया 'ऊठी' (७३), दीन दुनियां एक ठउड होत 'जांणी' (७३), बीबियां 'बोली' (७३) सुलताण 'मानी' (७३), सुलताण पासि 'गई' छूटी (७३), अमहुं षइर 'करी' (७५), नर ततइ नफेरी 'मंडी' (७६), भेरी भूगल भीम 'नंढी' (७६), सहणाइं 'तढी' (७६), तरह स 'लग्गी' वेलि (८२), 'गई' गुण रष्षणहार (८३), उह रितु 'गई' (८९), अउर रितु फजर 'भई' (८९), मुरगहु बांग 'दई' (८९), गाइणहु ललित 'कई' (८९), तारह का तेज 'छई' (८९), सुविहाण अंबर 'दई' (८९), वसंत रितु पाछी 'भई' (८९), धूप काला कहल 'लई' (८९), पढमा ची सिंगारी 'बोली' (९२), जोगिणी 'बोली' (९३), जोगिणी 'बोली' (९५, ९७, ९९), भोगिणी 'बोली' (९४, ९६, ९८, १००), साहिजादे कु ठंड 'लागी' (१०१) फुरमान ही 'धाई' (१०२), जिणइ दुणिया 'जाणी' (१०२), 'भग्गी' भम्म सु बाल (१०५), 'गई' सासू सरणागतां (१०५), साहिबा अजहु न 'धाई' (१०६), आपइ 'छिपी' किनहुं 'छिपाई' (१०६), खइर करंतइ कोड 'कहि' मन अप्पणइ विचारि (१०७), बिभगन 'भग्गी' नारि (१०७), मा आवती 'चीनी' (१०८), चादरि सिर परि 'लीनी' (१०८), मा अरदास 'करी' (१०८), कइंमति 'कराई' (११०), कुतबदी 'गमाई' (११०) धरि धरि 'लग्गी' लाइ (११२)।

कुछ स्थलोंपर –आना, ईन, ईना, ईन्हाके प्रयोगसे पुंल्लिग और –ईनीके प्रयोगसे भी स्त्रीलिंग रूप बने है—

—आना । ईन । ईना । ईन्हा : खून हर्माहं 'दीन' (१०८), जु फुरमाण 'दीना' (७५), तब सुलताण 'रिसाना' (४६), सुलताण फुरमाण 'दीना' (११३), बे पुड 'कीन्हा' भंजि (२९)।

—ईनी : साहिजादा चादरि सिर ऊपरि 'लीनी' (२२), दोस्तान दोस्तान करि हस्त क्या 'दीनी' (२२), सुलताण सुरति 'कीनी' (३८), हत्थइ हत्थ 'लीनी' (५६)।

पुल्लिग बहुवचन रूप धातुमें —ए।अए लगाकर बने हैं :

—ए । अए : पाँच सोवन्न के टका देवरइ 'धरे' (४), निवाज करणइ सुलताण 'लग्गे' (२४), दीवे 'लग्गे' (२४), सादा नइं 'वग्गे' (२४), साहिजादे साहिब्बियाँ ढढ्ढिनि ढुढे 'मंझि' (२९), मालनीके उंसान 'भागे' (३०), साहिजादेके षवे फुरकणइ 'लागे' (३०), दीदे, 'दुराए' (४०), दानसबंद पानी अंजरणइ 'लागे' (४४), मंत्रहु परजणइ 'लागे' (४४), तबीब तमाम सब सुलतांण 'कोके' (४४), दिल्ली सहर मइ ए ज 'घेरे' (४७), अबे फिरस्तइ 'फेरे' (४७), यों करतइ रोज दुइ च्यारि 'गले' (५१), तबीबां हाथ 'धरे' (५१) तबीब होते ते सुलताण 'कोके' (५१), आणि दरबार 'रोके' (५१), दावल कु तीन रोज 'हुए' खाणा खायां (५२), दीदहू सुं दीदे 'जोरे' (५५), लष 'दउरे' (५६), साहिजादे दीदे देषणइ 'लागे' (५८), तबीब के रोर 'भागे' (५८), सुणतइ ही लल्ले 'कीए' (६७), कंपण 'लागे' अंग वल एण सुणंदा हल्ल (६७), दुसमणा के दिल 'जरे' (७४), वरततइं नीसाण 'दग्गे' (७६), सज्जणा 'जग्गे' (७६), 'वाए' वज्जण वज्जणा (८१), 'पय (पये ?)' ढढणियाके बोल (८१), साहिजादा कुमकुमई बरषे 'भराए' (९०), वारि उंछह 'लगाए' (९०), अबीरहू घर 'बणाए' (९०), कपूर कस्तूरी भूषण 'भराए' (९०), फूलहु वितन 'तणाए' (९०), गायणहु 'गाए' (९०), दोउ दूहे 'कहे' (९१), माँ के सिर ऊपर फेरि फेरि 'भाने' (१०७), सुलतान सुणतइं जुहरी 'बुलाए' (११०)।

कही-कहीपर —ए का प्रयोग आदरार्थक बहु० के लिए भी हुआ है : साहिजादा दावल कइ दरबारि जाइ 'वग्गे' (२४)।

कहीं-कही धातुमे या । इयां लगाकर बहु० रूप बने है :

दीदे दिग्घ 'उचाइया' (२८), जे मुत्ताहल 'दिट्ठिया' वइ वर 'गंजरियाहू'[1] (६४), 'निहसियां' नीसाण नादा (७६)।

---

१. इसमें —हु स्वार्थिक लगता है।

–आनइ । ईनइ : 'न' युक्त रूपमें –'ए । ऐ' के स्थानपर कदाचित् प्राचीनतर –'अइ' प्रत्ययका प्रयोग हुआ है : सुलतांण देस देस मुलक मुलक कुं फुरमाण 'दीनइ' (३८), सुलतांण दुक एक 'मुसक्यानइ' (४०), मानु चाद तारा सुं 'रिसानइ' (१०९)।

इन उदाहरणोंमे एक-दो आदरार्थक बहु० के भी हो सकते है।

स्त्रीलिंग बहु० का प्रत्यय –या । इयां । ईया है।

यां । इयां । ईयां : पक्कीया जंभीऱ्यां नारिंग्या 'भऱ्या' (४) बेलियां बंकिया 'कऱ्यां' (४), साहिजादे के अग्गइ 'धऱ्या' (४) दोइ साहिजादे अप्पणइ हत्थइ 'कीया' (४) दो दो च्यारि च्यारि बंटे 'दीया' (४), दीदे दिग्घ 'उचाइया' (२८), हंसतइ ही वात्यां 'किया' (३९), 'बुझाईया 'बुझाईयां' (५८), साहिजादा किणि 'बुझाइया' (५८)' जिणि 'लगाईया' तिणि 'बुझाइयां' (५८), अब उससुं क्या करण 'आईया' (५८), साहि घरां साहिबियां जिणि 'दिण्णिया' सु जाणि (६१), सास सरंदा 'वुट्ठियां' (१०३), की पद पंतरि 'चुक्किया' (१०४), बज्जे बज्जत 'वज्जियां' (११४)।

इन उदाहरणोंमे-से कुछ आदरार्थक बहु० के भी हो सकते है।

कहीं-कहींपर –आं । यां । इयां युक्तरूप एक० में प्रयुक्त मिलता है :

ढढ्ढिनी मालनीका मेष 'कऱ्यां' (४), मालिनियां 'दिट्ठइया' (१७), साहिब संची 'दिट्ठियां' (१७), मालणियां कहि 'नट्ठियां' (१९), तू कहाँ 'थां' (३८), वहा पुज्जइ दिल 'लब्भियां' (६२), मानहु कमल 'निकस्यां' (१०६)।

कहीं-कहींपर बहु० के स्थानपर एक० रूप भी मिलता है.

पु० : मेरे दीदे दूषन 'लग्ग' (८), गज्जइ गयण न 'नच्चिया' पावस हुंदे मोर (३३), हमारे दीदे दूषणइ 'आया' (३९) दरवेस वलइं वलइं 'धाया' (३९) दउ 'लग्गिया' सनत्थ (५०), लज्जा 'गउ' जुअ जोवणां (६६) 'मूआ' बहंदा साहि (११४)।

स्त्री० : कइ 'सोनी' गल्हरियांह (१७), ढढिणि 'ढोरी' अंषियां (५४), जिण 'हीजीय' जहमत्तियां (६६), 'बाजिया' ढप ढोल ढंगा (७६), दुइ नटिणी आइ षरी 'हुई' (९१)

–न युक्त रूपोंमें भी यह प्रवृत्ति मिलती है : जिहि मुहर जंभीरियां 'लिन्न'

(७), सुलताण निवाज्या 'कीनी' (३८), दानसबंदइ अपनइ अपनइ घरह ही वाट्या 'लीन्ही' (३८), किताबइं रही त्या किताबा 'लीनी' (३८), डीवी डाग मल्लरी न जाणु कहा थी 'लीन्ही' (४७), साहिजादइ जहमन्यां 'कीन्ही' (४१), दुनी साहिजादइ इया मत्या 'लीनी' (४१)।

किन्तु यह असम्भव नही है कि अनुनासिकका बिन्दु जो बहु० मे लगा रहा हो, कु० मे प्रतिलिपि क्रियामे छूट गया हो।

–आ, या, इया लगाकर सामान्य भूत दक्खिनीमे भी बनना रहा है[1]

पूर्ण भूत

पूर्णभूत कृदन्तके साथ 'था' का कोई रूप लगाकर बना है :

बंदा बंदियहुकी बंदिगी देपणइ हु 'गया था' (४९), पुंगरा मेरइ जमा मसीति देपणइ 'गया था' (४६)।

भूत कृदन्तमें 'था' लगाकर पूर्णभूत दक्खिनीमें भी बनता रहा है।[2]

अपूर्ण भूत

कोई उदाहरण नहीं है।

संयुक्त क्रिया

कुछ संयुक्त क्रियाएँ भी मिलती है : मेरे दीदे 'दूषण लग्ग' (८), निवाज 'करणइ सुलताण लग्गे' (२४), 'गया जे आण मर' (२५), साहिजादेके पवे 'फुरकणइ लागे' (३०), तबीबइ 'ओतरइ लागी' (५९), मंडप 'छावणइ लागे' (७१), गायणे 'गावणइ लागे' (७६), निवासा 'हुउणइ लागी' (१०१), ओह बेला लाल धरती 'हुई रही' (१०९) फकीर 'लूटणइ लागे' (११३), सादा नइ 'वाजणइ लागे' (११३)।

इसी प्रकार संयुक्त क्रियाएँ दक्खिनीमें भी बनती रही है।[3]

वर्तमान कृदन्त

वर्तमान कृदन्त रूप धातुमें -ता।ती।तइ तथा -ते लगाकर बने है :

---

१. दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास, अनु० ३८३

२. वही, अनु० ३१६

३. वही, अनु० ३८६

—तइ । तइं : जिसकी सूरति 'लोवतइं' मेरे दीदे दूषण लग्ग (८), 'पूछतई पूछतइ' जमाराति आई (२९), इतनी बात 'करतइ' – (३८), 'हस्तइ' ही वात्यां कीया (३९), हमारे 'हस्तइं हस्तइं' दीदे दूषणइ आया (३९), साहिजादे 'जागतइं' 'वेल्हतइ' जगी किरण सुविहाणाइ (४०), इतनी वात्यां 'करतइ' साहिजादइ जहमत्यां कीन्ही (४१), महल मइ 'आवतइ' इन्द्र का गर्ब भाग्या (४२), दरबार 'देखतइ' दरिया का गर्व वादे (४३), 'फेरतइ फेरतइ' पुदाइ रहम करेगा (४८), यों 'करतइं' दिन गर्‌या राति पाई (५०), यों 'करतइ' रोज दुइ च्यारि गले (५१), इतनी 'करतइ' कपरे फेरे (५५), 'देषतइं' पाणी अंजरि—(५६), 'सुणतइ' ही लल्ले कीए (६७), इती बात 'करतइं' बीबियां ऊठी (७३), इतनी बात 'करतइं' (७६,८९,९०,९१,१०१) तीजइ कइ 'आवतइं' हवा कीन्हा (१०२), टुक एक 'जातइ' साहिजादा कह्या (१०६) 'सुणतइं' जुहरी बुलाए (११०) ।

—ते : फिरस्ता फिरस्ता 'करते' दरवेस वलइ वलइ धाया (३९) ।

किन्तु हो सकता है कि प्रतिलिपिमें भूलसे 'करतइ'का 'करते' हो गया हो ।

—त : कहीं-कहींपर केवल –त जोड़कर वर्तमान कृदन्त बनाया गया है : इतनी 'करत' बीबी बिवानां आई (४८), नजरि 'पुकारत' जाइ(७२) दीन दुनिया एक ठउड 'होत' जाणी (७३), 'देषत' ही हस्या (१०६), वज्जे 'वज्जतै' 'वज्जियां (११४) ।

—तइ । तइं और-ते में से प्राचीनतर-तइ । तइं ही ज्ञात होता है ।

ता । तां : धातुमें –ता । तां लगाकर वर्तमान कृदन्तके पुल्लिंग रूप बनाये गये हैं : 'पूछता' सदि हइ (२०), सुलतांण फुरमाण 'देता' ई हइ (४०), हरम द्वार 'जाता' सुलतांण टुक एक मुसक्यानइ (३९), मुझइ 'जाणता' हइ (४९), साहिजादा 'हसता' हइ पग देषि 'ऊलसता' हइ (१०८), सुकराणा सुकराणा 'करता' सामहा धाया (७४) ।

—ती : इसी प्रकार –ती लगाकर स्त्रीलिंग रूप बनाये गये है । मुहर मुहर जंभीरियां 'मांगती' हइ (५), मां 'आवती' चीन्ही (१०८) ।

उपर्युक्तके अतिरिक्त –अन्दके विभिन्न रूप लगाकर भी वर्तमान कृदन्त बनाये गये हैं :

एकवचन : अंदा : एह 'करंदा' मुज्झ हइ उर 'करंदा तुज्झ' (३७), साहिब साहिब्यां बिरह जउ 'जीवंदा' जाइ (६५), कंपण लग्गे अंग वल एण

'सुणंदा' हल्ल (६७), 'जीवंदा' कहि गाइया (६८), सास 'सरंदा' वुट्टियां (१०३), खइर 'करंदा' कोडि कइ—(१०७) ।

—अंदइ : कुसल 'कहंदइ' बार (१०३) ।

—अंदे : योग 'करंदे' गोर (३३) हुआ 'हूअंदे' काइ (११४) ।

—अंदे —अंदइका ही किंचित् परवर्ती रूप लगता है ।

बहु० —इंदीइ अंदिए : लोयण ते 'लोइंदीइ, । लोअंदिए' (९३-१००) ।

—ता, —ती, —त युक्त वर्तमान कृदन्तके रूप दक्खिनीमें भी मिलते हैं।[1]

अंदा वाले रूप कु० मे पद्यों तक ही सीमित है और पूर्ववर्ती भाषारूपसे लिये हुए ज्ञात होते है ।

भूत कृदन्त

भूत कृदन्त रचनामे निम्न प्रकारसे बनाये गये है :

एक० पु० । स्त्री०—इया : वइणी बंधि 'बिलंबिया' मुत्ती हेक रुलंति (१३), तू रस कामंधा 'भूषिया' (३२), मुज 'मुंदिया'न जीव (६०), वेरु मंडप 'मंडिया' (७७) ।

—ये (य + अइ) -एक जोगिणीका स्वांग किये (९१) ।

एक० पु० —आ : साहिजादा 'षरा' हइ (२७), यह दिल 'जोरा' ही रहइगा 'जोरा' ही जाइगा (५२), वेगि आनहु नत 'मूआ' (७३), देषइ तउ पग 'लस्या' (१०६), प्याला 'भूजा' देष्या (१०६), प्याला 'भग्गा' हइ (१०८), एक पाइ 'षरा' कुतुब दी अरदास करइ (१११) ।

एक० स्त्री० —ई : साहिबा सहिन क्यां 'भरी' हइ (२६), देवर ढढ्ढिनी अगइ 'षरी' हइ (२६), तबीब की 'जाई' नहीं (५३), अमां आणि आगइ 'षरी' हुई (४९), सुलताण पासि गई 'छूटी' (७३), साहिबां अरगजइ 'भीनी' हइ (१०२), जाणुंकाठ की पूतरी कुंरि 'वणाई' (१०२), लंक लहक्की झीणिया की माणी रति भार (१०३), की 'भीनी' रसभार(१०४) ।

बहु० पु० । स्त्री० —इयां । यां । आं : 'षाइयां' क्या कहावइ (५), जिणि 'खाइया' ते दिषावहु (५), अग्गा अग्गम 'नट्ठियां' (६), केसा के कसि 'बंधिया' के छुट्टियां रुलंति (११), जाणे राई वल्लियां फूल्ली 'नीकलिया' (१६) बे मालनियां 'दिट्ठाइया' के सोनी गल्हरियांह (५७), दावर कुं

1. वही, अनु० ३८० ।

तीन दिन हुए खाना 'खाया' (५२) जाणे जलहर 'वुट्ठियां' सारसु कीया सुढार (८०), 'रीझडियां' झड मंडि करि—(९४), को घरियां घर 'लग्गियां' (९९), साहिजादे 'षथां' न होउ (१८), जे 'दिट्ठा' ही पिट्ठ (८५) ।

बहु० पु० —ए : हमहु सुलतांण पेरो साहि 'उपाए' बीबी विवाणां 'जाए' (१०८) ।

बहु० —इयां । यांके उदाहरणोंमें-से कुछ आदरार्थक बहु० के हो सकते हैं और कुछ स्वार्थिक बहु० के भी ।

कही-कहींपर एक० से ही बहु० का भी काम लिया गया है : ही 'उट्ठा' दिट्ठाइयां दीहा पंचइ च्यारि (१४) ।

कही-कहींपर एक० में भी बहु० रूप अनुनासिकके आगमके कारण हो गया है : बे मालनी 'आइयां' करे (४), दीनु 'लीयां' (२३) ।

पूर्वकालिक कृदन्त

कु० में पूर्वकालिक कृदन्त दो प्रकारसे बनाये गये हैं : क्रिया के धातु रूप-में —इ । ई लगाकर तथा उसमें —अ लगाकर :

—इ । ई : केसा के 'कसि' बंधियां के छुट्टिया रुलंति (११), लंक घन 'कइ' मुट्ठियां विध रसुरंगी बांम (१५), 'लइ' चलि संगरियांह (१७), मालणीयां 'कहि' नट्ठियां (१९), दोस्तांन दोस्तान 'कहि' हस्त क्या दीनी (२२), इतइ बीच साहिजादा दावल कइ दरवारि 'जाइ' वग्गे (२४), बे पुड कीन्हा 'भंजि' (२९), ढट्ठिनिया हिय हत्थ 'लइ' (३६), आरतियां 'करि' हेरि (३६), फिरस्ता फिरस्ता करते दरवेस 'वलइ वलइ' धाया (३९), इस ही बीच साहिजादा बीबीयनु पकरि 'कइ' उस ही महल मइ आन्या (४०), दरवेसहु नजरि 'की' दीयां (४६), हाला 'कइ' मारणां न 'थी '(४७), अमां 'आणि' आगइ षरी हुई (४९), पलिंग तइ 'उतरि करि' सलाम कुं ताई हुआ (४९), 'आणि' दरबार रोके (५१), तबीब का भेष 'करि' सुलतांण कइ दरबार आई (५६), ते तइं ही हसि हंसरा 'वइ' वर गंज-रीयां (६४), जीवंदा 'कहि' गाइया (६८), सो दिल दिल अज्जइ मिलइ तउ 'मिलि' मंगल गाउ (७०), दुइं दिट्ठिया 'रसाइ' साहिजादा 'आइ' दावल दरहि वादा (७६), हलकइ 'हालि' अलापिया (८४), हलकइ हुरक 'बजाइ' (८४), ते सु कहंदी 'गाइ' (८४), दुइ नटिणी 'आइ' षरी हुई (९१), रीझडियां झडि 'मंडिकइ' सरबसु अप्पण हार (९४), जे जुग 'जोइ' अरस (९७), षइर करंतइ कोडि कहि मन अप्पणइ

'विचारि' (१०७) पग 'देषि' देषि उलसता है (१०८), लाजनु 'संकुचि' आया (१०८), मां के सिर ऊपर 'फेरि फेरि' मांने (१०९), ओह बेला लाल धरती 'हुइ' रही (१०९), रहे सु रेष उसाहि (११२), 'लइ' टुकरे गउष पर चीना (११३)।

अ : साहिजादा साहिबां हियां दउ लग्गिया 'सनत्थ' (५७), कंपण पाछइ साहा सुषासण 'चडाया (चड + आया)' (७४), आसिर अष्पत 'भण' दीया (८०), भग्गी 'भम्म' सुबाल (१०५)।

दक्खिनीमे भी दोनो प्रत्यय मिलते हैं।[1]

अव्यय : अवधारण-वाचक

इ । इं । ई । ही । हीं : सुलताण फुरमाण देती 'ई' हइ : (४), ही उट्ठा दिट्ठाइया दीहा पंच 'इ' च्यारि (१४), केहु की बाट 'इ' चाहते हइ (२१), जो दरेस ज्युं था त्यु 'ही' धाया (२३), उस 'ही' महल मइ आन्या (४०), वुन्न 'इ' साहिजादा षरा हइ (२७), कपूर पान 'इ' न भावइ (४०), हुस्तइं 'ही' वात्या कीया (३९), फजरि हुई तबीब 'इ' तबीब लाग्या (४२), ओषद 'ई' ओषद माग्या (४२), जो 'इ' दानसवंद आवइ (४५, ५०), तिस 'ही' सुं पुकारइ (४४, ५०), इतन 'इ' करत बीबी बिवानां आई (४८), ओ 'ही (ओह + ई ?)' हालु (५०), हम तब 'ही' पाई (५५), तमासा एक अब 'ही' दिषावइ (५९) हलक 'इ' हालि अलापिया (८४), रत्ता सो'इ' अरत्त (९९), देषत 'ही' हस्या (१०६), अबीर माँहि खोज 'इं' खोज देष्या (१०७), सुलतांण कह्या तेरा 'ई' हइ (१११)।

चा । ची : पुहर एक 'चा' राति बीती (३८), पढमा 'ची' सिंगारी बोली (९२)।

हु । हुं । हू । उ : किस 'हू' की डीवी (२३), किस 'हू' की डांगी (२३), किस 'हू' की षालरी चोरी (२३), दरेस 'हु' नजरि की दीया (४६), मंत्र 'हुं' परजनइ लागे (४४), बीबी 'हुं' रोवणा मांड्या (५१), दावल दानस पूगरी दीदे दीठि 'हुं' भूरि (७१), दु'हुं' दिट्ठिया रसाइ (७२), मुरग 'हुं' बाग दई (८९), गाइण 'हुं' ललित कई (८९), दो'उ' दूहे कहे (९१)।

---

१. –इ के लिए दे० 'दक्खिनी हिन्दी', पृ० ५६, तथा –उ के लिए दे० 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३६२।

'ई' तथा 'च' दक्खिनीमें भी है। 'च' के सम्बन्धमे डॉ० श्रीराम शर्माका यह मत है कि वह दक्खिनीमें मराठीसे आया है,[1] इस रचनाके साक्ष्यके अनुसार मान्य नहीं है।

अव्यय : स्थिति-वाचक

सामहा : सुकराणा–सुकराणा करता 'सामहा' आया (७४)।

तर। तळ : भू 'तर' नच्चइ नयण (१२), जिमी अकास 'तल' होइ तऊ हम आणइ (७३), करणी के भार 'तर' साहिबा भर्‌या (१०२)।

पासि : सुलतांण 'पासि' गयी छूटी (७३)।

साथि : कइ साहिजादे कइ 'साथि' गोर मइ बाहणा (५१)।

आगइ। अगइ : दो सी अग्गा 'आगइ' बीबी बिवाना बइट्ठी (३), साहिजादा 'आगइ' सरकणइ न पावइ (३), साहिजादे कइ 'अग्गइ' घर्‌यां (४), 'आगइ' दावल दानसवंद की पूंगरी हुइ (४), देवर ढड्ढिनी 'अगइ' षरी हुइ (२६), अमां आणि 'आगइ' षरी हुई (४९)।

अग्गम : अग्गा 'अग्गम' नट्ठियां (६)।

पाछी। पछइ। पाछइ : मुहर मुहर जंभीरिया नकी 'पाछइ' लावहु (५), 'पाछइ' साहा सुषासण—आया (७६), 'पाछइ' क्या कीजइ तबीबिया नु (५९), साहिजादा 'पछइ' सहं था (३८), मां साहिबा का न्याउ अछइ उसकइ दावल 'पछइ' (१०९)।

तल, ऊपर, पास, पीछे, आगे तथा साथ दक्खिनीमें भी है।[2]

अव्यय : स्थान-वाचक

जहां : हत्थइ हत्थ लीनी 'जहां' साहि कुतुबदीन गाजी (५६)।

कहां : तू 'कहां' थां (३८), न जाणुं 'कहां' थी लीन्ही (४७), साहिजादा साहि 'कहां' (४९)।

जहां, कहां दक्खिनीमें भी है।[3]

---

१. 'दक्खिनी हिन्दीका उद्भव और विकास', अनु० ३६४।

२. वही, अनु० ३८०–३९६।

३. वही, अनु० ३६५।

अव्यय : काल-वाचक

अज्ज : सो दिल दिल 'अज्जइ' मिलइ तउ मिलि मंगल गाउ (७०)।

कल्हि । काल्हि : लोइ हसंदे 'कल्हि' (३४), 'काल्हि' कहंदी केलि (८२)।

एताल : 'एताल' ल्यावहु (५)।

कदि : अबे जमाराति 'कदि' कइ (२०)।

तब : 'तब' सुलताण रिसाया (४६), हम 'तब' हीं पाई (५५)।

जब : 'जब' की सहण क्यां सिराई (५५)।

अब : 'अब' उस सु क्या करण आइयां (५८), तमासा एक 'अब' ही दिषावउं (५९), 'अब' कंपिया तबीब (६८)।

ततइं : नर 'ततइं' नीसाण दग्गे, (७६) नर 'ततइं' नफेरी मंडी (७६)।

ज्युं-ताइ : 'ज्यु' ही पाउसु रगिया 'ताइ' मिलदा सब (९८)।

ज्युं-त्युं : दूहा 'ज्युं' कह्या, 'त्यु' साहिजादा उठ्या (५९)।

तो : 'तो' न बुझंदा धूप (६८)।

इतइ बीच, एतइ बीच : 'एतइ बीच' साहिजादा जमाम सीति आया (२०), 'इते (इतइ?) बीच' साहिजादां किसऊ की डीवी—चोरी (२३), 'इतई बीच' साहिजादा दावल कइ दरवारि जाइ वग्गे (२४), 'इतइ बीच' साहिजादा पछइ सहं था (३८), 'इतइ बीच' साहिजादा बीबीय नु पकरि कइ उसही महल मइ आन्या (४०)।

अज्ज, अताल, कद, तब, जब, अब, पछे तथा बीच दक्खिनीमें भी मिलते है।[1]

अव्यय : रीतिवाचक

जिम । ज्युं : अस-अस माणा तर तरुणि 'जीमी' जीवण भूरि (७१), पाधर सर 'जिम' कढीइं नेह समट्टा निट्ठ (९२), ज्युं गज बंगरियाहं (१०१)।

जिउं-किउं : 'जिउं किउं' दक्खा वल्लियां जउ र विलग्गइ अंब (९)।

ज्युं-त्युं : जो दरवेस 'ज्यु' था 'त्यु' ही धाया (२३), पूब पूब होइ 'त्युं' करावउ (७५)।

यों : बार दुइ च्यारि 'यों' ही पुकान्या (४६), 'यों' करतइं दिन गन्या राति पाई (५०), तिस ही सु 'यो' कहइ (५०), 'यों' करतइ रोज दुइ च्यारि गले (५१), 'यों' ही पुकान्या (५६), 'यो' बोलिया तबीब (६९)।

१. वही, ३६५-३६६

कुं करि : जाणे पूतरी 'कुं करि' वणाई (१०२)।

जूं, यू क्यू कर दक्खिनीमे भी हैं।[1] पुरानी दक्खिनीमे भी 'यो' रहा हो तो आश्चर्य न होगा, क्योकि फ़ारसीमे उसे 'यू' पढा जा सकता है, किन्तु 'जू' और 'क्यूं कर' के साथ 'यू' होना अधिक सम्भव है।

अव्यय : परिमाण-वाचक

टुक एक . 'टुक एक' धीरे (४), 'टुक एक' गया मालनी फिरि आई (५), 'टुक एक' जमा मसीति मिस्त क्या भोरइ लागी (२२), सुलतांन 'टुक एक' मुसक्यानइ (३९), 'टुक एक' जरतइं—(१०६)।

अव्यय : संयोजक

जउ-तउ : 'जउ' न देहुगे 'तउ' सुलतांण सुं कहुगी (५), तिउं किउं दक्खा वल्लिया 'जउ' र विलग्गइ अंब (९), 'तउ' कहइगे ढढ़िढनी तइ हुई बुराई (३०), 'जउ' जोरां 'तउं' तुज्झ ही (३७), 'जउ' गोरां 'तउ' तुज्झ (३७), जीवइ 'तउ' जिलाओ (५८), 'जउ' सब कोउ कुसादे होउ 'तउ' कछू कहुं (५९), 'जउ' कछू बीवियां बजावइ 'तउ' हम गावइ (५९), 'तउ' मूए हमारा क्या चलइ (६६), देषइ 'तउ' पग लस्या (१०६), टुकरे पाउं 'तउ' कछू नाम न चलाउं (१११)।

तरह : साहिब साहि घर दिया 'तरह' स लग्गी बेलि (८२)।

जं-सु : 'ज' घाउणा 'सु' घाउ (७०)।

जइ : साहिब साहिब्या बिरह 'जइ' जीवंदा जाइ (६५), नदरि 'ज' लम्भइ नदरि कुं नदरि पुकारत जाइ (७२)।

नत । नांतर · 'नांतर मुहर मुहर जंभीरियां नकी पाछइ त्यावहु (५), 'नत' साहिजा न साहिवां (७०), 'नत' भूआ (७३)।

सद कइ : 'सद कइ' एक फ़ुरमाण लहुं (५९)।

वल : कंपण लागे अंग 'वल' एण सुणंदा हल्ल (६७)।

परि : बीबी दूष लइनइ कहइ 'परि' दूषना न जाणइ (४०)।

कइ, के, की : जाणे 'की' करतारियां (१०), केसा 'के' कसि बंधियां 'के' छुट्टिया रुलंति (११), फकीर मारणा हइ 'कि' जिआवणा हइ (४८), 'कइ' साहिजादे के साथ गोर महि वाहणा (५१), महल हतइं ढोल 'कई' मंदिरि मांगी (५९)।

---

१. वही, ३६७-३६६।

जाणि । जाणुं । जाणे : पक्की 'जाणि' जंभीरियां उसका वरण सुहंदा झग (८), 'जाणे' आण बधाइयां (१२), 'जाणे' सर्पनि अप्पणा चर चीट्ठवा भषंति (११), 'जाणे' जीवण इक्करा बे पुड कीन्हा भंजि (२९), अषी अंषिनु वट्टडी 'जाणि' गिलंदी ताहि (३१), 'जाणु' साहिजादे की दूसरी वइरणि आई (५०) 'जाणे' सझ सुमुष्षियां सिधु सपत्ता सूर (७८) 'जाणे' जलहर वुट्ठिया (७९), सुष्ष फलंदा 'जाणि' (८६), 'जाणुं' काठकी पूतरी कुं करि वणाई (१०२), 'जाणें' नील कमलपर बे दीयेकी जाला (१०२), 'जाणे' अपछरां अमी हरया (१०२) ।

मानहुं । मानुं : 'मानहुं' कमल विकस्यां (१०६), 'मानुं' चांद तारा सु रिसानइ (१०९) ।

'तउ' दक्खिनीमे 'तो' के रूपमें मिलता है ।[1]

अव्यय : स्वीकार-निषेध-वाचक

हां : 'हां' मां जाणता हूं (४९), 'हां' साहिजादे जोवणा पुब हूइ (४), 'हां' साहिजादे हूं इहि काम आई (९) ।

न । ना : साहिजादा आगइ सरकणइ 'न' पावइ (२), षाहि 'न' कच्चा षांन (३२), बीबी दूष लइनइ कहइ परि दूषना 'न' जाणइ (४०), डीवी डांग षल्लरी 'न' जाणु कहां थी (४७), 'न' जाणुं निवासा 'न' जाणुं फजरि (४५, ५०, ५६), 'न' जाणीइ क्या सु रोग (९०), टुकरे पाउं तउ कछू नाम 'ना' चलाउं (१०९) ।

नहीं : तबीब 'नही' (५३), तबीब की जाई 'नही' (५३) ।

'हा', 'न' 'नहीं' दक्खिनीमें भी हैं ।[2]

अव्यय : विस्मयादि बोधक

इओही : 'इओही' साहिबां णजरि साहिबां णजरि (५६) ।

ओहि-ओहि : 'ओहि ओहि' इह तउ उलटी कही (५३) ।

'एयो' के रूपमे 'इओही' दक्खिनीमे भी है । इसे डॉ० श्रीराम शर्माने तेलुगु बताया है,[3] जो कि कु० के उपर्युक्त साक्ष्यके प्रकाशमें ठीक नही है ।

■

---

१. वही, अनु० ३९८ ।

२. वही, अनु० ३९९

३. वही, अनु० ४००

'कुतबशतक'की भाषा और 'राउल वेल'की टक्की

ग्यारहवीं शती ईसवीका एक शिलांकित भाषा-काव्य है जिसमे अन्य छह भाषाओंके साथ—जो भारतीय आर्य भाषा परिवारकी तत्कालीन प्रमुख औक्तिक भाषाएँ हैं—टक्कीका भी वह स्वरूप मिलता है जो अपभ्रंशकी स्थितिसे निकलकर आधुनिक औक्तिक भाषाकी स्थितिमे आ चुका था। इस काव्यका नाम है 'राउल वेल' और इसका यशस्त्री कवि है रोड या रोडा।[1] यह काव्य सम्भवतः दक्षिण कोसलमें वहाँके किसी सामन्तकी प्रेरणासे रचा गया था, यद्यपि बादमें शिला-फलकपर उत्कीर्ण होकर धार (मालवा) मे किसी प्रासादमें लगाया गया था और इस समय किंचित् भग्न अवस्थामें बम्बईके प्रिन्स ऑव वेल्स म्यूजियममें है। भारतीय आर्य भाषा-परिवारकी वर्तमान सात प्रमुख भाषाओंके प्राचीनतम रूप इसमें सुरक्षित है—और शिलांकित होनेके कारण अपने अक्षुण्ण रूपमे सुरक्षित हैं। इस काव्यमे एक सामन्तकी छह प्रदेशोंकी सात स्त्रियोंका रोचक वर्णन बहुत-कुछ उनकी अपनी भाषाओंमें देनेका प्रयास किया गया है। इन सात स्त्रियोंमे-से एक टक्किणी है। वर्त्तमान पंजाबी प्रदेश तथा हरियाणा, जिस समयकी यह रचना (राउल वेल) है, क्रमश. टक्क और भादाणक नामसे अभिहित थे और लगभग एक मिले-जुले क्षेत्रके रूपमें टक्क-भादाणक कहे जाते थे। 'राउल वेल'की टक्किणी इसी परस्पर मिले-जुले क्षेत्रकी कहींकी थी। केवल चौदह अर्द्धालियोंमें उसका वर्णन निम्नलिखित प्रकारसे किया गया है; शिलालेखके कुछ अक्षर उसके भग्न होनेके कारण त्रुटित और अपाठ्य हैं, उन्हे बिन्दु देकर छोड़ दिया गया है, और जिनके बारेमें अनुमान किया जा सका है, उन्हें कोष्ठकोंमे दे दिया गया है; साथमें दी हुई संख्याएँ शिलालेखकी पंक्तियोंकी है—

(१५) केहा टेल्लिपुतु तुहुं झाखहि। अ····डु वेहु तुहुं आख(हि)॥
वेहु एक्कु सो एथु वन्निजइ।····अक्खंदह ही आ भिज्जइ॥
अड्डा केह पाहु जो वद्धा। सोप्पर तेहा गोरी लद्धा॥
चंद सवाणा टीहा किय्यइ। जे मुहुं (१६) एक्केणवि मंडिय्यइ॥

[1] दे० प्रस्तुत लेखक-द्वारा सम्पादित 'राउल वेल और उसकी भाषा'।

अंघिहि कय्यलु डहरा दित्ता । जो (नि)हालि करि मयणू मत्ता ॥
कंय्यडिअहि सोहँहि दुइ गन्न । म(मं) डन संडन डहि परे अन्न ॥
कंढी कंढि जलाली सोहइ । एहा तेहा सउ जणु मोह(१७)इ ॥
आधूघाडे थणहि जो कंय्यू । सो सन्नाह अणंग हो नं···· ॥
(कं)य्यू वियूयहिं जे थण दीसहि । ते निहालि सब वत्थु उवीसहिं ॥
गोरइ अगि वेरंगा कंय्यू । संझहिं जोन्हहि नं संगउं हू ॥
पहिरणु घाघरेहिं जो केरा । कछ(१८)डा बछडा डहि पर इतरा ॥
सूथना झिक··· इला प(हि)रणु । पाखइ पाखउ धावइ तसु जणु ॥
एहा वेहु सुहावा टेल्ल । आन्न तु संदा डहि परइ वोल्ल ॥
एही टविकरिण पइसति सोहइ । सा निहालि जणु मल म(१९)ल चाहइ ॥

सुविधाके लिए नीचे इसका भाषान्तर दिया जा रहा है—

(१५) ऐ टेल्लिपुत्र (तिलंगीका पुत्र), तू कैसा है कि तू भी झंखता है ?···· देख, कि तू भी कहता है,

एक भी (ऐसी) देखो तो उसका यहाँ वर्णन किया जाये, जिसका वर्णन करते हुए हृदय भीगता (स्निग्ध होता) हो।

जो किसी प्रकारकी बाधाओके चरणों (या पाशों)में बँधा, उसने और केवल उसी प्रकारके व्यक्तिने (ऐसी) गौरांगीको प्राप्त किया है।

चन्द्रमाके सवर्ण (कोई पदार्थ) यदि दिनोंके लिए भी (निर्मित) किये जायें तो इन्हे (१६)एक (अकेले) (इसके) मुखसे ही बना लिया जाये।

आँखोंमें हलका और दीप्त कज्जल है, जिसे निहारकर मदन भी मस्त (हो रहा) है।

दोनों गण्ड कंय्यडियोंसे शोभित हो रहे हैं, (जिसके कारण) अन्य मण्डनादि दग्ध हो चुके हैं।

कण्ठमें (जो) जलाली (जल्लार देशकी) कण्ठी शोभित है, वह ऐसे-वैसे सभी जनोको मोहित करती है।

(१७) आधे उघाड़े हुए स्तनोंपर जो कंचुक है, वह मानो अनंगका सन्नाह हो रहा है।

कंचुकके बीचमें जो स्तन दिखाई पड़ रहे हैं, उन्हें निहारकर (लोग) सभी वस्तुओंकी उपेक्षा करते हैं।

गोरे अंगपर दोरंगा कंचुक (ऐसा लगता) है, मानो सन्ध्या और ज्योत्स्नाका संगम ही हो।

घाँघरेका जो परिधान है, (१८) (उसको देखकर) इतर (परिधान)-कछड़ा आदि दग्ध हो जाते हैं।

सूथने····परिधान (ऐसा है) मानो (उसका एक) पक्ष (दूसरे) पक्षमें दौड़ रहा हो।

देखो, इस प्रकारके टेल्ल (तिलंगे)के स्वाभाविक (वचन) है, (उसके) अन्य सान्द्र (स्निग्ध) बोल तो दग्ध हो जाते हैं।

(राजभवन)में प्रवेश करती हुई इस प्रकारकी टक्किणी शोभा दे रही है, और इसको निहारकर लोग (आँखें ?) मल-मलकर (१९) देख रहे है।

टक्किणीके इस वर्णनमें मिलनेवाले व्याकरण-रूप निम्नलिखित है—संख्याएँ शिलालेखकी पंक्तियोकी हैं :

संज्ञा, कर्त्ता (मूल) :

एक० पु० प्रत्ययहीन : हीआ १५, कछडा १७, बछडा १८, कंच्यू १७।

एक० स्त्री० प्रत्ययहीन : कंठी १६, टक्किणि १८।

एक० पु० (अकारान्त शब्द)–ु : जणु १६, सन्नाहु १७, संगउं १७, पहिरणु १७, जणु १८।

एक० पु० (आकारान्त शब्द ?)-उ : पाखउ १८।

बहु० पु० (अकारान्त शब्द) प्रत्ययहीन : गन्न १६, टेल्ल १८, मंडन संडन १६, वोल्ल १८।

संज्ञा, कर्म (मूल) :

एक० पु० (अकारान्त शब्द)–ु : कयूयलु १६।

बहु० स्त्री० प्रत्ययहीन : वत्थु १७।

संज्ञा, कर्म (विकृत) :

बहु० स्त्री० : गौरी १५

संज्ञा, करण :

एक० पु०–ेण : मुहुं एक्केण १६

एक० स्त्री०–हि : कंच्यडिअहि १६

संज्ञा, सम्प्रदान :

बहु० पु० (अकारान्त शब्द)-ा : टीहा १५

संज्ञा, सम्बन्ध :

सामासिक रूप : अड्डा पाहु १५, अणंग संनाहु १७, कंय्यू वियूयहि १७, चंद सवाणा १५, टेल्लिपुतु १५

एक० पु० स्त्री०–हि : संभहि जोन्हहि १७

एक० पु०–हिं केरा : घांघरेहिं केरा १७

बहु० पु०–हं : अक्खंदहं हीआ १५

संज्ञा, अधिकरण :

एक० पु० (अकारान्त शब्द)–ि : कंढि १६, अंगि १७

एक० पु० (आकारान्त शब्द ?)–इं : पाखइं १८

एक० पु० (अकारान्त शब्द) – हु : पाहु

एक० । बहु० पु० । स्त्री० (अकारान्त शब्द) –हिं : अंघिहिं १६, थणहि १७, विय्यहि १७

संज्ञा, सम्बोधन :

एक० पु० – ु : टेल्लिपुतु १५

सर्वनाम, तृतीय पु० :

एक० पु० । स्त्री० कर्त्ता : सो १५, सो १५, सो १७

बहु० पु० कर्म (विकृत) : ते १७

बहु० पु० कर्म (विकृत) : जें १५

एक० स्त्री० सम्बन्ध : तसु १८

सर्वनाम, सम्बन्ध वाचक :

एक० पु० : जो १५, जो १६, जो १७, जो १७

बहु० पु० : जे १७

विशेषण :

एक० । बहु० पु० प्रत्ययहीन : केह १५, दुइ १६, सब १७

वही – ु : एक्कु १५, सउ १६

एक० पु० – ा : केहा १५, तेहा १५, वद्धा १५, डहरा १६, दित्ता १६, मत्ता १६, वेरंगा १७, एहा १७, एहा १८, सुहावा १८

एक० पु० (विकृत) – अइ : गोरइ १७

एक० स्त्री० – ी : जलाली १६, एही १८

बहु० पु० – ा : सवाणा १५, एहा १६, तेहा १६, इतरा १८, संदा १८

वही (विकृत) – ैं : आघूघाडें १७

क्रिया, सामान्य वर्त्तमान :

द्वि० पु० एक० पु० – अहि : झांखहि १५, आख(हि) १५

तृ० पु० एक० पु०।स्त्री० – अइ : भिज्जइ १५, सोहइ १६, मोहइ १६, धावइ १८, परइ १८, सोहइ १८, चाहइ १८

तृ० पु० बहु० पु० । स्त्री० – अहिं : सोहहिं १६, दीसहिं १७, उवीसहिं १७

तृ० पु० बहु० पु० – अ : पर १८

क्रिया, सम्भावनार्थ वर्त्तमान :

द्वि० पु० एक० पु० – उ : वेहु १५, वेहु १५

द्वि० पु० एक० पु० – इज्जइ । इय्यइ : वन्निज्जइ १५, किय्यइ १५, मंडिय्यइ १६

क्रिया, सामान्यभूत और भूत कृदन्त :

तृ० पु० एक० पु० – उ : हू (हु + उ) १७

वही – ओ : हो १७

तृ० पु० बहु० पु० – ए : परे १६

क्रिया, पूर्वकालिक कृदन्त :

–अ : मल १८, मल १८

–इ : (नि)हालि १६, करि १६, डहि १६, निहालि १७, डहि १८, डहि १८, निहालि १८

क्रिया, वर्त्तमान कृदन्त :

तृ० पु० एक० स्त्री० – अति : पइसति १८

तृ० पु० बहु० पु० – अंद : अक्खंदहं १५

अव्यय :

स्थानवाचक : एथु १५

संयोजक नं : नं १७, नं १७

जणु : जणु १८

अवधारण वाचक – ऊ : मयणू १६
वि : एक्केणवि १६
तु : तु १८
पर : पर १५

एक रचनामें मिलनेवाले कुछ-न-कुछ रूप दूसरीमें इसलिए नहीं मिलते हैं कि जहाँ एक (राउल वेल) वणनात्मक प्रशस्ति काव्य है, दूसरा (कु०) कथा-काव्य है। इसलिए नीचे केवल उन्हीं रूपोंपर विचार किया जायेगा जो कु० तथा 'राउल वेल' की टक्किणीकी भाषा – दोनो – में पाये जाते हैं।

कर्त्ता० एक० के अविकृत रूप दोनोमें ही एक प्रकारसे आये है : प्रत्यय-हीन रूप तो दोनोमें मिलते ही है, एक० पु० अकारान्त शब्द दोनोमें – ु तथा उ प्रत्ययोके साथ भी आते है।

कर्त्ता० बहु० पु० अकारान्त शब्दोंके अविकृत रूप टक्किणी भाषामें प्रत्ययहीन ही है, कु० मे भी वे सामान्यत. प्रत्ययहीन हैं, किन्तु कभी-कभी वे – आ। आ। आन प्रत्ययोंके साथ भी आते हैं।

कर्म० एक० पु० शब्दोंका रूप टक्किणीकी भाषामें अविकृत ही मिलता है, विभक्तियुक्त नही मिलता है, और विकृत रूपका भी उसमें एक ही उदाहरण आता है जो एक० स्त्री० (ईकारान्त शब्द) में अनुनासिक-युक्त है। कु० में वह या तो अविकृत है और या तो विकृत और विभक्तियुक्त है।

कर्म एक० पु० अकारान्त शब्द दोनोंमें अविकृत रूपमें – ु प्रत्ययके साथ प्रयुक्त हुए है।

करणमे, टक्किणीकी भाषामें बिभक्तियाँ नहीं हैं, केवल एक०पु० में – ें ण तथा बहु० स्त्री० में – हि प्रत्यय प्रयुक्त हुए हैं। करणके रूप कु० में सामान्यतः विभक्तियुक्त हैं, केवल कहीं-कहीं पर अविकृत है। असम्भव नहीं है कि इन विभक्तियोंका विकास बादकी वस्तु हो।

सम्प्रदानमे भी स्थिति वही है जो ऊपर करणकी दिखाई पड़ी है; जबकि कु० में विभक्तियुक्त रूप ही प्रयुक्त हुए हैं, टक्किणी भाषामें – ा प्रत्यय मात्र है।

अपादानके रूप टक्किणीकी भाषामें नहीं है।

सम्बन्धके लिए टक्किणीकी भाषामें या तो सामासिक रूप हैं और या तो एक – हि तथा बहु० – हं युक्त रूप है, केवल एक स्थानपर एक० – हि के साथ 'केरा' विभक्ति युक्त रूप भी मिलता है। कु० में विभक्तियुक्त रूप ही मिलते हैं, केवल एक स्थान पर – हि प्रत्यय प्रयुक्त मिलता है।

अधिकरण एक० पु० (आकारान्त) शब्दोंमें दोनोंमें – ि प्रत्ययका प्रयोग हुआ है, टक्किणीकी भाषामें – इं तथा – हिं का भी प्रयोग मिलता है और एक स्थानपर – हु का भी प्रयोग हुआ है। कु० में विभक्तियुक्त प्रयोग भी प्रचुरताके साथ मिलते हैं, जबकि टक्किणीकी भाषामे ऐसा एक भी नहीं मिलता है। हो सकता है कि इन विभक्तियोंका भी विकास बादका हो।

सम्बोधनमे कु० में अविकृत और विकृत दोनों रूप प्रयुक्त हुए है, टक्किणीकी भाषामें केवल एक उदाहरण मिलता है जो अकारान्त शब्दका है और – ु प्रत्ययके साथ आया है।

इस प्रकार प्रकट है कि कु० संज्ञा-रूपोके सम्बन्धमें टक्किणीकी भाषासे काफ़ी बादकी भाषाका उदाहरण प्रस्तुत करती है—जिसमे प्रत्ययोका स्थान विभक्तियोंने ग्रहण कर लिया था, यद्यपि प्रत्ययोंका प्रयोग सर्वथा समाप्त नहीं हुआ था।

सर्वनामोंमें-से तृतीय पु० के एक० सो तथा बहु० ते दोनोमे हैं, निकटवर्ती बहु० स्त्री० (विकृत) टक्किणीकी भाषामें जें है, कु० मे बहु० स्त्री० (विकृत) का प्रयोग नही मिलता है; टक्किणीकी भाषामे सम्बन्धमें सो का तासु हो गया है, कु० में सो विकृत रूप तिस है, जो कि सम्बन्धके रूपमें प्रयुक्त नहीं मिलता है।

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम एक० जो तथा बहु० जे दोनोंमें समान रूपसे आये हैं।

विशेषणोंके एक० पु० रूप० दोनोंमें प्रायः आकारान्त तथा एक० स्त्री० रूप प्राय: ईकारान्त है – और दोनोंकी यह समानता महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वर्त्तमान खड़ी बोलीकी यह एक निश्चयात्मक विशेषता है। बहु० पु० के लिए अकारान्त शब्दोंको आकारान्त भी दोनोंमें समान रूपमे किया गया है, दोनोंकी यह समानता भी महत्त्वपूर्ण है।

संख्यावाचक विशेषण एक ही—दुइ दोनोंमें समान रूपसे मिलता है।

क्रियाके अन्तर्गत तृ० पु० एक० सामान्य वर्त्त० के रूप दोनोंमें सामान्यतः – अइ लगाकर बने हैं, किन्तु कहीं-कहीं पर वे – अ लगाकर भी बने हैं।

तृ० पु० बहु० का रूप टक्किणीकी भाषामे – अंहि लगाकर बना है, वह कु० में नहीं मिलता है, प्रथम पु० बहु० का रूप कु० में – अइं लगाकर बना है, जो टक्किणीकी भाषामें नही मिलता है। वर्त्तमान खड़ी बोलीमें इस विषयमें दोनोंमें समानता है, इसलिए यह असम्भव नही है कि – अइं – अंहिका ही बादका विकास हो।

सम्भावनार्थ वर्त्तमानका द्वि० पु० एक० का रूप टक्किणीकी भाषा तथा कु० दोनोंमें – उ लगाकर बना है, और टक्किणीकी भाषाका – इज्जइ या – इय्यइ कु० में – ईइके रूपमें मिलता है, जो कि उसीका विकसित रूप ज्ञात होता है।

तृ० पु० एक० पु० सामान्य भूत और भूत कृदन्तका टक्किणीकी भाषाका – उ। ओ युक्त रूप कु० में भी मिलता है। उसका बहु० का – ए युक्त रूप भी कु० में समान रूपसे मिलता है।

पूर्वकालिक कृदन्तके रूप दोनोंमें – इ अथवा – अ लगाकर बने है, जिनमेंसे – इ वाले रूप ही अधिकतासे है।

वर्त्तमान कृदन्तका एक० स्त्री० का एक रूप टक्किणीकी भाषामें – ति युक्त है जबकि कु० मे वह – ती युक्त है। असम्भव नही है कि – ती तथा – ति का यह अन्तर छन्द-रचना जनित हो। उसका दूसरा रूप दोनोंमें – अंद युक्त है।

अव्ययोंमें अवधारणवाचक उ दोनोंमें समानरूपसे हैं। टक्किणी भाषाका संयोजक जणु कु० में जाणु के रूपमें मिलता है। टक्किणीकी भाषाका निकट स्थानवाचक एथु कु० में नही है, किन्तु प्रश्न तथा सम्बन्धार्थी स्थानवाचक उसमें कहाँ-जहाँ है, इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि निकट स्थानवाचक उसमे इहाँ रहा होगा, जो एथु का परवर्ती रूप हो सकता है। टक्किणीकी भाषाका संयोजक नं कु० में नही है, उसका कार्य उसमें जाणि, जाणुं अथवा जाणे से लिया गया है।

इस प्रकार प्रकट है कि दोनों रचनाओकी भाषा अभिन्न है, अन्तर इतना ही है कि कु० मे उसी भाषाका परवर्ती रूप है जिसका पूर्ववर्ती रूप 'राउल वेल' की टक्किणीकी भाषामे मिलता है।

■

वार्तिक तिलकके शब्द-रूप

संज्ञा : एकवचन (अविकृत)

पु० तथा स्त्री० शब्द प्रत्ययहीन रूपोंमें प्रयुक्त हैं। उदाहरण देना अनावश्यक होगा।

संज्ञा : बहुवचन (अविकृत)

पुं० : आ > ए : तिसके च्यारि बेटे (१), ए च्यारि बेटे पलकोके 'डोरे' खैंचि दिस, तारे सौं बांधीए (२), मेरे च्यारि 'बेटे' (४), दो लाख 'रुपैए' वैर करो (८), ढाइ लाख 'रुपैए' कुरबान हुवए थे (९), दाई 'कपड़े' पिन्हाइ···पेस कीया (१०) सोनेके 'तुके' कुतुब चलावै (१४), 'तूके' ढूंढ़नेवाले····जमा होई (१४), मसालौके 'चांदणे'···टूट टूट परैगे (१४), ईस ही रौसनि 'वाले' गिणे (१५) ।

पु० : अ (फ़ारसी) > आन : बादिसाहान (३) ।

स्त्री० : अ > एं : आखै की 'पलकौं (पलकैं ?)' गालैं सौ आई लगी (२), ठौर ठौर 'नवबतौं' बाजती है (९) ।

स्त्री० : ई > इयां : 'बारीया (बारीयां) बेलियां' नैनां दिषलावो (१३) ।

बहु० के लिए एक० का प्रयोग : चालीस अरबकी 'चौकी', ए तीन 'बस्त' जिस लडिकि मैं होइगी (१२) ।

संज्ञा : एकवचन (विकृत)

आ > एं : पातिसाह 'देषणैं' सौं रहा (२) ।

आ > ए : 'घोडे'का घोड़ा, तुम्हारे 'बेटे' का नवल नाम दीया है (११), 'खाणं 'खाणें' कु आए (१५) ।

प्रत्ययहीन : 'सोना रूपा' की जंजीर से औधे लटकै (४) ।

संज्ञा : बहुवचन (विकृत रूप)

पुं० : अ > आं : फेरि 'मसालां' की रौसनाई यौं····(१५) ।

स्त्री० : अ > एँ : 'आंखै'की पलकौं गालैं सौं आई लगी (२) ।

,, अ > ओं : तब 'पलकों' सौ रेसके डोरे लगे रहे (२) ।

,, ई > यौं : तब मकड़ी 'माख्यौं' पर छोड़िए (३) ।

लिंग-निर्माण

पु० : अ । आ > स्त्री०-ई : तब 'मकड़ी' माख्यौंपर छोड़िए (३), सो ऐसी 'मकड़ी' की सिकार पातिसाह जी देषै (३), तब ऐसी 'मकडी'की सिकार (३) उसी पातिसाहकी 'बेटी' ब्याहीए (४), 'बेटी' कौन कै दे (५), जहा 'लडिकी' सुरति जमाल होइगी (१२), मा 'साहिजादी' (१२) नानी 'साहिजादी' (१२), ए तीन बस्त जिस 'लडिकि' मैं होइगी (१२), पंज सौ 'बूटी' (१३, १५) पंच सै सोवन 'लठी' (१३) सोनेकी 'छडी' लिये रहो (१३) ।

संज्ञा : प्रथमा विभक्ति

पुं०।स्त्री० : नैं, नै : पेरोज साहि 'नैं' बीबी बिवांनां ब्याही (५), मांगणै लायक जाति साह 'नैं' बदी करी नांह (८), पातसाह 'नै' हुकम कीया (१०), तब पातसाह 'नै' भी फाल देखा (११), एता जवाब बीबी बिवांना 'नै' कीया (१२) यह जवाब पातिसाह 'नै' कीया (१२), जिस षुदाय 'नै' हमको कुतुब बेटा दीया है····(१२), महल बादसाह 'नै' सहर बाहिरे कराए (१५) ।

निर्विभक्तिक : पुं० : 'पातिसाह' हुकम कीयां (८), 'पातिसाह' कह्या (११), तब 'पंडितां' आपणा सास्त्र देष्या (११) ।

स्त्री० : आ > ऐ : तब बीबी 'बिवानै' बोली (१२) ।

द्वितीया विभक्ति

पु०।स्त्री० कौं, को : ज्यौं रंगरेज चूनडी 'को' बंद देता है (२), तब पातसाहि 'को' नजरि आवै (२), सदर 'कौ' आय माखी लगै (३), मकणी 'कौं' पकड़ै (३) ज्यौ हिरण 'को' चीता पकड़ै (३), आपणे साहिब 'कौं' यादि करै (४), पातिस्याह पेरोज साहि 'कौं' (५), पातसाह 'कौं' फेरि जवानी चढ़ी (५), षुदाय'को' आदि करता हुवा····(५), बीबी बिवानां 'कौ' फारसी हिंदुही दिल मही थी पैदा हुई (६), ऐसी बीबी बिवाना पातसाह 'कौं' ब्याही । (६), बीबी बिवाना 'कौं'—पेट रहै (७), बीवी बिवानां 'कौं' फरज्यंद होइ (७), बीबी बिवानां 'कौं' फेरि पेटिकी

उमेद रहै (७), बीबी बिवानां 'कौ' पेटकी उमेद रही (८), फेरि फेरि महीने 'कौ' ओरु पातसाहकी नजरि (१०), तब पातसाह 'कौ' भी····नाम नजरि आया (११), तुम कुतुबुद्दीन नवल 'को' एक ब्याहका नांव क्यौं लीया (१२), कुतुब 'को' अवलि तही ब्याहैगे (१२), सो अलाह कुतुब 'को' ऐसा ब्याही भी देगा (१२), साहिजादे 'को' को मत पूछियौ (१३), तिसकी साहिजादै 'कौ' मालूम होई (१३), पचीस पचीस मुहुर 'कौ' गज एक अपनो समसेर जमधड़ 'कौ' कचा सूत सौं परोई (१४), घोड़ै 'को' बुरी करावैगे (१४)।

वही, कै : बिवाना 'कै' फरज्यंद हुआ (९), कोई ऐसी उमर को बेटी कौन 'कै' दे (५)।

तृतीया विभक्ति

पु०।स्त्री० : सौं : आहु षांना पेरोज खा 'सौं' पैदा हुवा, बकरा हिरण सो लडावै (१), आँखै की पलकौ गालै 'सौ' आई लगी (२), पातिसाह देषणै 'सौ' रहा (२), पलकौ के डोरे खैचि दिस तारे 'सौ' बाँधीए (२), तब सिकार 'सौ' बहुत प्यास पातसाह का रहै (३), जंगल की सिकार 'सौ' रहै (३), सोना रूपा की जंजीर 'सौ' औधे लटकै (४), षुदाइकी रहम इन्याइति 'सौं' पैदा हुई (६), पातसाह उमराव 'सौ' बोले (१०), पर मुसकलि 'सौ' पैदा होहिंगे (१२), षुब जतन 'सौ' राष्या चाहिए (१२), कोई किस ही के साथ 'सौ' लेणै न पावै, कचे सूत 'सौ' नग जौ हार परोए (१४), असवारके डील 'सौ' टूटि टूटि परैगे (१४), उसके हाथ 'सौ' कोई और लेणै न पावै (१४)।

वही, ते : साब अलाह 'ते' होइगी (१२)।

निर्विभक्तिक : बारिया बेलियां 'नैना' दिषलावो (१३)।

चतुर्थी विभक्ति

पु०।स्त्री० कु : आप अंदर षाणां षाणै 'कु' आए (१५)।

वही, कौं : परणनै 'कौ' असवार हुवाए, एक सौ मुहुरकी हिमानी दरवाजे-की खैर 'कौं' (१३), षाणा षाणै 'कौ' बैठा कुतबदी नवल (१६)।

पंचमी विभक्ति

पु०।स्त्री० : थी : दिल यही 'थी' पैदा हुई (६)।

वही, सौं : हरम खानै 'सौं' दौड़ी ही आई (७)।

षष्ठी बिभक्ति

एकवचन पु० का : जब कीसी उमराव 'का' काम (२), हाथी 'का' हाथी (२), घोड़े 'का' घोड़ा (२), आदमी 'का' आदमी नजरि आवै (२), तब सिकार सौं बहुत प्यास पातसाह 'का' रहै (३), ऐसी पातिसाही 'का' धणी (२) अपने उमरावै 'का' (४), हाथी घोड़ा'का' (४), समरकंदके पातसाह 'का' नालेर आया (५), सुलतान सलेम 'का' (५), मोतियन 'का' सेहुरा सें बाधि (५) फरज्यंद 'का' पेट रहै (७), एक रोज फजर 'का' बष्त है (७) हुकम खुदाइ 'का' ऐसा हुआ (७), माहीना एक 'का' लडिका (१०), साहिजादा केरि माहीने 'का' होय तब नजरि करिये (१०), ''' तैता महीना तीस 'का' नजरी अवै (१०), तुम्हारे बेटे 'का' नवल नाम दीया है (११), कुतबुदीन नवल 'का' एक ब्याह''''(१०), बहुत बंदिगी 'का' फरजंद है (१२), एक ब्याह 'का' नांव क्यौ लीया (१२, १८), तिस 'का' जीन करिए (१४), उसके बष्तके दूसरा घोड़ा उस ही रौस 'का'''''(१४), इबादति 'का' वक्त है (१५, १५) दुनिया 'का' जनावर''''(१६) दुनिया 'का' दरष्त'''' (१६), जंगल 'का' ही जनावर (१६), जंगल 'का' ही दरष्त (१६) ।

एकवचन स्त्री० : की : तिन दरियाव 'की' मछी मारी (१), तिसकी निवै बरस 'की' उमर हुई (२), आँखै 'की' पलकौं गालैं सै आई लगी (२), तब सिकार काहे 'की' देषीयै (३), ऊजली चादरि सितारे 'की' बिछाय (३), सो मकड़ी चीले 'की' नाहायति मषी कौं पकड़ै (३) सो ऐसी मकड़ी 'की' सिकार पातिसाहु जी देषै (३), जंगल 'की' सिकार सौं रहै (३), तब ऐसी मकड़ी 'की' सिकार देषै (३), षुदाइ 'की' बंदिगी करणौ लागा (४), सोना रूपा 'की' जंजीर सौं औधे लटकै (४), सरोस 'की' बंदिगी करै (४), सामके वक्त 'की' (४), षुब चुस्त बंदगी षुदाय 'की' की (४), नब्बै बरस 'की' उमर मों''''नालेर आया (५), समरकंदके पातसाह 'की' बेटी ब्याही (५), तरीक बेद 'की' पैदा हुई (६), कुरान 'की' पैदा हुई (६), षुदाई 'की' बंदगी करने लागे (३), बीबी बिवानां 'की' दाई''''दौड़ी ही आई (८), बीबी बिवानां कौं पेट 'की' उमेंद रही (८), उमेद 'की' षबर पर''''(९), ताज कुलह 'की' ताषी सिरपर राषी (१०), पातसाह 'की' नजरि पेस कीया (१०), पातसाह 'की' नजरि आगै राषा (१०), साहिजादा पातसाहि'की' नजरि ऐसा आया''''(१०), पातसाहि 'की' नजरि (१०), इसकै वासतै तुम कौंण कौण बंदिगी षुदाय 'की' की है (१२), किसी बात 'की' कमी नाही (१२), सोने

'की' छडी लिये रहौ (१३), एक सौ मुहर 'की' हिमानी (१३), दरवाजे 'की' षैर कुं (१३), पचीस पचीस मुहर कौ गज 'की' नीलक (१४), नगों 'की' दोस्ती कुतब घोड़ैको षुरी करावैगे (१४), बीबा बिवाना 'की' हजूरि (१५), घुंठ एक ठंडा आब पाणी 'की' पीजीए (१५), योगिणी पाणी 'की' घुटै (१५), फेरि मसाला 'की' रौसनाई मौ (१५), दुनिया 'की' बतास पवन लगने न पावै (१६), पवन भी लगै सु जंगल 'की' ही लगै (१६)।

एकवचन पु० (विकृत) : कैं, कै, के : दिल्ली 'कै' तषत''''बादसाही करै (१), दिली 'कै' बाजारि''''(९), घोड़े 'के' गले मौ बाधिए (१४), दिल्ली 'कै' बड़े बाजार आइ जमा होई (१५), कुतुब० दिल्ली 'के' घर साहिजादा पैदा हुवा (१२), साम'के' वक्तकी''''(१४), खबरिदार चिहरा मुहला 'के' होय (४), समरकंद 'के' पातसाहका नालेर आया (५), समरकद 'के' पातसाहकी बेटी ब्याही (५), पातसाह 'के' दिलके दरद कढ़े (५) काजी मुल्ला 'कै' आगै''''(६)।

एकवचन पु० (विकृत) कौ : मसालै 'कौ' उजियारे''''(१४)।

बहुवचन पु० : के : ए सुलतान 'के' मजलिसी उमराव (१), पलकौ 'के' डोरे खैंचि''''(२), तब पलकोसे रेस 'के' डोरे लगे रहै (२), पातसाहके दिल 'के' दरद कढ़े (५), अब तौ लाषौं करोड़ों 'के' मुहुरि'''' (९), पातिसाह 'के' मनच्यंते कारिज हुए (९), एक सै सौ ब्याह कुतुब 'के' हमे सौ करै (१२), कुतुबुदीन नवल 'के' हम बहुत ब्याह करैगे (१२), सोने 'के' तुके कुतुब चलावै (१४), तिस रोज मसालौ 'के' चादरौं''''टूटि टूटि परैगे (१४)।

बहुवचन स्त्री० की : चालीस हरम 'की' चौकी (१)।

निर्विभक्तिक (विकृत) . किसी कौ 'पंडितौ' पास रखीए (६), बीबी बिवानां कौ 'पेटि' उमीद रहै (७) 'मागणौं' लायक पातिसाह तै बदी करी नांह (८)।

सप्तमी विभक्ति

– अ > इ : सु बीबी बिवांना 'अवलि' बहुत सुरति जमाल (६), दिली कै 'बाजारि'''''(९), कि 'अवलि' पातिसाहि बोल्यो (११), पै 'अवलि' ब्याह तहां करैगे (१२), कुतुब कौ 'अवलि' तही ब्याहैगे (१२), 'अवलि' पुरानवाला बोला (१५), 'बाहरि' छडीदार षड़े रहैं (१५)।

– आ > एं, ऐ : पै 'घोड़ै' असवार हुवा न जाय (३), किसी कैं काजी मुला कैं 'आगै'....(६), 'डेरै डेरै' नवबतां बाजती है (९), साहिजादा 'दरवाजै' बासै बाइ उतरै (१४), मसालौ के 'चांदणैं'....(१४)।

– आ > ऐ : मसालै को 'उजिआरे'....(१४), महल सहर 'बाहिरे' कराए (१५)।

में, मैं, मै : कोई ऐसी उमर 'में' बेटी कौन कै दे (५), सायति 'में' गुसल किया (१०), सिर 'मैं' पानी डालि कपड़े पिहने (१०), हिंदुई 'मै' पंडित नाम राखौ (११), तुमारे फाल 'मैं' क्या नाम नजरि आया (११), हमारे फाल 'मैं' भी याही नाम है (११), साहिजादा हरमषानै 'मैं' ले गए (११), ए तीन बस्त जिस लड़िकि 'मैं' होइगी....(१२), घोड़े के गले 'मैं' बाधा (१४)।

मही : दिल 'मही' थी पैदा हुई (६)।

मो, मौं : नवै बरस की उमर 'मों' नालेर आया (५), फेरि मसालां की रौसनाई 'मौं'....(१५)।

पर, ऊपर, उपर : तब गिलम 'ऊपर'....चीनी सकर बषेरियै (३), तब मकड़ी माख्यों 'पर' छोड़िए (३), एक दिन तख्त 'पर' क्या स करता....(४), बादशाह तष्त 'पर' आइ बैठे (७), बिवानां 'उपर' कुरबान करि खैर करो (८), उमेद की खबरि 'पर'...(९), सिर 'पर' राषी (१०)।

निर्विभक्तिक : एक-एक 'रांति' आवै (१), तब पातिसाह 'तषत' आइ बैठे (२), तसबी पातिसाह चारयौ 'पहर' यादि करै (४), किसी कौ पंडितौ 'पास' रखीए (६), एक 'रौज' फजरका वष्त है (८), तिस 'रौज' दीजीए (८), 'ठौर ठौर' अब मोती छाडीये है (९), 'ठौर ठौर' नवबतौ बाजती है (९), 'नजरि' पेस कीया (१०), 'नजरि' ऐसा आया (१०), लरिका 'नजरि' आवै (१०), तब कुतबुदीन नवल नाम 'नजरि' आया (११, ११), कुतब दिल्लीके 'घर' पातिसाहजादा पैदा हुवा (१२), ग्यारह सै आदमी कुतुब० 'पास' रखे (१३), तिन्हों कै 'हाथ' (१२), आठवै 'रोज' जुमाराति आवै (१४), तिस 'रोज' बषसीए (१४), आठवै 'रोज' (१४), दिल्ली कै बड़े 'बाजार' आइ जमा होई (१४), 'हाथ' पहली बाग लागै (१४), आपणैं 'महल' आए (१५)।

सम्बोधन

एकवचन – आ > ऐ : साहिजादे सलामति (१५)।

बहुवचन : – आ।आ > ओ।औ : 'यारो', 'उलमावो', 'पंडितो' (११), ना 'यारौ' (११), क्यौ 'यारौ' क्यौ बोलते नाही (११), क्यौं 'यारो' बोलते क्यों नाही (११)।

ए, ऐ : 'ए' पाक परवर दिगार''''(५), 'ए' दाई तू ब मांग (८), 'ऐ' दाई किछू तू मांग (८), 'ए' दाई साहिजादा फेरि माहीनेका होई तब नजरि करिये (१०), 'ए' बीबी (१२), 'ए' साहिजादे (१५)।

सर्वनाम : उत्तमपुरुष

एकवचन कर्त्ता (अविकृत) मैं : 'मैं' क्या मांगौ (८, ८)।

एकवचन सम्बन्ध (अविकृत) मेरा : 'मेरे' च्यारि बेटे (४)।

बहुवचन कर्त्ता (अविकृत) हम : तब 'हम' कहैगे (११), कुतुब के 'हम' बहुत ब्याह करैगे (१२)।

बहुवचन कर्म-सम्प्रदान (अविकृत) हमकों : जिस षुदाय ने 'हमकों' बेटा दीया है (१२)।

बहुवचन सम्बन्ध (अविकृत) हमारा, (विकृत): पु० हमारे, स्त्री० हमारी : 'हमारे' फाल मौं भी याही नाम है (११), 'हमारी' एक अरज है (१२)।

सर्वनाम : मध्यमपुरुष

एकवचन (अविकृत) तू : 'तू' ब मांग (८), कुछू 'तू' मांग (८)।

बहुवचन कर्त्ता (अविकृत) : 'तुम' कुतुबुदीन नवल को एक ब्याह का नांव क्यों लीया (१२), 'तुम' कौण कौण बंदिगी षुदायकी की है (१२)।

बहुवचन सम्बन्ध (विकृत) पु० तुमारे : 'तुमारे' फाल मैं क्या नाम नजरि आया (११), 'तुमारे' बेटे का नवल नाम दीया है (११)।

सर्वनाम विशेषण : निकटवर्ती निश्चयवाचक

एकवचन (अविकृत) यह, य, याह : हमारे फाल मैं भी 'याही' नाम है (११), 'यह' जवाब पातिसाह नै कीया (१२), 'यह' बात दरोग लगती है (१२), 'याह' बात दरोग लगती है (१२), तिन्हकौ 'य' हकीकति फुरमाई (१३), 'यह' मेलिकरि घोड़े के गले मौं बाधिए (१४)।

एकवचन (विकृत) इस : 'इसकै' वास्ते तुम कौंण कौंण बंदिगी खुदायकी की है (१२), अलह तौ 'इससौ' भी आले आले देगा (१२), दुनिया का जनावर 'हंसकी' नजरि न आवै (१५)।

बहुवचन (अविकृत) ए : 'ए' सुलतान के मज[ल]सी उमराव····(१), 'ए' च्यारि बेटे (१), 'ए' उलमा भी आपना फाल देखौ (११), 'ए' तीन बस्त जिस लड़िकि मैं होइगी (१२)।

सर्वनाम विशेषण : दूरवर्ती निश्चयवाचक

वह-परिवार :

एकवचन (विकृत) उस : 'उसका' ही घोड़ा (१४), कुदरत नाही 'उसके' हाथ सौ कोई और लेणै न पावै (१४), सो 'उसके' वष्तके (१४), दूसरा घोड़ा 'उस' ही रौस 'का'···(१४), 'उसकी' नजरि न आवै (१६)।

त-परिवार :

एकवचन (विकृत) कर्त्ता तिन : 'तिन' दरियाव की मछी मारी (१)।

एकवचन (विकृत) अन्यकारक तिस : 'तिसके' च्यारि बेटे (१), 'तिसकै' पेरोज खां सिकारी (१), 'तिस' पर चीनी सकर बषेरियै (३), 'तिस' के पेटका असलि पातसाहजादा····(४), 'तिस' की निवै बरस की उमर हुई (८), 'तिस' रोज कीजीए (८), 'तिसको' एक ब्याह का नांव क्यों लीया (१२), 'तिसकौं' लाख देहुं सौ लाख दीजीयौ (१३), 'तिसपर' अफ्रातंच लीखीए (१३), जो पावै 'तिस ही का' (१३), 'तिस' रोज पंज पंज हार कै····(१४), 'तिस' थे माह···· दरोग लगती है (१२), 'तिसमै' पंज सौ बूढ़ी (१३), 'तिसकी' साहिजादै कौ माल्रूम होई (१३)।

बहुवचन (अविकृत) तिन्ह, (विकृत) तिन्हौ : 'तिन्हौको' पातिस्याह हुकम कीया (१३), 'तिन्हकौ' ये हकीकति फुरमाई (१३), 'तिन्हौ कै' हाथ पंच सै सोवन लठी (१३)।

स-परिवार :

एकवचन (अविकृत) सो, सु : 'सु' कैसा एक पातिस्याह (१), 'सु' दीजीए (८), 'सोई' नाम षूब (११), 'सो' अलाह कुतुब को ऐसा ब्याही भी देगा (१२), 'सु' जंगल का जनावर····(१६), 'सो' मकड़ी मषी पौ पकड़ै (३), 'सु' जंगल की ही लगै (१६)।

सर्वनाम विशेषण : निजवाचक

एकवचन कर्त्ता (अविकृत) : 'आप' खुसाल होय उतरै (१४), 'आप' अंदर आए (१४)।

एकवचन सम्बन्ध (अविकृत) आपना, अपनी, (विकृत) अप्पणे, आपणे : हजरति भी 'आपना' फाल देषौ (११), 'आपणे' महल आए (१५), 'अप्पणे' साहिब कौ यादि करै (४), 'अपनी' समसेर जमधड़ कौ कच्चा सूत सौ परोईए (१४)।

बहुवचन सम्बन्ध (अविकृत) आपणा, आपना : पंडितौ 'आपणा' सास्त्र देखा (११), ए उलमा भी 'आपना' फाल देखौ (११)।

सर्वनाम विशेषण : सम्बन्धवाचक

एकवचन (अविकृत) जु, जो : 'जु' कौडी लायक आदमी आवै (१३), 'जु' इसकी नजरि पड़े (१५), 'जो' पावै तिस ही का (१४)।

एकवचन (विकृत) जिस : 'जिस' षुदाय नै हमका....बेटा दिया है (१२), जब 'जिसकौ' हाथ पहली बाग लागै (१४), ये ए तीन बस्त 'जिस' लड़िकि मैं होइगी (१२), 'जिस' रोज बीबी बिवानां....(८)।

सर्वनाम । विशेषण : अनिश्चयवाचक

एकवचन (अविकृत) कोई : असल पातिसाहजादा 'कोई' नहीं (४), 'कोई' अैसी उमरमें बेटी कौन कै दे (५), साहिजादे कौ 'कोई' मत पूछियौ (१३), 'कोई' बड़ा गुनी...(१३), 'कोई' विसही के हाथ सौं ...(१४), 'कोई' और लेणै न पावै (१४)।

एकवचन (विकृत) किसी, किस ही: 'किसी कै' काजी मुला कै आगै पठए, 'किसी कौ' पंडितौं पास रषीए....(६), जब 'कीसी उमराव का' काम....(२), किसी पातिसाह की' बेटी ब्याहीए (४), 'किसी बातकी' कमी नाही (१२), 'किस ही के' हाथ सौ लेणै न पावै (१४)।

सर्वनाम । विशेषण : प्रश्नवाचक

एकवचन (अविकृत) कौंन : 'कौन कौंन', उमराउ (१), 'कौन' कै दे (५), तुमा 'कौंण कौंण' बंदिगी षुदायकी की है (१२), 'कौन' नाम रषै (११)।

क्या : तुमारे फाल मैं 'क्या' नाम नजरि आया (११), ऐसी 'क्या' अरज है (१२), तू 'क्या' मांगती है (८), मैं 'क्या' मांगौ (८)।

एकवचन (अविकृत) काहे : तब सिकार 'काहे की' देषीयै (३)।

एकवचन (विकृत) किस : 'किस' वासतै बंदिगी करनै लागै (७), दरोग 'किस' वासतै (१२), 'किस' वासतै (१५)।

विशेषण : गुणवाचक

एकवचन पु० अकारान्त : 'कुछ' साहिजादेका नाव 'खूब' सा राखो (११)।

एकवचन पु० भकारान्त : ऐसा' सुलतान (१), सु 'कैसा' एक पातिसाह (१), होइ तौ 'भला' (४), हुकम षुदाइका 'अैसा' हुवा (९), साहिजादा पातसाहिकी नजरि 'अैसा' आया (१०) 'ऐसा' ब्याही भी देगा (१२)।

पु० ईकारान्त : तब पातिसाह बहुत 'षुसियाली' होय ३, 'असलि' पात-साहिजादा होइ···(४)।

स्त्री० ईकारान्त : सो 'अैसी' मकड़ीकी सिकार पातिसाह जी देषै (३), 'अैसी' पातिसाही का धणी (३), 'अैसी' बीबी बिवानां पातसाह कौं ब्याही (६), 'अैसी' बंदिगी करतां करतां (७), 'अैसी' क्या अरज है (१२), 'ऊजली' चादरि सितारे की····(३), कोई अैसी' उमर मैं बेटी कौन कै दे (५), ग्यारह सै आदमी 'असी' भांति रषै (१३), हाथ 'पहली' बाग लागै (१४)।

एकवचन (विकृत) पु०–आ>ए : 'अैसे मैं' बीबी बिवानांकी दाई···· आई (७), 'अैसे मों' सुलतान (३)।

बहुवचन पु०–आ>ए : 'अैसे' पख····(१२), पीछे ब्याह और 'बहुतेरे' करैंगे (१२), अलह तौ इससौ भी 'आले आले' देगा (१२), 'तूके' ढूंढनेवाले··· (१४), तारे 'से' नग टूटि टूटि परैंगे (१४)।

विशेषण : परिमाण वाचक

एकवचन (अविकृत) बड़ा : तू 'बड़ा' साहिब करीम मिहिरबान (५)।

एकवचन (अविकृत) बहुत : 'बहुत' सुरति जमाल····(६), 'बहुत' अजमति (१०), हम 'बहुत' ब्याह करेंगे (१२)।

एकवचन (अविकृत) षूब : 'षूब' फहिम अकलिदार····(६)।

एकवचन (अविकृत) कुछु : 'कुछू' तू मांग (८)।
एकवचन (विकृत) – आ>ए : 'बड़े' बाजार आइ जमा होई (१४)

विशेषण : संख्यावाचक

एक : 'एक एक' राति आवै (१), 'एक' अवल फरज्यंदका पेट रहै (७), कुतुबुदीन नवलका 'एक' ब्याह····(१२), 'एक' ब्याहका नाव····(१२), गज 'एक' (१४), 'एक' दोइ नग (१४), 'एक' नेवाला उठाय उठायए (१५), घुंट 'एक' लीजीए (१५)।

दोइ, दो : एक 'दोइ' नग (१४), 'दो' ईराकी बकसिए (१४)।
तीन : ए 'तीन' बस्त जिस···(१२)।
पंज : 'पंज पंज' हारके····(१४)।

सैं। सै : एक 'सै' सौ ब्याह····हमे सौ करै (१२), ग्यारह 'सै' आदमी असी भांति रषै (१३)।

अवल : एक 'अवल' फरज्यंदका पेट रहै (७)।
पहली : 'पहली' बाग लागै (१४)।
आठवै : 'आठवै' रोज जुमाराति आवै (१४)।

क्रिया

क्रियार्थक संज्ञा – णा – ना : 'परणनै' कौ असवार हुवा (५), पातिसाह 'देषणैं' सौ रहा (२)।

क्रियार्थक संज्ञा – ला : जब किसी उमरावका काम 'होला' होय (२)
प्रेरणार्थक रूप – आव् : घोड़े कौ षुरी 'करावैगे' (१४)।
प्रेरणार्थक रूप – लाव् : वारीया बेलियां नैना 'दिखलावो' (१३)।

विधिरूप, मध्यम पुरुष : प्रच्छन्न 'तू'के साथ प्रत्ययहीन रूप : तू ब मांग (८), तू कुछू मांग (६)।

वही, प्रच्छन्न 'आप'के साथ – इए। यए : तिसपर चीनी····'बषेरीयै' (३), तब मकड़ी माखीपर 'छोडिए' (६), सु 'दीजीए' (८), तब फेरि नजरि 'करिये' (१०), एक नेवाला 'उठायए' (१५), घुट एक ठंडा आव पानीकी 'लीजिए' (१५)।

वही, प्रच्छन्न 'तुम'के साथ–ओ। औ। औं (?)। यौ : षैर 'करो' (८),

'जीवो' पातिसाहू सलामति (८), कुछ साहिजादेका नाव खूब सा 'राखौ'(११), हिंदूई कौं पंडित नाम 'राषौ' (११), कि 'जीवो' पातसाह सलामति (११), ए उलमा भी अपना फाल 'देषौ' (११), हजरति आपना फाल 'देषौ' (११), कि आवलि पातिसाहि 'बोल्यौ' (११), ढूढिकै पैदा 'करो' (१२, १२), छिह सै छडीदार सोनेकी छडी लिये 'रहौ' (१३), बारीयां बेलियां नैनां 'दिषलावो' (१३)।

वही, प्रच्छन्न 'तुम'के साथ, भविष्यत् कालमें : –इयौ : लाष 'दीजीयौ' (१३), कोई मत 'पूछियौ' (१३)।

वही : अन्य पुरुष। संज्ञाके साथ – ऐ : 'मै' साहिजादा अनंत जाणै न 'पावै' (१३), लेणै न 'पावै' (१४), दुनियाकी पवन लगने न 'पावै' (१५), दुनियाका जनाव इसकी नजरि न 'आवै' (१५), दुनियाका दरख उसकी नजरि न 'आवै' (१५), जु इसकी नजरि 'पडै' (१६)।

वही, अन्यपुरुष, आशीर्वादके रूपमें – अंह : साहिजादा बरपुरदार उमर दराज 'होंह' (१०)।

कर्मवाच्य : भूतकाल, भूतकृदन्त रूप : ऐसी बीबी बिवानां पातसाह कौं 'ब्याही' (६)।

क्रिया : सामान्य वर्त्त०

संज्ञा : अन्य पुरुष एकवचन ऐ। अय :

[इन उदाहरणोंमें-से अनेक रूपमें सा० वर्त्तमान किन्तु अर्थमें सा० भूतकालके हैं।]

बादस्याही 'करै' (१) एक-एक रांति 'आवै' (१), एक बकरा हिरण सो 'लडावै' (१), तब पातिसाह तषत आइ 'बैठै' (२), तब पातिसाहको नजरि 'आवै' (२), आदमीका आदमी नजरि 'आवै' (२), मुहला लै पातसाह 'उठै' (२), तब सिकार सौं बहुत प्यास पातसाहका 'रहै' पै घोड़ै असवार हुआ न 'जाय' (३), सकर कौ आय माषी 'लगै' (३), सो मकड़ी''''मक्खी कौ 'पकड़ै' (३), ज्यौ हिरण कौ चीता 'पकड़ै' (३), तब पातिसाह बहुत षुसियाली 'होय' (३), सो ऐसी मकडीकी सिकार पातिसाह जी 'देषै' (३), जंगलकी सिकार सौं 'रहै' (३), तब ऐसी मकड़ीकी सिकार 'देषै' (३),

पाव उरि 'करै' (४), सिर नीचा 'रषै' (४), सोना रूपाकी जजीर सो औवे 'लटकै' (४), आपणै साहिब कौ यादि 'करै' (४), सरोसकी बंदगी 'करै' (४), तसबी पातिसाह चारचो पहर यादि 'करै' (४), चेहरा मुहराके खबरिदार 'होय' (४), अषत काजी यौ 'पढ़ै' (५), फेरि देटि उमेद 'रहै' (७), सोनेके तुके कुतब 'चलावै' (१६), जो 'पावै' लिए ही का (१४), आठवै रोज जुमाराति 'आवै' (१४), साहिजादा आह 'उतरै' (१४), उसके हाथ सौ कोई और लेणै न 'पावै' (१४), जंगलका ही 'देषै' (१६), पवन भी लगै सु जंगलकी ही 'लगै' (१६)।

–ए : पै तू 'दे' (५)।

वही, ह् + ऐ = है : 'है' हुंदा (४, ४), यक रोज फजरका वष्त 'है' (७) हमारे फालमें भी याही नाम 'है' (११), हमारी एक अरज 'है' (१२), ऐसी क्या अरज 'है' (१२), बहुत बंदिगीका फरजंद 'है' (१२), सायतका वक्त 'है' (१५)।

वही, –ता है–तीहै : ज्यौं रंगरेज चूनडीको बंद 'देता है' (२), तू ब क्या 'माँगती है' (८), नवबतौ 'बाजती है' (९), यह बात दरोग 'लगती है' (१२, १६)।

बहुवचन –ऐ : तब पलकों सौ रेसके डोरे लगे 'रहै' (२), एक दोह नग लगे 'रहै' (१४), बाहर छडीदार खड़े 'रहै' (१५)।

अपूर्ण वर्त्तमान

कोई उदाहरण नहीं है।

पूर्ण वर्त्तमान

एकवचन संज्ञा : तुम्हारे बेटेका नवल नाम 'दीया है' (११), जिस षुदाय नैं हमकों बेटा 'दीया है' (१२), कौण कौंण बांदगी खुदायकी 'की है' (१२)।

सम्भाव्य वर्त्तमान

एकवचन संज्ञा, अन्य – पु० इ।ई।या।ऐ :

[कुछ क्रियाएँ रूपमें सम्भाव्य वर्तमानकी किन्तु अर्थमे सम्भाव्य भूतकी हैं, जैसे सा० वर्त्तमानमें।]

जवै कीसी उमरावका काम होल। होय' (२), असलि पातसाहजादा 'होइ' तौ भला (४), तौ इल्म 'आवै' (६), तौ बिदा 'आनै' (६), कि पेट 'रहै' (७), बिवाना कौ फरज्यंद 'होइ' (७), बादसाहकी जौष 'आवै' (८), माहीना एक का लडिका 'होय' (१०), साहिजादा फेरि माहीनेका 'होई' तब नजरि करिये (१०), एक सै सौ ब्याह कुतुबके हमेसौं 'करै'.....तौ भी...(१२), जु कौडी लायक आदमी 'आवै' (१३), जब जिसको हाथ पहली बाग 'लागै' (१४)।

वही, –औ : कोई बड़ा गुनी 'आवौ' (१३)।

एकवचन उत्तम पु० –हुं।औं : तिसकौ लाष 'देहुं' (१३), मै क्या 'मागौ (८)।

एकवचन मध्यम पु० : प्रच्छन्न 'आप'के साथ –इयै।इए : पलकौके डोरे षैचि दिस तारै सो 'बाधीए' (२), तब सिकार काहे की 'देषीयै' (३), किसी कै काजी मुला कै आगै 'पढीए' तौ इल्म आवै (६), किसी कौ पंडितौ पास 'रखीए'...(६), तिसपर अभ्मात च 'लिखीए' (१४), दो ईराकी 'बकसिए' (१४), नीलक खरीद तिसका जीन 'करिए' (१४)। कचे सूत सौ नग जौ हार 'परोए' (१४), यह मेलि करि घोड़ेके गले मौं 'बांधिए' (१४), नग 'बाधीए' (१४)।

एकवचन संज्ञा। अन्य पुरुष पु० :–गा।इगा।अइगा।इएगा; स्त्री०–इगी। ईगी। ईएगी : साहिजादा षूब अजमति पैदा 'होइगा' (१०), जैसा पष 'होइगा' (१२), सो षुदाय.....ऐसा ब्याही भी 'देइगा' (१२), इससे भी आले-आले 'देगा' (१२), जहा लड़िकी सुरति जमाल 'होइगी' (१२), खूब फहीम 'होइगी' (१२), सूरति 'पाईगी' (१२), तौ फहीम कहा 'पाईएगी' (१२), अर फहीम 'पाईएगी तौ पख कहां 'पाईएगी' (१२), सांब अलाह ते 'होइगी' (१२)।

बहुवचन वही, पु० –अहिंगे। ऐंगे; स्त्री० –इगी : पर मुसकलि सौं पैदा 'होहिंगे' (१२), घोड़ंको खुरी 'करावैगे' (१४), तीन वस्त जिस लड़िकि मैं 'होइगी' (१२)।

एकवचन उत्तम पु०, पु० –ऊंगा : पीछै षाल 'काढूंगा' (१३)।

बहुवचन वही, वही –ऐंगे।अहिंगे : तब हम 'कहैगे' (११), हम बहुत ब्याह 'करैगे' (१२), मैं अवलि ब्याह तहा 'करैगे'...(१२), अवलि तही 'ब्याहैंगे' (१२), पीछै ब्याह और बहुतेरे 'करैगे' (१२), नग टूटि टूटि 'परैंगे' (१४), गरीब 'लूटहिंगे' (१४)।

सामान्य भूत

एकवचन पु० –आ।या : आहु षाना पेरोज षां सौ पैदा 'हुवा' (१), पातिसाह् देषणै सौ 'रह्या' (२), एक दिन तषतपर कयास करता 'हुवा' ज मेरे च्यारि बेटे (४), तब साहिब मिहरबान 'हुवा' (४), समरकंदके पातसाहका नालेर 'आया' (५), बहुत षुसाल 'हुवा' (५), खुदायको आदि करता 'हुवा' (५), परगनै कौं असवार 'हुवा' (५), षुदाय मिहरबान 'हुवा', (७), पातिसाहि 'पूछ्या' कि दाई क्यौ आई (७), पातिसाह् हुकम 'दिया' (८), हुकम खुदाइका ऐसा 'हुवाय' एक रोज गुजरांन 'हुवा' (१०), दूसरा रोज गुजरान 'हुवा' (१०) सायति मै गुसल 'किया' (१०), दाई कपडे पिन्हाइ ले ···पेस 'कीया' (१०), साहिजादा पातसाहिकी नजरि अैसा 'आया' (१०), पातसाह् नै हुकम 'कीया' (१०), साहिजादा राषा 'तब' पातसाहिकी नजरि साहिजादा ऐसा 'आया' (१०), अैसा 'देषा' (१०), साहिजादा बहुत अजमति पैदा 'हुआ' (१०), तब पड़िता आपणा सास्त्र 'देष्या' (११), तब साहिजादा कुतबदीन नवल नाम नजरि 'आया' (११), तब पातसाहने भी फाल देखा (११), तब पातसाह् कौ भी नवल नाम नजरि 'आया' (११), तुमारे फाल मै क्या नाम नजरि 'आया' (११), साहिजादा कुतबदीन नवल नाम 'दीया' (११), की षूब 'कीया' (११), एक ब्याह्का नांव क्यौं 'लीया' (१२, १२), कुतुबदी दिल्लीके घर पातसाह्जादा पैदा 'हुआ' (१२), एता जवाब बीबी बिवानां नै 'कीया' (१२), यह् जवाब पातिसाह् नै 'कीया' (१२), तिन्हौको पातिस्याह् हुकम 'कीया' (१३), एस होएँ 'लागा' (१४), खाना खाणै कौ 'बैठा' कुतबदीन नवल (१५), अवलि पुरान वाला 'बोला' (१५), कुतब० षाणौ षाय करि बाहरि 'आया' (९५) दूसरा घोड़ा उस ही रौसका फेरि करि 'आया' (१५), हाजिर 'हुवा' (१५)।

एकवचन स्त्री०-ई : तिन दरियावकी मछी 'मारी' (१), तिसकी निवै बरसकी उमर 'हुई' (२), षुब चुस्त बंदगी षुदायकी 'की' (४), पातसाह् कौ फेरि जवानी 'चढी' (५), जाय समरकंदके पातसाह्की बेटी 'ब्याही' (५), पेरोज साह् नै बीबी बिवानां 'ब्याही' (५), पैदा 'हुई' (६), दौडी ही 'आई' (७), दाई क्यों 'आई' (७), खुस खबरि 'ल्याई' (७), बीबी बिवानां कौ पेट की उमेद 'रही' (७), बदी 'करी' नांह् (८), ताज कुलह् की ताषी सिर पर 'राषी' (१०), तब बीबी बिवानां फेरि 'बोली' (१२), तब बीबी बिवानां 'बोली' (१२), तिन्हकौ य हकीकति 'फुरमाई' (१३)।

बहुवचनके लिए एक०का प्रयोग : आखैं की पलकौं गालैं सौं आई 'लगी' (२), तरीक बेद की कुरान की····पैदा 'हुई' (६)।

बहुवचन पु०-ए।अए : मन च्यंते कारिज 'हुए', कपड़े 'पिहने' (१०), साहिजादे कुं कपड़े 'पिन्हाए' (१०), उलमा वा पंडित 'बोले' (११), तब ताई पंडित व उलमा 'बोले' नाही (११), तब पंडित उलमाव 'बोले' (११), तब पातसाह 'बोले' (१२), ग्यारह सै आदमी कुतुब पास 'रखे' (१२), ग्यारह सै आदमी असी भाति 'रषै' (१३), हूयंदुगी तुरकी कुरांन भी हाजरि 'हुए' (१५), ईस ही रौस निवाले 'गिणे' (१५) महल सहर बाहिरे 'कराए' (१५)।

वही, –अते : पंडित 'कहते' नाही (११)।

आदरार्थक बहुवचन-ए।ऐ : पेरोज बादिसाह दिल्ली 'आऐ' (६), बादसाह तख्तपर आइ 'बैठे' (७), पातसाह उमराव सौं 'बोले' (१०), पातसाहि 'बोले' (११), पातसाहि 'लागे' पूछने (११), पातिसाहि कहणै 'लागै' (१२), तब पातसाह 'बोले' (१२), पातसाह 'बोले' (१२, १२), आप अंदर षाणां षाणैं कुं 'आए' (१५), आपणे महल 'आए' (१५)।

अपूर्ण भूत

कोई उदाहरण नही है।

पूर्ण भूत

बहुवचन पु० –अए थे : दोइ लाख रुपैये कुरबान 'हुवए थे' (९)

वर्त्तमान कृदन्त

एकवचन पु० –ता : एक दिन तख्त पर क्या स 'करता' हुवा····(४), षुदाय को आदि 'करता' हुवा (५), ऐसी बंदिगी 'करतां करतां····' (७), खुश 'करावते' (१५), नंग 'लुटावते' (१५)।

वही, स्त्री० –ती : यह बात दरोग लगती है (१२), याह बात दरोग लगती है (१२)।

भूत कृदन्त

एकवचन पु० –या : कुतुब षुब जतन सौं 'राष्या' चाहिए (१२)।

वही, स्त्री० –ई : ऐसी बीबी निवानां पातसाह कौं 'ब्याही' (६), 'दौड़ी' ही आई (७)।

बहुवचन पु० ए : तब पलकों सौं रेस के डोरे 'लगे' रहै (२), एक=दोइ नग 'लगे' रहै (१४), छडीदार बाहरी 'खड़े' रहै (१५)।

पूर्वकालिक कृदन्त

ई, इ : आंषै की पलकौ गालै सौ 'आई' लगी (२), तब पातिसाह तख्त 'आइ' बैठे (२), सेहुरा सै 'बाधि' पातिसाह परणनै कौ असवार हुवा (५), दिल्ली 'आइ' फेरि पातसाह षुदाय की बंदिगी करने लागे (७), कुरबान 'करि' खैर करो (६), सिर मैं पानी 'डालि' कपड़े पिहने (१०), दाई कपडे 'पिन्हाइ' पेस किया (१०), तसलीम 'करि' बिवानां कहा (११), सो षुदाय कुतुब० को ऐसा 'ब्याही' देगा (१२), नीलक खरीद 'की' तिसका जीन करिए (१४), 'टूटि टूटि' परैगे (१४), 'जाई'····षाणा षाणै कौ बैठा (१५)।

ऐ, ए : मुहला 'से' पातिसाह उठै (२), दाई कपडे पिन्हाइ 'ले'····पेस कीया (१०), साहिजादा हरम खानै मै 'ले' गए (११), आप खुसाल 'होय'···· आई उतरै (१४)।

य : तब गिलम ऊपर ऊजली चादरि 'बिछाय'····(३), सकर कौ 'आय' माषी लगै (३), 'जाय' समरकंद के पातसाह की बेटी ब्याही (५)।

बिना प्रत्ययके : पातसाह मौ नाम 'देकर'····(११)।

वर्त्तमान कृदन्त करि, कै, कर : मकडी दौड़ि 'कै' मक्खी कौ पकडै (३), साहिजादे कुं न्हलाइ 'कै' कपड़े पिन्हाइ (१०), कुतुबुदीन नवल का एक ब्याह 'ढूंढि' कै पैदा करो (१२), 'ढूंढि' करि पैदा करौ (१२), येह मेलि 'करि करि' घोड़े के गले मौ बांधीए (१४), कुतुब० षाणा षाय 'करि' बाहरि आया (१५), दुसरा घोड़ा फेरि 'करि' उस ही रौस का आया (१५)।

मिश्र क्रिया

असवार 'हुवा न जाय' (३), 'करणै लागा' (४), 'करने लागे' (७), 'करनै लागे' (७), 'करणैं लागे' (७), पातसाह 'लागे पूछणै' (११), हरम पातिसाह 'कहणै लागै' (१२), 'ब्याही देगा' (१२), 'राष्या चाहिए' (१२), 'जाणै न पावै' (१३), 'करणै न पावै' (१२), 'लेणै न पावै' (१४, १४), एक दोइ नग 'लगे रहै' (१४), रास 'होणै लागा' 'लगने न पावै' (१६)।

अव्यय : अवधारण वाचक

-औ, -औं : तसबी पातिसाह 'चारयौ' पहर आदि करै (४), 'च्यारौ' ही हकीकति पैदा हुई (६)।

ई : 'सोई' नाम षूब (११)।

च : तिस पर अभ्रात 'च' लीषीए (१४)।

तौ : अब 'तौ' लाषौ (९), अलह् 'तौ' इससे भी आले आले देगा (१२)।

ही : च्यारौ 'ही' ह्कीकति पैदा हुई (६), पह्लै 'ही' पेट रहै (७), दौडी 'ही' आई (७), ह्मारे फाल मैं भी या'ही' नाम है (११), जो पावै तिस 'ही' का (१४), किस 'ही' के हाथ से.... (१४), जंगल का 'ही' जनावर जंगल का 'ही' दरष्त जंगल का 'ही' देषै (१६), पवन भी लगै सु जंगल की 'ही' लगै (१६)।

भी : ए उलमा 'भी' अपनां फाल देषौ (११), ह्जरति 'भी' अपना फाल देषौ (११), तब पातसाह् नै 'भी' फाल देखा (११), तब पातसाह् कौं 'भी' नजरि आया (११), ह्मारे फाल मै 'भी' याही नाम है (११), तौ 'भी' किसी बात की कमी नाही (१२)।

अव्यय : स्थिति वाचक

उरि : पाव 'उरि' करै (४)।

नीचा : सिर 'नीचा' रखै (४)।

औधे : पातस्याह् 'औधे' लटकै (४)।

पह्लै, : 'पह्लै' ही एक अवल फरज्यंद का पेट रहै (७)।

आगै : तब पातसाह् की नजरि 'आगै' राषा (१०)।

अवलि : कि 'अवलि' पातिसाह् बोल्यो (११), पै 'अवलि' ब्याह्....तहां करैगे (१२), कुतुब० को 'अवलि' तही ब्याहैंगे (१२), 'अवलि' पुरानवाला बोला (१५)।

पीछै : 'पीछै' ब्याह् और बहुतेरेक रैगे (१२), 'पीछै' खाल काढूंगा (१३)।

उपरांति : सौ मुहुर 'उपरांति'.... (१३)।

अव्यय : स्थानवाचक

तहां : पै अवलि ब्याह 'तहां' करैगे (१२), अवलि 'तहीं' ब्याहैंगे (१२)।

जहां : 'जहां' लड़िकी सुरति जमाल होइगी (१२), 'जहां' तक षूब ब्याह्... पैदा करौं (१२)।

कहां : तौ फहीम 'कहा (कहां) पाईएगी (१२), अर फहीम पाईएगी तौ पष 'कहां' पाईएगी (१२)।

अनंत : पै साहिजादा 'अनंत' जाणै न पावै (१३)।

अव्यय : कालवाचक

यो : 'यो' गिणी पाणी की घुटै (१५)।

हमेसौं : एक सै सौ ब्याह 'हमेसौ' करै (१२)।

फेरि : पातसाह कौ 'फेरि' जवानी चढी (५), दिल्ली आइ 'फेरि' पातसाह षुदाइ की बंदिगी करने लागे (७), 'फेरि' पेटि उमेद रहै (७), साहिजादा 'फेरि' माहीनेका होई (१०), 'फेरि'.... (१२, १३, १४, १५)।

तब : 'तब' पलको सौ रेस के डोरे लगे रहैं (२), 'तब' पातिसाह तषत आइ बैठे (२), 'तब' पातिसाहिको नजरि आवै (२), 'तँब' सिकार सौ बहुत प्यास पातसाह का रहै (३), 'तब' सिकार काहे की देषीयै (३), 'तब' गिलम ऊपर....(३), 'तब' मकडी माष्यौ पर छोडिए (३), 'तब' पातिसाह बहुत षुसियाली होय (३), 'तब' ऐसी मकडीकी सिकार देषै (३), 'तब' साहिब मिहरबान हुवा (४), 'तब' पातिसाह की नजरि आगै राषा (१०), 'तब', नजरि करिए (१०), 'तब' पंडितौ अपणा सास्त्र देष्या (११), 'तब' साहिजादा कुतब....नाम नजरि आया (११), 'तब' हम कहैंगे (११), 'तब' पातसाहनै भी फाल देषा (१), 'तब' ताई पंडित ब उलमा बोले नाही (११), 'तब' पंडित उलमा ब बोले (११), 'तब'....(१२, १२, १२, १२, १२, १३, १३)।

जब : 'जब' किसी उमरावका काम होला होय....(२), 'जब' जिसकौ हाथ....(१)।

अब, ब : तू 'ब' मांग (८), 'अब' तौ लाषौ (९), 'अब' मोती छाडीयै है (९)।

अव्यय : रीतिवाचक

ज्यौं, जौं : 'ज्यौ' रंगरेज चूनडी कौ बंद देता है (२), 'ज्यौ' हिरण चीता कौ पकडै (३), नग 'जौ' हार पिरोए (१४)।

यौं : अषत काजी 'यौ' पढ़ै (५)।

क्यौं : दाई 'क्यौं' आई (७), 'क्यौ' यारौ 'क्यौं' बोलते नाही (११, ११), एक ब्याह का नांव 'क्यौ' लीया (१२, १२)।

सैं : सेहुरा 'सै' बांधि परणनैं को असवार हुवा (५)।

अव्यय : संयोजक

या : 'या' मुसकलि 'या' सान सांब अलाह् ते होइगी (१२)।

परि, पैं, पै, पर : 'पर' मुसकलिसौं पैदा होहिंगे (१२), 'पै' कुतुब० षूब जतन सौ राष्या चाहिए (१२), 'पै' साहिजादा अनंत जाणै न पावै (१३), 'प' घोड़ै असवार हुवा न जाय (३), 'परि' असल···कोई नही (४), 'पै' तू दे (५), 'पै' अवलि ब्याह् ··(१२)।

तौ : होइ 'तौ' भला (४), 'तौ' बिछा आवै (६), 'तौ'····(१२, १२, १२, १३)।

जु, ज : 'ज' मेरे च्यारि बेटे (४), किस वासतै 'जु' मेरे च्यारि बेटे··· (१६), दुनियां की बतास····न लागनै पावै 'जु' दुनियाका जनावर····नजरि न आवै (१६)।

सु, सो : 'सु' बीबी बिवानां सुरति जमाल (६), 'सो' ऐसी मकड़ी (३), 'सो' किस रौस बकसिए (१४)।

अर : 'अर' च्यारी पहर····होय (४), 'अर' फहीम पाईएगी (१२)।

कि : 'कि'····(६, ७, ८, १०, १०, ११, ११, ११, ११, ११, ११, ११, १२, १२, १२, १३)।

अव्यय : स्वीकार-निषेधवाचक

हां : 'हां (११)।

न, ना, नही, नांह, नाही : कोई 'नहीं' (४), बदी करी 'नांह्' (८), 'ना' (११), पंडित कहते 'नाही' (११), पंडित कहते नाही (११), बोले 'नाही' (११), किसी बातकी कमी 'नाही' (१२), 'न' पावै (१४), कुदरत नाही (१४),।

मत : साहिजादै को कोई 'मत' पूछियौ (१३)।

■

तुलनात्मक विवेचन

विशेष : कु० = कुतबशतक; वा० = कु० की वार्त्तिक टीका (जिसकी प्रति सं० १७२२ की है) ।

संज्ञा : एकवचन पु० (अविकृत रूप)

कु० तथा वा० दोनोंमें शब्द अपने प्रत्ययहीन रूपमे प्रयुक्त हुए मिलते है ।

कु० में कही-कही पर अकारान्त शब्दोके साथ स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमे -उ प्रयुक्त मिलता है, यद्यपि केवल कर्त्ता और कर्म कारकोमे । वा० में यह नहीं है ।

कु० मे केवल पद्योमें—और वह भी दो-चार स्थानोंपर—अकारान्त शब्दोंमें -आ। आंह स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमे लगा मिलता है । वा० मे यह भी नही है । हो सकता है कि पद्य उसमे नही आते हैं, इसलिए यह प्रत्यय उसमे न मिलता हो । कु० में यह प्रत्यय स्त्रीलिंगमे भी इसी प्रकार मिलता है ।

कु० मे केवल पद्योमें कही-कही पर – इयां भी स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें लगा हुआ मिलता है । वा० मे यह नही है । वा० मे कोई पद्य नहीं आता है, इसीलिए सम्भव है यह प्रत्यय भी न मिलता हो ।

संज्ञा : एकवचन स्त्री० (अविकृत रूप)

कु० तथा वा० दोनोंमें शब्द अपने प्रत्ययहीन रूपमें प्रयुक्त हुए मिलते हैं ।

कु० में अकारान्त शब्दोंके साथ स्वार्थिक प्रत्ययके रूपमें – इयां और ईकारान्त शब्दोंके साथ उसी प्रकार – आं। आंह जुड़ा हुआ मिलता है । वा० में यह नहीं है ।

संज्ञा : बहुवचन पु० (अविकृत रूप)

कु० में अकारान्त शब्दोंका बहुवचन –आ। आ लगाकर बनाया गया है । दक्खिनी हिन्दीमे प्रत्यय केवल –आ मिलता है, –आ नही। इसलिए यह असम्भव नहीं है कि कु० में भी प्रत्यय –आं ही हो, जिसका अनुनासिकका बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें भूलसे छूट गया हो । वा० में यह प्रत्यय नहीं मिलता है ।

कु० में कभी-कभी अकारान्त शब्दोंका बहुवचन – ह् प्रत्यय लगाकर भी बनाया गया मिलता है।

अकारान्त फ़ारसी शब्दोंका बहुवचन कु० तथा वा० दोनोंमें कभी-कभी –आन प्रत्यय लगाकर बनाया गया है।

आकारान्त शब्दोंका बहुवचन दोनों कु० तथा वा० में –आ के स्थानपर –ए रखकर बनाया गया है।

बहुवचनके लिए एकवचन रूपका प्रयोग कही-कही पर कु० तथा वा० दोनोमे मिलता है।

संज्ञा : बहुवचन स्त्री० (अविकृत रूप)

कु० मे अकारान्त शब्दोके बहुवचन –या। या लगाकर बनाये गये हैं। वा० में इसके उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमें –या नही मिलता है –यां ही मिलता है, इसलिए असम्भव नही है कि कु० में भी प्रत्यय –यां रहा हो, जिसका बिन्दु प्रतिलिपि क्रियामे कही-कहीं पर छूट गया हो।

इसी प्रकार कु० मे अकारान्त शब्दोके बहु० –इया। –इया लगाकर भी बनाये गये हैं, जो वा० मे नही हैं। दक्खिनीमे –इया के उदाहरण नहीं मिलते हैं, –इयां के ही मिलते है। इसलिए असम्भव नहीं है कि कु० में भी प्रत्यय –इया ही रहा हो, जिसका बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें कहीं-कही पर छूट गया हो।

कु० में कही-कही पर अकारान्त शब्दोंके बहुवचन –इं लगाकर भी बनाये गये हैं। वा० में इसके उदाहरण नहीं हैं। यही –इं बादमें –एं के रूपमें विकसित हुआ है।

वा० में अकारान्त शब्दके बहु० –औ। औं लगाकर बनाये गये हैं, जो कि कु० मे नही है। यह परवर्ती –ओं से तुलनीय है।

कु० तथा वा० दोनोंमें इकारान्त। ईकारान्त शब्दोंके बहुवचन –यां जोड़कर बनाये गये है।

कु० में पद्योंमे ही कभी-कभी –इ। ईकारान्त शब्दोंके बहुवचन –यां के बाद स्वार्थिक –ह और जोड़कर बनाये गये है। वा० में इसके उदाहरण भी नहीं हैं।

कु० तथा वा० दोनोंमें कभी-कभी बहुवचनके स्थानपर एकवचनका ही प्रयोग हुआ है।

संज्ञा : एकवचन (विकृत रूप)

कु० तथा वा० दोनोमें आकारान्त पु० शब्दोंका –आ कहीं-कहीं पर –अइ। ऐ में परिवर्तित हुआ है, अथवा कु० तथा वा दोनोमे यह –आ। –ए में परिवर्तित हुआ है। इन दोनोंमें से –अइ। ऐ प्रयोग प्राचीनतर लगता है, जो घिसकर पीछे –ए हो गया। फारसी-अरबी लिपिमे तीनों ध्वनियोंके एक प्रकारसे लिखे जानेके कारण पुरानी दक्खिनीसे इस समस्यापर कोई प्रकाश नही पड़ता है, क्योंकि पुरानी दक्खिनीकी समस्त रचनाएँ फ़ारसी-अरबी लिपिमें मिलती हैं।

कभी-कभी दोनोमें आकारान्त शब्द प्रत्ययहीन रूपमे ही प्रयुक्त हुए है।

विकृत रूप-निर्माणको यह प्रवृत्ति दोनोमें आकारान्त शब्दों तक ही सीमित है।

संज्ञा : बहुवचन (विकृतरूप)

कु० में अकारान्त पु० शब्दोंका बहुवचन –आ। आं लगाकर बना है। वा० मे –आं ही प्रयुक्त हुआ है। दक्खिनीमे भी –आ का ही प्रयोग मिलता है। इसलिए यह ज्ञात होता है कि कु० मे भी –आं का ही प्रयोग हुआ होगा, जिसका अनुनासिकका बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें छूटकर निकल गया होगा।

कु० में अकारान्त पु० शब्दोंका बहुवचन कही-कहीं पर –ह। हु जोड़कर बनाया गया है। कु० की यह प्रवृत्ति बहुवचनके अविकृत रूप-निर्माणमें भी ऊपर देखी जा चुकी है।

कु० में अकारान्त स्त्री० शब्दोंके बहुबचनके उदाहरण नही हैं। वा० में स्त्री० अकारान्त शब्दोंमें एं। औ जोड़कर विकृत रूप बनाये गये हैं।

कु० मे इ। ईकारान्त शब्दोमें –न। नु लगाकर विकृत रूप बनाये गये हैं, जबकि वा० मे –यौं लगाकर बनाये गये हैं। दक्खिनीमे वे –न तथा –यों दोनों लगाकर बने हैं।

संज्ञा : लिंग निर्माण

पु० अकारान्त। आकारान्त शब्दोंके स्त्री० कु० तथा वा० दोनोंमें –अ। आ के स्थानपर –ई लगाकर बनाये गये है।

कु० में इकारान्त। ईकारान्त शब्दोंके स्त्री कभी इकार। ईकारको अकार-में परिवर्तित कर और कभी उन्हें बिना परिवातत किये नि। नी। न जोड़कर बनाये गये हैं। वा० मे इसके कोई उदाहरण नही हैं। दक्खिनीमें भी दोनों प्रकारसे स्त्रीलिंग-निर्माण हुआ है।

संज्ञा : प्रथमा विभक्ति

कु० में एकवचन तथा बहुवचन अकारान्त । आकारान्त शब्दोंकी प्रथमा-की विभक्ति –इ । इं है, ईकारान्त शब्दोंमें भी यही विभक्ति लगी है, केवल कही-कहीपर आकारान्त शब्दोमें इसके स्थानपर –ए । एं की विभक्ति लगी मिलती है । वा० मे ये विभक्तियाँ नही मिलती है । केवल एक स्थानपर उसमें अकर्मक क्रियाके साथ अकारान्त स्त्री० शब्दके आकारको –ऐ में परिवर्तित कर विभक्ति युक्त रूप बनाया गया है, अन्यथा वा० में सर्वत्र इस कार्यके लिए विकृत रूपके साथ नै । नै परसर्गका प्रयोग हुआ है । दक्खिनीमे 'ने' का ही प्रयोग मिलता है, जो नै । नै का घिसा हुआ रूप ज्ञात होता है । अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि खडी बोलीमे नै । ने का प्रयोग बादमे प्रचलित हुआ, पहले नही था । कु० से इस धारणाका समर्थन होता है । –इ । इं, –ऐ । ऐं, ए । एं मे-से अधिक प्रामाणिक कदाचित् सानुनासिक बिन्दु युक्त रूप है, जिसका बिन्दु प्रति-लिपि-क्रियामे छूट गया है। इनमें-से अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन –इ । इं रूप लगता है जो कि क्रमशः ए । ऐं ए । एं में बदल गया है ।

कु० तथा वा० दोनोमें एकवचन तथा बहुवचनमें विभक्ति युक्त अर्थोमें निर्विभक्तिक रूप प्रयुक्त हुआ है । दक्खिनीमें भी यह प्रवृत्ति मिलती है ।

द्वितीया विभक्ति

कु० में द्वितीयाकी दो प्रकारकी विभक्तियाँ मिलती हैं : एक० । बहु० में –कुं, और एक वचनमें –नु तथा बहुवचनमें –नइ । वा० में –कौं । को मिलती है । केवल एक स्थानपर उसमें –कै विभक्ति भी मिलती है । दक्खिनीमें भी –कुं । कूं विभक्ति ही मिलती है । अतः –कौं । को –कुं । कूं का ही परवर्ती रूप ज्ञात होती है । –न और –नइके प्रयोग अब केवल पंजाबी तथा राज-स्थानीमे रह गये हैं । ऊपर हमने देखा है कि कु० में –नै । नैं परसर्गोंका प्रयोग प्रथमामें नहीं मिलता है । इसलिए यह असम्भव नहीं है कि पुरानी खड़ी बोलीमें द्वितीयामें एक० –नु और बहुवचन –नइ का ही प्रयोग रहा हो, जिसका स्थान क्रमश ब्रज० –कुं । कूं, और –कौं । कौ ने ले लिया हो जब उसमें –नै । नै का प्रयोग प्रथमामें होने लगा हो ।

तृतीया विभक्ति

कु० मे दो कुलोंकी विभक्तियाँ मिलती हैं : –स कुलकी –सुं । सूं । सौं तथा –थ । त कुलकी –थी । ती तथा –तइं । तइ । वा० में –स कुलकी –सौं

विभक्ति ही सामान्यतः प्रयुक्त हुई है, केवल एक स्थानपर –त कुलकी –ते प्रयुक्त हुई है। दक्खिनीमे भी दोनो कुलोंकी –सूं । से तथा –थें । थे और –तें । ते प्रयुक्त मिलती हैं।

कु० मे कही-कही अकारान्त शब्दोका अकार –ए मे बदलकर ही तृतीयाका काम लिया गया है। वा० में यह नहीं है।

विभक्ति युक्त अर्थोंमे निर्विभक्तिक प्रयोग कु० तथा वा० दोनोंमे मिलते हैं।

चतुर्थी विभक्ति

कु० मे चतुर्थीकी विभक्तियाँ –कुं और –कुं ताई है जो शब्दोंके अविकृत रूपके साथ लगी है, वा० मे वे –कुं तथा –कौ है। दक्खिनीमे –कू । को तथा –तइं । ताईं विभक्तियाँ मिलती हैं। –कौ और –को । –कु के परवर्ती विकास ज्ञात होते हैं।

कु० मे क्रियार्थक संज्ञाओंको –आ>–अइ युक्त विकृत रूप मात्रमें प्रयुक्त किया गया है। आधुनिक –ए रूप इसीका विकास है।

पंचमी विभक्ति

कु० मे पचमीके लिए –हुतइं । हुतइ परसर्गका प्रयोग हुआ है, जो वा० और दक्खिनीमे नही है। 'त' परिवारकी –तइ तथा –थी भी कु० मे पायी जाती हैं, जो कि तृतीयाकी –तइ और –थी से अभिन्न लगती है। वा० मे इनमे-से –थी ही मिलती है। दक्खिनीमे भी –थी की समानान्तर थे। थे है, यद्यपि यह असम्भव नहीं है कि पुरानी दक्खिनीमे वह –थी ही रही हो, और क्योंकि फारसी लिपिमे –थी तथा –थे एक ही प्रकारसे लिखे जाते थे, इसलिए –थी को भी –थे पढ लिया गया हो। –तइ और –थी –हुतइं । हुतइ से विकसित ज्ञात होते है।

वा० में 'स' परिवारकी –सौ भी प्रयुक्त हुई है, जो कि तृतीयाके –सौं से तुलनीय है। कु० मे यह नही है। दक्खिनीमें यह –सूं के रूपमें जिस प्रकार तृतीयामें पायी जाती है, उसी प्रकार पंचमीमें भी।

कु० में एक स्थानपर विभक्तियुक्त अर्थमें निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलता है।

षष्ठी विभक्ति

कु० तथा वा० में षष्ठीकी विभक्तियाँ 'का' परिवारकी हैं। केवल कु० के पद्योंमें –हुंदा परिवारकी विभक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं, जो न वा० में मिलती हैं

और न दक्खिनीमें। यह 'हुंदा' उस प्राचीनतर भाषा रूपका अवशेष प्रतीत होता है जिससे पंजाबी और खड़ी बोलीके समान तत्त्व विकसित हुए होंगे। पंजाबीमे यह –दा के रूपमें अभीतक सुरक्षित है। इस –हुंदा का प्रयोग उस खड़ी बोली कवितामें भी बहुतायतसे मिलता है जो राजस्थानमें बहुत पीछे तक रची गयी है।

कु० में –का का विकृत रूप –कइ। के है, वा० में –कै। कै। के है, दक्खिनीमें –के मात्र है। ऐसा ज्ञात होता है कि विकासका क्रम कइ—>कै। कै—>के है।

कु० में स्त्री० बहु० में –कीयां। क्या विभक्ति है, दक्खिनीमें भी –कियां के रूपमें मिलती है। वा० मे –की का ही प्रयोग स्त्री० बहु० में भी हुआ है, जैसा आधुनिक खड़ी बोलीमें मिलता है। वा० की यह प्रवृत्ति कु० की तुलनामें परवर्ती ज्ञात होती है।

कु० में एक स्थानपर –हिं विभक्तिका भी प्रयोग मिलता है, जो न वा० में है और न दक्खिनी में। यह –हिं अवधारण वाची अव्यय भी हो सकता है, उक्त उदाहरणमें ऐसा ज्ञात होता है, इसलिए यह विभक्तिके रूपमें सन्दिग्ध है।

कु० तथा वा० दोनोंमें विभक्तियुक्त अर्थोमें निर्विभक्तिक प्रयोग भी मिलते हैं। दक्खिनीमे इनकी स्थिति ज्ञात नही है।

सप्तमी विभक्ति

कु० में अकारान्त शब्दोंका सप्तमीयुक्त रूप अकारको –इ। अइ में परिवर्तित करके बनाया गया है। वा० में यह विभक्ति –इ। –ऐ। –ऐं के रूपमें मिलती है। दक्खिनीमें सर्वत्र –ए का प्रयोग हुआ है। विकास क्रम कदाचित् है –अइ—>-ऐ। –ऐं—>ए। पुरानी दक्खिनीमें भी यदि –अइ रहा हो और उसे फ़ारसी लिपिमे लिखे जानेके कारण –ए पढ़ा गया हो, तो आश्चर्य न होगा।

कु० में आकारान्तका एक ही उदाहरण मिलता है और वह पद्यमें है। उसमें -आ –ए में परिवर्तित हो गया है और उसके अनन्तर –हु स्वार्थिक लगा दिया गया है। वा० में आकारान्त शब्दोंके उदाहरण नहीं है।

कु० में कभी-कभी अकारान्त। आकारान्त शब्दोंको हकारान्त करके उनमें –आं का स्वार्थिक प्रत्यय भी लगाया गया है। वा० में इसके उदाहरण नहीं हैं।

इनके अतिरिक्त कु० और वा० दोनोमे 'में' और 'पर' परिवारोके परसर्ग पाये जाते है। कु० में –मे परिवारके परसर्ग हैं –मइ। मि। मै तथा महि। मँहि। माहि; वा० मे इस परिवारके परसर्ग है –मै। मैं। मे तथा मही। इनके अतिरिक्त वा० में –मो। मौ। भी मिलते है। दक्खिनीमें उपर्युक्त परसर्गोमें-से –मे तथा मंह। माही हैं। प्रथमके विकासका क्रम ज्ञात होता है –मइ—>मै। मैं—>मे। मो। मौ का आगमन ब्रजभाषाके प्रभावसे हुआ ज्ञात होता है।

कु० मे 'पर' परिवारके परसर्ग हैं –परि। पइ तथा उप्परइ। उप्परि। उप्पर। वा० मे हैं –पर तथा –ऊपर मात्र। दक्खिनीमे भी –पर तथा –ऊपर ही मिलते है। विकासका क्रम कदाचित् है –परि—>पर तथा उप्परइ। उप्परि—>उप्पर—>ऊपर।

विभक्ति-युक्त अर्थोंमें निर्विभक्तिक प्रयोग कु० तथा वा० में समान रूपसे पाये जाते हैं। दक्खिनीमे भी ये मिलते है।

संबोधन विभक्ति

आकारान्त एक० शब्दोंके विभक्ति-युक्त उदाहरण नही है। वा० में अकारान्त बहु० शब्द ओकारान्त हो गये हैं। कु० मे उनमें – आन जुड़ गया है, जो फ़ारसीसे आया हुआ लगता है। आकारान्त शब्द कु० तथा वा० दोनों-में एकारान्त हो गये हैं।

स्वतन्त्र संबोधनात्मक अव्ययोके रूपमें कु० में प्रयुक्त हैं पु०। स्त्री० में 'अबे'। 'बे' तथा स्त्री० मे 'रि'। वा० मे प्रयुक्त है 'ए'। दक्खिनीमे 'रि' का पु० 'रे' है और 'ऐ' के रूपमे 'ए' है। 'अबे'। 'बे' फारसीसे आये हैं। 'ए' तथा 'ऐ' में प्राचीनतर 'ए' लगता है जो आकारान्त शब्दोके –आपके स्थान-पर आता है। पुरानी दक्खिनीमें भी यदि 'ए' ही रहा हो, जिसे फ़ारसी-अरबी लिपिके कारण 'ऐ' पढ़ा गया हो, तो आश्चर्य न होगा।

शब्दोंके निर्विभक्तिक रूप भी कु० तथा वा० दोनोंमें प्रयुक्त हुए हैं।

मिश्र विभक्तियाँ

कु० में कहीं-कहींपर मिश्र विभक्तियोंके भी उदाहरण मिलते हैं; वा० में ऐसे उदाहरण नही है।

सर्वनाम : उत्तमपुरुष

कु० में कर्ता एक० में कर्तृवाच्यका 'हूं' तथा कर्मवाच्यका 'मइ। मइं' दोनो मिलते हैं, वा० मे केवल 'मैं' का प्रयोग मिलता है। दक्खिनीमें भी 'मइं। मैं' ही मिलता है। 'हूं' की परम्परा प्राकृत और अपभ्रंशकी है और प्राचीनतर है। कर्मवाच्यके रूपोंमे विकास क्रम कदाचित् होगा 'मइ'—>'मइं'—>'मैं'। पुरानी दक्खिनीमे यदि 'मइ' ही रहा हो, 'मै' न रहा हो, तो आश्चर्य न होगा, क्योकि फ़ारसी-अरबी लिपिमें दोनो एक ही प्रकारसे लिखे जाते है।

कु० मे एक० के कर्म—सम्प्रदानके रूप है 'मुझइ' तथा 'मेरे कुं'। वा० में इसके उदाहरण नही है। दक्खिनीमें ये 'मुझे' तथा 'मेरे कूं' रूपमे मिलते हैं। पुरानी दक्खिनीमे भी ये यदि 'मुझइ' और 'मेरे कुं' रहे हो तो आश्चर्य नही होगा क्योकि ये भी फ़ारसी-अरबी लिपिमे उसी प्रकार लिखे जाते हैं जैसे 'मुझे' और 'मेरे कूं'। विकास-क्रम कदाचित् है 'मुझइ'—>'मुझे'।

कु० मे एक० सम्बन्धका रूप एक० विशेष्यके साथ है 'मेरइं' तथा बहु० विशेष्यके साथ है 'मेरे'। वा० में केवल बहु० विशेष्यके साथका 'मेरे' रूप मिलता है। दक्खिनीमे भी 'मेरे' रूप ही मिलता है। या तो यह है कि एक० और बहु० विशेष्यका यह अन्तर पहले प्रचलित था, बादमें उठ गया और या तो यह है कि दोनोंका कार्य एक ही है, उनमें केवल रूप-भेद है। यदि पिछला अनुमान सही हो तो विकास-क्रम कदाचित् होगा 'मेरइं'—>'मेरे'। दक्खिनीमें जो 'मेरे' है, असम्भव नही कि वह 'मेरइ' रहा हो और फ़ारसी-अरबीमें दोनों-के एक प्रकारसे लिखे जानेके कारण 'मेरे' पढ़ा गया हो।

कु० में एक० सम्बन्धमे 'मैं' के विकृत रूप 'मुज्झ' तथा 'मो' बिना किसी विभक्तिके भी मिलते है, जो वा० में नहीं है। दक्खिनीमें 'मुझ'। 'मुंज' मिलता है 'मो' नही। 'मो' का यह प्रयोग ब्रजभाषा साहित्यमें ही अब मिलता है। कु० में ये दोनों प्रयोग केवल पद्यों तक सीमित हैं और हो सकता है कि प्राचीनतर भाषा – परम्पराके अवशेष-मात्र हों।

बहु० में कु० तथा वा० दोनोंमें 'हम' के रूप मिलते है। अविकृत रूप 'हम' दोनोंमे कर्त्ता० और कर्म० के लिए मिलता है। कर्त्ता० के विकृत रूपके लिए कु० में 'हमइं' मिलता है, जो संज्ञाके समानान्तर रूपसे तुलनीय है। वा० तथा दक्खिनीमें –'इ' युक्त यह रूप नही मिलता है। कर्म० का विकृत रूप कु० में नही मिलता है, वा० में वह है 'हमकों', जो दक्खिनीके 'हमन कूं'

से तुलनीय है। सम्बन्धका एक० रूप कु० तथा वा० दोनोंमें पुं० 'हमारा' स्त्री० 'हमारी' है, जिसमे विशेष्य एकवचन रहता है, और 'हमारा' का बहुवचन रूप कु० में 'हमारे' है, जिसमे विशेष्य बहु० रहता है। वा० में इसका उदाहरण नही है। इसी प्रकार वा० मे 'हमारा' का विकृत रूप 'हमारे' है, जिसका उदाहरण कु० मे नही है। दक्खिनीमे भी ये सभी रूप मिलते हैं, और इनके सम्बन्धमें कोई अन्तर उसमे भी नही है। विकासका क्रम होगा 'हमइं'—>'हमें'।

सर्वनाम : मध्यम पुरुष

कु० मे एक० अविकृत कर्त्ताका रूप 'तु। तूं। तू' है, वा० मे केवल 'तू' है, दक्खिनीमे 'तू। तू' है। 'तु' तथा 'तू' फारसी-अरबी लिपिमे एक ही प्रकारसे लिखे जाते है, इसलिए यदि पुरानी दक्खिनीमे भी 'तु' और 'तू' दोनो रूप प्रचलित रहे हों तो आश्चर्य न होगा। विकासका क्रम कदाचित् होगा 'तु'—>'तूं'—>'तू'।

एक० विकृत कर्त्ता० का रूप कु० में 'तइ। तइं' है। वा० में इसका उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमें इसके स्थानपर 'तूने' प्रयुक्त होता है। 'तइ' तुलनीय है ऊपर आये हुए 'हमइं' तथा संज्ञाके समानान्तर रूपसे। असम्भव नहीं कि 'तइ' रूप कु० मे 'तइं' के बिन्दुके प्रतिलिपि-क्रियामे छूट जानेके कारण मिलता हो। यही 'तइं' बादमे 'तै' के रूपमें विकसित हुआ है।

एक० सम्बन्धके रूप कु० मे 'तेरा' और 'तुझ' हैं, जो इसी प्रकार दक्खिनीमे भी हैं। वा० में इनके उदाहरण नही हैं।

बहु० अविकृत कर्त्ताका रूप कु० में 'तुमहं' है। वा० में इसका उदाहरण नहीं है। दक्खिनीका 'तुम्ह' इसीसे विकसित प्रतीत होता है।

बहु० विकृत कर्त्ताका कोई उदाहरण कु० मे नही है। वा० में इसके लिए 'तुम' का प्रयोग हुआ है। दक्खिनीमें इसके लिए 'तुमने' मिलता है।

बहु० सम्बन्धका कोई उदाहरण कु० मे नही है। वा० मे इसका विकृत रूप 'तुमारे। तुम्हारे' मिलता है। दक्खिनीमें भी 'तुमारा। तुम्हारा' अविकृत बहु० सम्बन्धका रूप है।

सर्वनाम। विशेषण : निकटवर्त्ती निश्चयवाचक

कु० में पु० एक० अविकृतका रूप 'इह' तथा स्त्री० एक० अविकृतका रूप 'अइ' है। वा० में पु०। स्त्री० एक० अविकृतका रूप 'यह। याह। य'

है। दक्खिनीमें 'ई' तथा 'यै' क्रमशः 'इह' तथा 'यह' से तुलनीय है, यद्यपि दक्खिनीके इन रूपोंका आधार लिंग-भेद नहीं है। ऐसा ज्ञात होता है कि लिंग-भेद पहले था, जो धीरे-धीरे इस सर्व० में घिसकर निकल गया।

कु० में पु० एक० विकृतका रूप 'इहि' है, वा० में पु० । स्त्री० का 'इस'। दक्खिनीमें भी वह 'इस' है।

कु० में पु० बहु० अविकृतका रूप 'ए' है। वा० में पु० । स्त्री० का 'ए' है, और दक्खिनीमें भी वह 'ए' है।

कु० में पु० बहु० विकृतका रूप 'एण' है। वा० में इसका उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमे 'इन' है जो 'एण' से तुलनीय है। विकासका क्रम 'एण'—>'इन' प्रतीत होता है।

सर्वनाम । विशेषण : दूरवर्त्ती निश्चयवाचक

कु० में अविकृत एक० 'ओह' है। वा० में इसका उदाहरण नही है। दक्खिनीमें 'ओ । वो । वह' है जो 'ओह' से तुलनीय है। विकास-क्रम कदाचित् है 'ओह'—>'ओ । वह ।

विकृत एक० कर्म० के लिए कु० में 'वइ' प्रयुक्त है, जो न वा० में है और न दक्खिनीमे। किन्तु यह केवल पद्यमें प्रयुक्त है, इसलिए असम्भव नहीं कि कु० में पूर्ववर्ती भाषा-परम्परासे आया हो।

वैसे, कु० में सामान्य विकृत एक० 'उस' है, जो इसी प्रकार वा० तथा दक्खिनीमें भी मिलता है।

कु० में उपर्युक्तके अतिरिक्त त–परिवारके भी रूप मिलते हैं। एक० कर्त्ता (विकृत) उसमें है 'तिणि', कर्म० है 'ताहि', करण० है 'तिस –सु''। बहु० कर्म० विकृतका रूप 'ते' और सम्बन्धका स्त्री० 'तिन्ही' है। वा० में एक० कर्त्ता० (विकृत) 'तिन' है। जो कु० के 'तिणि' से विकसित है। शेष समस्त कारकोंके लिए एक० विकृत रूप 'तिस' है। बहु० विकृत रूप 'तिन्ह । तिन्हों' है, जो विभक्तियोंके साथ विभिन्न कारकोंमें प्रयुक्त हुआ है।

कु० तथा वा० मे स–परिवारके भी रूप मिलते है, किन्तु वे सबके सब एक० अविकृतके है। कु० में ये 'सा । स । सो । सु' हैं। वा० में ये 'सो । सु'. हैं। दक्खिनीमें केवल 'सो' मिलता है।

सर्वनाम : निजवाचक

कु० तथा वा० दोनोमें निजवाचक सर्वनामके रूपमें 'अप्प । आप' आता है। कु० मे एक० कर्त्ता० । कर्म० है 'आप । अप्प', सम्बन्ध (अविकृत) पु०

है, 'अप्पाण', और सम्बन्ध (विकृत) पु० है 'अप्पणइ। अपनइ'। वा० में कर्त्ता० है 'आप', सम्बन्ध० (अविकृत) है 'अपना' और सम्बन्ध (विकृत) है पु० 'अप्पणे। आपणे' [तथा स्त्री० 'अपनी']। कु० में बहु० कर्त्ता है 'अप्पा', बहु० सम्बन्ध (अविकृत) है पु० 'अप्पणा', स्त्री० 'आपणी', तथा सम्बन्ध (विकृत) है पु० 'आपणइ'। वा० में बहु० सम्बन्ध (अविकृत) है पु० 'आपणा। आपना' दक्खिनीमें कर्त्ता०-कर्म० 'अपस। अपन। अपना' है। सम्बन्ध० 'अपस। अपस-का-की-के' हैं। विकास-क्रम कदाचित् है 'अप्प'—> 'आप'—>'अपस'; 'अप्पाण'। 'अपन'। 'अपना'—>'आपना'—>'अपस-का-की-के'; 'अप्पणइ'। 'अपनइ'—>'अप्पणे'। 'आपणे'।

सर्वनाम। विशेषण : सम्बन्धवाचक

कु० में विशेषणके रूपमें एक० 'जो। जु। जा' तथा बहु० 'जे' प्रयुक्त हैं। वा० में एक० 'जु' है, बहु० का उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमें एक० जो। जु। ज' तथा बहु० 'जे' (?) हैं। कु० मे सर्व० के रूपमें एक० अविकृत रूप है 'जो' और बहु० अविकृत रूप है 'जे'। वा० में भी एक० अविकृत रूप 'जो' है, बहु० का उसमें कोई उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमे सर्व० एक० अविकृतके रूपमें 'जो' तथा बहु० अविकृतके रूपमें 'जे' (?) हैं। कु० में सर्व० विकृत एक० कर्त्ता-कर्म० 'जिण'। 'जिणि', सम्बन्ध० पु० 'जिसका'। स्त्री० 'जिसकी' है और विकृत बहु० कर्त्ता० 'जिणइ', कर्म० 'जिणि' है। अन्य कारकोंके उदाहरण नहीं हैं। वा० में बहु० के उदाहरण नहीं हैं। दक्खिनीमे बहु० कर्त्ता०। कर्म० अविकृत 'जिन' है, शेष कारकोंमे 'जिन' में विभक्तियाँ जोड़कर रूप बनाये गये है। कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि सम्बन्धवाचक वि०। सर्व० के विषयमें कु०, वा० तथा दक्खिनीमे साम्य बहुत है।

सर्व०। वि० : अनिश्चयवाचक

कु० में इसके एक० अविकृत रूप 'कउ। को। के' हैं, एक० विकृत कर्त्ता रूप 'किन' तथा अन्य कारकोमें एक० 'किसऊ-। केहु-' तथा उस कारककी विभक्ति हैं। वा० मे इसका एक० अविकृत रूप 'कोई' तथा विकृत रूप विभिन्न कारकोंमें 'किसी-' तथा उस कारककी विभक्ति है। दक्खिनीमें इसके अविकृत रूप 'को। कोई। कोय' हैं, और विकृत रूप विभिन्न कारकोंमें 'किसी-' तथा उस कारककी विभक्ति है। विकास-क्रम कदाचित् 'कउ'—> 'को'—> 'कोय। कोई' तथा 'किन'—> 'किसी ने' बहु० के रूप कु० तथा वा० में नहीं है।

सर्व० । वि० : प्रश्नवाचक

कु० तथा वा० मे जीववाची प्रश्नवाचक 'कउण' तथा अजीववाची 'क्या' परिवारके है। कु० में 'कउण' का एक अविकृत रूप 'कउण। कुण' है, एक० कर्ता० विकृत रूप 'किणि' है, अन्य कारकोंके विकृत रूप नही मिलते हैं। वा० में एक० अविकृत रूप 'कौन। कौन' और विकृत रूप 'कौन–। किस–' तथा उस कारककी विभक्ति का है। कु० में 'क्या' का अविकृत रूप 'क्या। कह्या। काइ' है। कु० मे विकृत रूप इस सर्व० का नही है। वा० में विभिन्न कारकोंमें इसके रूप किस– तथा काहे– के साथ उस कारककी उस विभक्ति के हैं। दक्खिनीमें ये 'कौन' और 'क्या। की' है। 'कौन' का विकृत रूप 'किस–' है जिसमें कारकोके अनुसार विभक्तियाँ लगती हैं, कर्त्ता अविकृतका एक० रूप 'किन' भी है, जो आदरार्थक प्रतीत होता है। विकास-क्रम कदाचित् है 'कउण'—> 'कुण'। 'कौंन'। 'कौन'।

विशेषण : गुणवाचक

कु० तथा वा० में विशेषण एक० में अपने सामान्य रूपमें प्रयुक्त हैं। आकारान्त विशेषण स्त्री० में इकारान्त हो जाते हैं। बहु० में आकारान्त पु० वि० एकारान्त हो जाते है और ईकारान्त स्त्री० वि० 'ईकार' को 'इकार' में बदलकर 'यां' जोड़ लेते है। दक्खिनीमें भी ऐसा ही है। किन्तु कु० में आकारान्त पु० वि० अकारको –आ। आं में बदलकर तथा ईकारान्त स्त्री० वि० ईकार को इकार मे बदलकर और फिर –यां जोड़कर बहु० रूप बनाते हैं। वा० में यह नहीं है। दक्खिनीमे यह है। कु० में पद्योंमें कहीं-कहीं पर बहु० रूपके साथ –ह स्वार्थिक भी जुड़ा मिलता है, जो न वा० में मिलता है और न दक्खिनीमें। बहु० के लिए कभी-कभी एक० का प्रयोग कु०, वा० तथा दक्खिनीमें समान रूपसे मिल जाता है। ऐसा ज्ञात होता है कि –आं अन्त्य पु० बहु० तथा –यां अन्त्य स्त्री० बहु० के रूप खड़ी बोली और पंजाबीमें साथ-साथ अवतरित हुए थे, जो पीछे खड़ी बोलीमें-से निकल गये, यद्यपि पंजाबीमें बने रह गये।

विशेषण : परिमाणवाचक

कु० में दो प्रकारके परिमाणवाचक वि० हैं : कुछ तो सर्वनामात्मक हैं और कुछ-एक अन्य प्रकारके हैं। सर्वनामात्मक वि० 'इता', 'इती'। 'इतनी', 'उंती', 'कित' और 'एक' हैं, अन्य प्रकारका एक ही है : 'कुछ'। वा० में

प्रथम प्रकारके वि० नहीं हैं। दूसरे प्रकारके वि० हैं : 'कुछ', 'बहुत', 'बड़ा'। दक्खिनीमें दोनों प्रकारोंके पाये जाते हैं।

विशेषण : संख्यावाचक

संख्याएँ अनेक मिलती हैं, जिनमें-से दो विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं : एक तो 'एक' की, और दूसरी 'दो' की। कु० में एक 'एक' के अतिरिक्त 'हेक' तथा पु० 'एक-स' और स्त्री० 'एक-सि' रूपोंमें मिलता है। वा० में वह केवल 'एक' के रूपमें मिलता है। कु० में 'दो' इसी प्रकार 'दो। दुइ। दोइ। बे' रूपोमें मिलता है। वा० में 'दो। दोई' मात्रके रूपोमें। दक्खिनीमें भी 'एक' के लिए 'एक' के अतिरिक्त 'एक-स' मिलता है, और 'दो' के लिए 'दो' के अतिरिक्त 'दोइ' मिलता है। 'बे' पूर्ववर्ती अपभ्रंशसे उत्तराधिकारमें प्राप्त हुआ होगा। शेष संख्याओमें कु०, वा० और दक्खिनी प्राय: समान है।

क्रिया

क्रियार्थक संज्ञाएँ कु० तथा वा० दोनोंमें धातु*में –णा। ना लगाकर बनी हैं। वा० में इसके अतिरिक्त वे –ला लगाकर भी बनी है। दक्खिनीमें वे –ना लगाकर ही बनी हैं किन्तु पुरानी दक्खिनीमें वे यदि –णा लगाकर बनती रही हों तो आश्चर्य न होगा, क्योंकि फारसी-अरबी लिपियोंमें, जिनमें पुरानी दक्खिनीकी समस्त रचनाएँ उपलब्ध हैं, –णा तथा –ना एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं।

क्रियाओंके प्रेरणार्थक रूप कु० तथा वा० दोनोंमें धातु –आव्। लाव् लगाकर बने हैं। –आव्से जो प्रेरणार्थक रूप बनते है, उनका सामान्यभूत रूप –व निकालकर बनता है, इसलिए उनमें –आ मात्र लगे होनेका भ्रम हो सकता है। दक्खिनीमें भी दोनों प्रकारके रूप मिलते हैं।

क्रियाओंके विधिके रूप कु० में प्रच्छन्न 'तू' कर्त्ताके साथ धातुमें –इ। अइ। ए लगाकर अथवा बिना कुछ लगाये हुए, प्रच्छन्न 'आप' के साथ –ई (<इय)। ईइं लगाकर और प्रच्छन्न 'तुम' के साथ –उ। अउ। [हु]। अहु। ओ लगाकर बने है। वा० में वे प्रच्छन्न 'तू' के साथ बिना कुछ लगाये हुए, प्रच्छन्न

* हिन्दुईकी धातुएँ दो प्रकारकी हैं : स्वरान्त तथा व्यंजनान्त। स्वरान्त यथा खा, पी, हो तथा व्यंजनान्त यथा कर्, चल्, रह्। उदाहरणोंमें कभी-कभी एक ही प्रकारकी धातुएँ मिली हैं। उनमें प्रयुक्त प्रत्ययको देते हुए, विवेचनमें वह प्रत्यय भी दिया गया है जो दूसरे प्रकारकी धातुओंमें लगेगा।

'आप' के साथ –इए । यए लगाकर तथा प्रच्छन्न 'तुम' के साथ –ओ । औ । औ (?) । यौ लगाकर बने हैं। वा० में भविष्यत्‌की विधिका रूप भी मिलता है। उसमें प्रच्छन्न 'तुम' के साथ धातुमें –इयौ लगा हुआ है। अन्य पुरुष विधिका रूप कु० में नहीं है। वा० में वह एक० में धातुमें –ऐ लगाकर बनाया गया है। इसी प्रकार उसमें आदरार्थक बहु० के साथ धातुमें –अंह लगाकर बनाया गया आशीर्वादात्मक रूप भी मिलता है। दक्खिनीमें प्रच्छन्न 'तू एक० के साथ धातुमें बिना कुछ लगाये हुए बने विधिका रूप तो मिलता है, अन्य रूपोंके सम्बन्धमें पर्याप्त जानकारी नही है।

इन रूपोमे विकास-क्रम कदाचित् है –इ—> प्रत्ययहीन रूप; –अइ—> –ए; –उ—> –ओ; –अउ—> –औ; –उ—> –हु; –अउ—> –अहु; –ई (<इय)—> – इए । यए; –ईइं—> वर्त्तमान –एं ।

कर्मवाच्यके रूप इन रचनाओमे बहुत विरल हैं। कु० में वे धातुमें – इयइ । ईइ अथवा –इबा लगाकर बनाये गये हैं। वा० में केवल एक उदाहरण है जो स्त्री० का सामान्य भूतकालका है और धातुमें –ई लगाकर बनाया हुआ है। दक्खिनीमें इनकी स्थितिकी जानकारी यथेष्ट नही है।

क्रिया : सामान्य वर्त्तमान काल

कु० में सामान्य वर्त्त० का रूप धातुमें –इ । अइ । ए जोड़कर बनाया गया है, और अनेक स्थलोंपर यह रूप सामान्य भूतके अर्थमें भी प्रयुक्त हुआ है। वा० में धातुमें –ऐ । ए । य जोड़कर यह रूप बनाया गया है, और उसमें भी यह रूप सामान्यभूतके अर्थमे भी प्रयुक्त हुआ है। दक्खिनीकी स्थिति इस विषयमें यथेष्ट रूपसे ज्ञात नही है, किन्तु वर्त्तमान साहित्यिक खड़ी बोलीमें यह रूप समाप्त हो गया है, और इसका स्थान वर्त्तमान कृदन्त 'है' ने ले लिया है। यह रूप प्राचीनतर भाषासे उत्तराधिकारमें मिला हुआ था, और व्रजमें अब भी बना हुआ है। विकास-क्रम कदाचित् है –इ । अइ—> –ऐ । –ए । –य ।

स्थिति-वाची एक० ह् + अइ = हइ का प्रयोग कु० में तीन प्रकारसे हुआ है : (१) जिसमें किसी वस्तुके होने मात्रका भाव है, (२) जिसमें किसी कार्यके होते होनेका भाव है, तथा (३) जिसमे किसी कार्यके आगे होनेका भाव है। प्रथम प्रकारके प्रयोगमें केवल 'हइ' आता है, द्वितीय प्रकारके प्रयोगमें क्रियाका वर्त्तमान कृदन्तका रूप और 'हइ' आता है, तथा तीसरे प्रकारके प्रयोगमें

क्रियाका क्रियार्थक संज्ञा रूप और 'हइ' आता है। वा० में यह स्थितिवाची क्रिया 'है' के रूपमें आती है। इसमें उपर्युक्त प्रथम दो प्रकारके ही प्रयोग मिलते है, तीसरे प्रकारके नहीं। दक्खिनीमे तीनों प्रकारके प्रयोग मिलते हैं और क्रियाका रूप 'है' है, किन्तु पुरानी दक्खिनीमें वह यदि 'हइ' रहा हो तो आश्चर्य न होगा क्योंकि फारसी-अरबी लिपिमें दोनो एक ही प्रकारसे लिखे जाते हैं। विकास क्रम होगा 'हइ'—> 'है'।

कु० में एक स्थानपर धातुके प्रत्ययहीन रूपसे ही सामान्य वर्त्तमानका काम लिया गया है। वा० में इसका उदाहरण नही मिलता है। दक्खिनीमें इसकी स्थिति ज्ञात नही है। यह प्रवृत्ति पुरानी अवधी तकमे मिलती है और हो सकता है कि प्राचीनतर भाषा रूपसे पुरानी खड़ी बोलीको भी प्राप्त हुई हो।

कु० में 'हइ' के स्थानपर एक बार 'अछ्+अए' = 'अछए' का भी प्रयोग हुआ है और पद्यमे एक बार 'अत्थि', 'नत्थि' का। वा० में इनके उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमे 'अछ्' क्रियाका प्रयोग प्रचुर परिमाणमें मिलता है।

कभी-कभी बहु० के लिए एक० [-इ]। अइ तथा ह्+अइ=हइ रूपोसे कु० तथा वा० दोनोमें काम लिया गया है। इसके अतिरिक्त धातुके प्रत्ययहीन रूपका प्रयोग कु० में बहु० के लिए भी उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार एक० के लिए। वा० और दक्खिनीमे इनमें-से प्रथम प्रवृत्ति तो मिलती है, दूसरी नहीं। —

उत्तमपुरुषके रूप कु० में तो हैं, वा० में नहीं हैं। कु० मे एक० के रूप धातुके साथ – उं। अउं लगाकर बनाये गये है। वे स्थितिवाची 'ह्' धातुकी सहायतासे वर्त्तमान कृदन्त रूपके साथ 'हूं' लगाकर भी बनाये गये है। बहु० के रूप धातुमें [–इं]। अइं जोड़कर बनाये गये है। दक्खिनीमे –उं। अउं। तथा 'हूँ' युक्त रूप एक० मे तथा एं युक्त रूप बहु० में मिलते हैं। विकास-क्रम कदाचित् है –उं (स्वरान्त धातुमे)। अउं—>उं (स्वरान्त तथा व्यंजनान्त दोनोमे) ऊं—>हू; इं। अइं—>एं। मध्यम पु० के रूप न कु० में हैं और न वा० मे।

क्रिया : अपूर्ण वर्त्तमान काल

कु० में ही अपूर्ण वर्त्त० के रूप पाये जाते है, वा० में नहीं। कु० में इसका एक० पु० प्रत्यय –अंदा। हंदा। एक० स्त्री० –अंदी। [हंदी], तथा बहु० पु० –अंदे। [हंदे] है। संस्कृतके—अंति प्रत्ययका प्रयोग भी उसमें अपूर्ण

वर्त्त० के लिए हुआ है, और उस प्रयोगमें लिंग-वचनका भेद नहीं है। ये प्रत्यय दक्खिनीमें नही मिलते हैं। कु० में भी ये पद्यों तक ही सीमित हैं। किन्तु गद्यमे अपूर्ण वर्त्त० का कोई अन्य रूप भी नही है, इसलिए इन्हे कु० की सामान्य भाषाका अंग माना जा सकता है। अंदा। [हंदा] प्राचीनतर भाषा रूपसे प्राप्त प्रतीत होते हैं और अब भी पंजाबी, गढ़वाली तथा नेपाली-में थोड़े-बहुत अन्तरके साथ मिलते है।

क्रिया : पूर्ण वर्त्तमान काल

कु० तथा वा० दोनोंमें पूर्ण वर्त्तमानके रूप भूत कृदन्तके साथ 'होना' क्रियाके वर्त्तमानके रूपको लगाकर बनाये गये हैं। कु० में क्रियाका यह रूप ह् + अह = 'हइ' है और वा० मे ह् + ऐ = 'है' है। दक्खिनीमें भी यह 'है' है। कु० मे बहु० में भी 'हइ' ही है, जिस प्रकार वह उसमे सामान्य वर्त्त० बहु० में है। वा० में बहु० का उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमें बहु० 'है' है। विकास-क्रम होगा हइ—>है।

क्रिया : सम्भाव्य वर्त्तमान काल

कु० मे संज्ञा तथा अन्य पु० के सम्भाव्य वर्त्त० के रूप धातुमें –इ। अइ लगाकर बनाये गये है, केवल एक स्थानपर –ए लगाया गया है। पुनः कु० में उत्तम पु० एक० के रूप धातुमें –अउं तथा बहु० के रूप धातुमें –अइ लगाकर बने है। वा० में अन्य पु० के रूप धातुमे –इ। ई। ऐ। य लगाकर बने हैं, केवल एक स्थानपर –औ लगाकर इसका रूप बना है। इसके अतिरिक्त वा० में प्रच्छन्न 'आप' के साथ धातुमें –इय। इए। ए लगाकर बने हैं। दक्खिनीमें इनकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नही है। विकास-क्रम कदाचित् है : –इ। अइ—>ऐ—>ए—>य।

उत्तम पु० के रूप कु० में ही मिलते हैं और वे एक० में धातु में –उं। अउं लगाकर तथा बहु० में –इ। अइ लगाकर बनाये गये हैं। सामान्य वर्त्त० में भी हम ऊपर देख चुके हैं कि इ–। अइ लगाकर ही बहु० के रूप बने हैं। दक्खिनीमें एक० के रूप –ऊं लगाकर तथा बहु० के –एं लगाकर बने है। विकास-क्रम कदाचित् है –उं (स्वरान्त धातुओंके लिए)। –अउं—>–उं (स्वरान्त तथा व्यंजनान्त दोनोंके लिए)—>–ऊं; –इ। अइ—>-एं।

मध्यम पु० एक० का रूप कु० में नहीं है। बहु० का रूप कु० में प्रच्छन्न 'तुम' के साथ धातुमें –उ। [अउ] लगाकर बना है। वा० में एक० का रूप

प्रच्छन्न 'आप'के साथ धातुमे –इयै। इए लगाकर बना है, बहु० का उसमें नहीं है। दक्खिनीमें प्रच्छन्न 'तुम'के साथ –ओ युक्त रूप है, और प्रच्छन्न 'आप'के साथ –इए युक्त रूप। विकास-क्रम कदाचित् है –अउ—>ओ; –इयै—>–इए।

क्रिया : सामान्य भविष्यत् काल

कु० में संज्ञा तथा अन्य पु० एक० पु० रूप धातुमें –इगा। अइगा अथवा – हिगा। अहिगा लगाकर बने हैं, और बहु० पु० [–इंगे]। अइंगे लगाकर। एक स्थानपर उसमें एक० मे –इहइ प्रत्यय भी मिलता है, किन्तु वह पद्यमें है। वा० में एक पु० मे –गा। इगा। अइगा। इएगा, एक० स्त्री० मे –इगी। ईगी। इएगी लगे हैं। बहु० पु० मे –हिंगे। [अहिंगे]। ऐंगे है, और बहु० स्त्री० का रूप एक० स्त्री० से अभिन्न है। दक्खिनीमें ये समस्त रूप मिलते हैं : अन्य पु० एक० पु० का प्रत्यय है –एगा, तथा बहु० पु० का –एंगे। एइगे। आंगे। कु० का –इहइ प्राचीनतर भाषा-रूपका अवशेष है और वह पद्य तक ही सीमित है। ब्रज० में वह अभीतक सुरक्षित है। विकास-क्रम कदाचित् है : –इगा। अइगा—>–हिगा। अहिगा—>–इएगा। एगा; –इंगे। अइंगे—>–ऐंगे —>–एंगे।

कु० में उत्तम पु० एक० पु० का प्रत्यय [–उंगा], स्त्री० का उंगी है; बहु० का उदाहरण उसमें नहीं है। वा० में एक० पु० का है –ऊंगा, बहु० पु० का है –हिंगे। अहिंगे। ऐंगे। दक्खिनीमें एक० पु० का प्रत्यय है –उंगा और बहु० पु० का है –एंगे। अइंगे। विकास-क्रम कदाचित् है : –उंगा—>ऊंगा; –इंगे। अइंगे—>–हिंगे। अहिंगे तथा –ऐंगे—>–एंगे।

कु० में द्वितीय पु० बहु० पु० का प्रत्यय है –हुगे : एक० का उदाहरण नहीं है। वा० में द्वितीय पु० का कोई उदाहरण नहीं है। दक्खिनीमें एक० पु० का प्रत्यय है –एगा। इंगा। आंगा और बहु० पु० का है –इंगे। एंगे। आंगे। दक्खिनीके रूप कुछ अव्यवस्थित-से प्रतीत होते हैं। विकास-क्रम कदाचित् है : –हुगे—>वर्त्तमान –ओगे।

क्रिया : सामान्य भूत काल

कु० में एक० पु० के रूप धातुमें –आ। या। इया जोड़कर बनाये गये हैं : कहीं-कहींपर –अउ। ओ लगाकर भी उनकी रचना हुई है। वा० में केवल –आ। या लगाकर यह रूप बने हैं। दक्खिनीमें प्रत्यय है –आ। या। इया।

—अउ । ओ पूर्ववर्ती पश्चिमी अपभ्रंशके भूत कृदन्त प्रत्यय —अउ । इउ का अवशेष है, जो अब भी राजस्थानी, पश्चिमी पहाड़ी और ब्रज० में —ओ के रूपमें विद्यमान है।

कु० तथा वा० में एक० स्त्री० का प्रत्यय —ई है। दक्खिनीमें भी यही है।

कु० मे कुछ स्थलोंपर एक० पु० रूप —आना । ईन । ईना । ईन्हा प्रत्ययसे भी बने हैं, जो एक० स्त्री० मे —ईनी हो गया है। वा० मे यह प्रत्यय नहीं मिलता है, और न कदाचित् दक्खिनीमें। यह पूर्ववर्ती पश्चिमी अपभ्रंशके —इण्ण । ईण का अवशेष है।

कु० तथा वा० में बहु० पु० रूप धातुमे —ए । अए लगाकर बने हैं। दक्खिनीमे भी यह प्रत्यय मिलता है। कु० मे कही-कहींपर —या । इयां । ईयां लगाकर भी बहु० रूप बनाये गये है। —ईन । ईना वाले रूपका बहु० —ईनइ लगाकर बना है। वा० में इनका अभाव है। दक्खिनीमें इनकी स्थिति ज्ञात नहीं है।

कु० में बहु० स्त्री० रूप धातुमें —या । इयां । ईयां लगाकर बनाये गये हैं। वा० मे ये नही मिलते हैं। दक्खिनीमें इनकी स्थिति ज्ञात नहीं है।

कु० मे कहीं-कहीपर —आं । यां । इया युक्त रूप एक० में भी प्रयुक्त हुए हैं। वा० में ऐसा नही है। दक्खिनीमें इस प्रवृत्तिकी स्थिति ज्ञात नहीं है। कु० मे यह अनुनासिकता अकारण आयी हुई प्रतीत होती है।

कु० में कभी-कभी एक० रूपोंसे ही बहु० का भी काम निकाला गया है। बहु० बनानेके लिए एक० प्रत्ययोमें केवल अनुनासिकता और लायी गयी है। बिन्दु प्रतिलिपि-क्रियामें प्रायः छूट जाया करता है, इसलिए असम्भव नहीं है कि अनुनासिकताका अभाव कही-कहीपर इस कारण भी हो गया हो, किन्तु यह भी असम्भव नही है कि बहु० के लिए एक० क्रियाका प्रयोग सदोष न माना जाता रहा हो और किया जाता रहा हो।

कृदन्त युक्त सामान्य भूतका एक ही उदाहरण है: वह वा० में है और बहु० पु० का है, जिसमें धातुमें —अते ही लगाकर उसे रहने दिया गया है। दक्खिनीमें इसकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है।

क्रिया : अपूर्ण भूत काल

इसके कोई उदाहरण न कु० में हैं और न वा० में।

क्रिया : पूर्ण भूत काल

कु० तथा वा० दोनोमें पूर्ण भूतके रूप भूत कृदन्तके साथ पु० में 'था', स्त्री० में 'थी' तथा बहु० पु० में 'थे' जोड़कर बनाये गये हैं। दक्खिनीमे भी ऐसा ही हुआ है।

वर्त्तमान कृदन्त

कु०में वर्त्तमान कृदन्तके रूप धातुमें पु०में –ता। तां, स्त्री०में –ती तथा विकृतियुक्त रूपमें-तइ। तइं। ते लगाकर बने है। कही-कहीपर केवल–त लगाकर भी वर्त्त० कृदन्तका रूप बनाया गया है इनके अतिरिक्त, कु० मे एक पु० –अदा, [स्त्री० –अंदी], विकृतियुक्त -अंदइ। अंदे, बहु० इंदीइ। अंदिए रूप भी पाये जाते हैं, जो पद्यों तक ही सीमित है। वा० मे एक० पु०-ता तथा स्त्री०-ती वाले रूप ही मिलते है। दक्खिनीमें पु०–ता, स्त्री०-ती और विकृति युक्त –ते वाले रूप ही मिलते हैं। पश्चिमी अपभ्रंशमे वर्त्तमान कृदन्त –अंत लगाकर बनता था, उसीसे –अंदा वाले रूप विकसित हुए है, और अब भी पजाबी, गढवाली और नेपालीमे थोड़े-बहुत अन्तरके साथ सुरक्षित हैं। –त वाले रूपका विकास भी –अन्तवाले अपभ्रंशके रूपसे हुआ प्रतीत होता है, जिसका अनुस्वार सम्भवत: घिसकर धीरे-धीरे निकल गया है। पु० तथा स्त्री० के रूप उसी –त युक्त रूपमें –आ तथा –इ लगाकर विकसित हुए हैं। विकास क्रम अतः होगा— त—>पु० –ता तथा स्त्री० –ती विकृति युक्त –ते।

भूत कृदन्त

कु० में भूत कृदन्त एक० के रूप धातुमें –इया लगाकर बनाये गये हैं। किन्तु पु० तथा स्त्री० रूप क्रमशः –आ तथा –ई लगाकर भी बने हैं। इसी प्रकार बहु० का सामान्य रूप –इया। यां। आ लगाकर बना है, और पु० रूप –ए लगाकर। बहु० स्त्री० का कोई उदाहरण नहीं है। वा०में पु०मे –या, स्त्री० में –ई और बहु० पु० में –ए युक्त रूप ही मिलते हैं। दक्खिनीकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नही है। –इया वाले रूप पश्चिमी अपभ्रंशके –इय वाले रूपोंके विकास हैं। विकास-क्रम कदाचित् है –इया—>पु० –या। –आ तथा स्त्री० –ई, बहु० पु० –ए।

कु० में कही-कहीपर एक० रूपसे ही बहु० का भी काम लिया गया है। और कहीं-कहीपर एक० रूपमें भी अकारण अनुनासिकताका आगम हुआ है। वा० में प्रथम प्रवृत्ति तो मिलती है, दूसरी नही।

पूर्वकालिक कृदन्त

कु० में ये धातुमें –इ लगाकर अथवा बिना कुछ लगाये बनाये गये हैं। वा०मे ये –ई। इ। ऐ। ए। य लगाकर अथवा बिना कुछ लगाये बनाये गये हैं। वा०मे कभी-कभी इसके अतिरिक्त की। कै। कर भी लगाया गया है। दक्खिनीमें इनकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है। विकास-क्रम कदाचित् है –इ—>ऐ—>ए—>य—>प्रत्ययहीनता।

अव्यय

एक अवधारण वाचक अव्यय कु० में 'इ। इं। ई' है, जो वा०में 'ई' मात्र-के रूपमें मिलता है। दूसरा 'ही' है जो वा०में 'ही'के रूपमे मिलता है, तीसरा हु। हुं। हू है जो वा०में औ। औ के रूपमें पाया जाता है। कु०में पु० 'चा', स्त्री० 'ची' है, वा० में 'च' मात्र है। वा० में 'भी' तथा 'तो' भी हैं, जो कु० में नहीं हैं। दक्खिनी में 'च', 'भी', 'तऊ' हैं, शेषकी स्थिति यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है।

स्थितिवाचक अव्यय कु० में 'सामटा', 'तर। तल', 'पास', 'साथ', 'आगइ', 'अग्गम', 'पाछी। पछइ। पाछइ' हैं और वा०में 'उरि', 'नीचा', 'औंधा', 'पहलै', 'आगै', 'अवलि', 'पीछै', 'उपरांति' हैं। दक्खिनीमें इनमें-से 'तल', 'पास', 'पछे'। पिछे, तो हैं, शेषके विषयमें यथेष्ट रूपसे ज्ञात नहीं है। विकास-क्रम कदाचित् है : आगइ—>आगै, पछइ। पाछइ—>पीछै।

स्थानवाचक अव्यय दोनोंमें 'जहाँ', 'कहाँ', 'तहाँ' हैं, जो दक्खिनीमें भी हैं। वा०मे 'अनंत' (अन्यत्र) और मिलता है।

कालवाचक अव्यय दोनोंमें 'अब', 'तब', 'जब' हैं। कु०में इस वर्गके अन्य अव्यय 'कद', 'अज्ज', 'कल्हि', 'तत', 'एताल', 'ज्युं', 'त्युं', 'ताइ', और 'तो' हैं, वा० में 'यो', 'हमेसा' और 'फेरि' हैं। दक्खिनीमें भी 'अब', 'जब', 'तब', 'तो', 'आज', 'अताल', 'अद', 'कद', 'जद', 'तद' मिलते हैं।

रीतिवाचक अव्यय कु०में 'जिम। जिउं। ज्यूं', 'किउं, कुं करि', 'त्युं' तथा 'यों' हैं। वा०में वे हैं 'ज्यो। जौं', 'क्यो', 'यो', 'सैं'। दक्खिनीमें हैं : 'ज्यूं। जूं' 'यूं', 'त्यूं', 'क्यूंकर'। विकासक्रम कदाचित् है : जिम। जिउं ज्युं—>ज्यौं–जौं, किउं—>कुं—>क्यौं।

संयोजक अव्यय कु०में हैं : 'जउ', 'तउ', 'तरह', 'जं', 'सु', 'जइ', 'नत। नातर' 'वल', 'परि' 'कई। की। के', 'जांणि। जाणे। जाणुं', 'मानुं'; वा०में

हैं 'जु । ज', 'तो', 'या', 'परि । पै । पर', 'अर', 'सो । सु', 'कि' । दक्खिनी, में है 'तऊ' 'के', 'पर । पन', 'और'; शेषके बारेमें यथेष्ट रूपसे ज्ञात नही है। विकास-क्रम कदाचित् है : जउ—>जु—>ज, तउ—>तो, सु—>सो, कई—>के, की—>कि ।

स्वीकार तथा निषेध वाचक 'हा', तथा 'न । ना । नही, कु० तथा वा० दोनोंमें हैं । वा०में 'मत' भी है जो कु०मे नही है । दक्खिनीमे मिलते है 'हो', 'न । नहीं' ।

विस्मयादि बोधक अव्यय कु०में है 'इओही' और 'ओहि ओहि', वा० में कोई नहीं है । दक्खिनीमें 'इओही' 'ऐ यो' के रूपमें पाया जाता है और 'ओह' कदाचित् 'वुइ'के रूपमें ।

■

कुतब शतक

पाठ और अर्थ

[१]

*'ढढ्ढिनि दानसवंद की'[1] अढ्ढी 'देवर'[2] नाम।
'साहिब सुं सूरत्तियां'[3] वर बोलिया 'वडाम'[4]॥[5]

पाठान्तर—१. अ. ढढिनि दाणस वंद री, ध. ढढणि दानसवंद की, का. ढंढणी दानसमंद री। २. ध. देवल। ३. ध. साहिब सा सुं रत्तीयां, का. साहिब से

* का० में इसके पूर्व और आता है : [का० में प्रथम पत्र नहीं है, उद्धृत अंश उसके बादका है]:

···ला ४। कामसेना ५। कामवती ६। चम्पावती ७। रम्भावती ८। ए आठ अपछरा बडी जांग छै। एकदा प्रस्तावै। इन्द्र छभा मांहि मृत्यु लोक की बात चली। ताहरां साहिबां री सूरति देवता वषाणण लागा। ताहरां अपछरा बोली। मानवीयां मांहे देवता की घणो सुषछै। दीठां वणि आवै। ताहरां देवता बोलीय किसही देवांगना मै एक कबाब रूप है। किस ही में दोइ कबाब रूप है। किस ही मै तीन कबाब रूप है। किस ही मै दस कबाब रूप है। साहिबां मै सोलह कबाब रूप है। सहर दिली मै सेज दावल दानसमंद की बेटी है। असा रूप तीन लोक मै किस ही का नांही। तब जयंती अपछरा उहां थी स्वर्गलोक थी, मनुष्य लोक मै आई। तब उजेणी मै आई। उहां ष्याल देखती थी सहर दिली मै आई। तब देष्या जु मुगलां कै अंदर कुं जाव ण पाईयें। तब अपछरा नै ढाढिणी का रूप कीया। ढोलक गल वीच वाह दावल कै दरबार गई। उहा जाई सुर कीया। ढोलक बाई। तब साहिबां कै ढोलक का सबद सुणि ढाढणी कुं इंदर लोक बोलाइ लई। हजूर तेडी। हुकम कीया जु गावौ। तब ढाढणी गांवणँ बावणे लागी। साहिबां बहुत रीझी। ऐसे वीच्चि साहिबां कै षांणा तयार हूया। तब साहिबां कह्यौ। इहांई ल्यावो। तब तबा का षांणै क्या आया। तब साहिबां ढाढणी सुं बहुत षुसीयाल थी कह्या ढाढणी षांणा षाइ। तब षांणा ढाढणी कुं दीया। तब षांणा ढाढणी षांणा षाइ करी बहुत राजी हूई। देवता आषर षुसी हूया वर देवे। ढाढणी बोली साहिबा मांगि तूठी। तब साहिबां हसी। अरी साहिबां क्या हसती है। मांगि मांगि तूठी। तुझ कुं पसाव कीया। तब साहिबां बोली। क्या जी तूं म पसाव कीया। कह्यौ जी हमारे बडे बूढे को ईसाफ कहोगे। उंर का पसाव देयोगे। कह्यो जी देवर कै दिल मै दिल तौ तुझ कुं साहिजादा वरूंगी। कहां साहिजादा कहां हम। हम तौ दोइ लाष टकां के चाकर। दरबार जावण पावां तौ भी बहुत। मामुस कै रहौ। ढाढणी बोली अरी साहिबां जो देवर कौं दिल मै दिल तौ तुझ कु साहिजादा कुतबदीन वरा मामुस कै रहौ। (शेषांश आगेके पृष्ठपर देखिए)

संरत्तीयं, अ. सांहिब सों सूरत्तिया। ४. ध. बोलीये बडाम, का. बोलियां विडांम। ५. अ. में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो '१' है।

अर्थ—[दावर—न्यायकर्त्ता] दानिशमंद की [एक] गुण-संपन्ना ढाढिनी थी, [जिसका] नाम देवर [देवल] था। [दानिशमंद की कन्या] साहिबा से अत्यधिक प्रसन्न होनेके कारण [उसने] एक बड़ा कर [वचन] बोल (दे) दिया।

टिप्पणी—ढढिनि : ढाढी जातिकी स्त्री जो गाने-बजानेका काम करती है। यह नाम 'ढड्ढ' [दे०]=भेरी से पड़ा ज्ञात होता है। राजस्थानमें फाग के समय बजाये जानेवाले चंगको भी कहीं-कहीं 'ढड्ढा' कहते हैं। दानसवंद< दानिशमन्द [फ़ा०]=बुद्धिमान्। अड्ढ<आढ्य=सम्पन्न; यहाँपर आशय कदाचित् है 'गुण-सम्पन्न'से। सूरत्ति< सु+रक्त=अत्यधिक प्रसन्न। वर= देवताका प्रसाद, वचन। वड्ड [दे.]=बड़ा, महान्।

[२]

दिल्ली 'सहर'[१] 'सुरतांण पेरोज साहि थाना'[२]।
साहिजादा 'कुतबदी'[३] 'जुआंणा'[४]॥
बरस नव तीनि तेगह 'पवाणा'[५]।
बीबीयां लाजलो 'भइ'[६] बंधाना॥[७]

पाठान्तर—१. ध. नयर। २. का. सुरतांण पेरो साह थांणा। ३. का. कुतदीन। ४. ध. का. जुवानां। ५. ध. का. प्रमाणा। ६. का. भे, अ. जइ (<भइ)। ७. अ. में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है, जो है '२'।

ध० में इसी प्रकार प्रथम दोहेके बाद आता है :

एक दिवसि साहिबां ढढणी कुं षाणा पुलावती थी। ढढणी प्रसाद कीया। साहिबां तुझ कुं क्या उपगार करूं। हम कुं क्या उपगार करहुगे। हमारे बटां बूढा के ववसाफ करउ। ते हउ। अवर क्या उपगार करहुगे। देउल के दिल मइ दिल तउ तुझ कुं साहिजादा कुतबदीन बरूंगी। नन दुरोग क्या बोलहु। हम लाख टका के चाकर। दरबार जाणइ पावइं तउ भी बहुत। कहां साहिजादा कहां हम।

[प्रकट है कि दोनों प्रतियोंकी ये सूचनाएँ प्रथम दोहेकी टीकाओंके रूपमें हैं। सम्भवतः ध. का रूप पूर्ववर्ती है, जिसमें और विस्तार करके का. का रूप बनाया गया है : ध. का 'एक लाख टका' का. में 'दो लाख टका' हो गया है, यह भी इसी अनुमानका समर्थन करता है।]

अर्थ—दिल्ली नगर सुल्तान फीरोज़शाहका स्थानक (शासन-केन्द्र) था। [उसका] शाहज़ादा कुतुबुद्दीन युवा [हो चला] था । नव + तीन [= बारह] वर्षों [की अवस्था] में वह तेग़ (तलवार) [चलाने] में प्रमाण हो गया [था], [जिस समय] लज्जालु बीबी (बिवाना) [उसके लिए] बन्धन हो गयी।

टिप्पणी—थाना < स्थाणय < स्थानक = चौकी, सैनिक केन्द्र, कदाचित् यहाँपर तात्पर्य शासन-केन्द्रसे है। जुआण < युवन् = तरुण, जवान। लाजलो < लज्जालुआ < लज्जालु = लज्जावाली स्त्री। बीबी [फा०] = कुलवधू, भले घरकी स्त्री; बीबीया का-आ युक्त रूप बहुवचनका नहीं, आदर अथवा प्यारका है। बंधाणा < बंधणया < बन्धन।

[३]

डोसी 'अग्गा'[1] 'आगइ'[2] 'बीबी बिवानां'[3] 'बइट्ठी'[4]।
'नवे'[5] 'पंच सइ' 'हत्थ सोवन्न लट्ठी' ॥
'वाडीयां'[8] 'वेलियां'[9] नयणे 'दिषावइ'[10]।
'साहिजादा आगइ'[11] 'सरकणइ'[12] न 'पावइ' [3]–[14] ॥*

पाठान्तर—१. अ. अगा (=अग्गा) का. आगा, ध. आगां। २. का. आगै। ३. ध. दरबारि। ४. का. बैठी। ५. ध. जथे। ६. ध. पांच सइ, का. पांच सै। ७. ध. हाथि सोवन्न लाठी। ८. ध. का. बारीयां। ९. ध. बोलीया। १०. का. दिषावै। ११. का. पिण साहिजादा आगै। १२. ध. सरकणे, का. सिरकणै। १३. का. पावै। १४. अ. में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '२'।

अर्थ—वृद्धा आग़ा और बीबी बिवानां [जो उस शाहज़ादेकी माता थी] उन सबके आगे बैठी [होती थीं]। [ऐसी स्त्रियाँ] पाँच सै नवे [होतीं] थीं, और उनके हाथोंमें स्वर्ण-यष्टि [होती थी]। वे [शाहज़ादेको उसके]

---

* का. में यहाँ निम्नलिखित पंक्तियाँ और हैं :

वचनिका—बीबीयां का नाम। बीबी अगा १, बीबी बीवांनां २, बीबी अंगीया ३, बीबी पेम प्यारी ४, बीबी गुलाब ५, बीबी महबूब ६, असी बीबी पांच सै गुलांम पासेवांण सुं साहिजादै के पासे रहै। हाथूं बीचि सोना का आसा सोने के गुरुज लीय बैंठी रहै कोऊ आवण पावै नहीं। दरवाजे पांच सै प्यादा खड़ा रहै। इस भांति रहै। पातिसाह का हुकम एक पूंगरी पातिसाह कै है सो जतन सुं साहिजादा कु राषत है। कोइ हरामजादा छल छिद्र साइंण माइंण बुरा आवण न पावै। असी जाबता साहिजादे की है।

नेत्रोंसे वाटिका और [उसकी] लताओंको दिखाती [रहती] थीं। [उनके द्वारा परिवेष्टित] शाहज़ादा आगे सरकने (जाने) नहीं पाता था।

टिप्पणी—डोसी = बुड्ढी (द० 'दक्खिनी-हिन्दी' : बाबूराम सक्सेना, पृ० ७९ पर 'डोसा')। अग्गा ∠ आग़ा [तु०] = एक उपाधि जो प्रायः मुगलोंकी होती थी। सोवन < सोवण्ण < सौवर्ण = स्वर्ण निर्मित। लट्ठि < यष्टि = लाठी, छड़ी। वाडीया < वाटिका = उद्यान। वेल्ली [दे०] = लता। सरक् < सर् < सृ = खिसकना, जाना।

[४]

'एक सि द्यउस देवर ढढिनीं मालनी का'[१] भेष कर्यां'[२]।
'पक्कीयां नारिंग्यां जंभीरथ्यां भरथ्यां'[३]।
बेलीयां 'बंकीयां करथ्यां'[४]।
हेलीयां 'साहिजादे कइ अग्गइ'[५] धरथ्यां।*
दोइ साहिजादें अप्पणइ हत्थइ कीयां'[६]।
[७]'आगा' [८]'मालनी षुब (षूब) 'हइ'[९]।
हां 'साहिजादे'[१०] 'जोवणा'[११] षूब हइ।
'षूब कुं षूब'[१२] होइगा।
टुक एक 'धीरे'[१३]।
सुलतांण फुरमाण 'देता ई हइ'[१४]।
'नारिंगी दो दो च्यारि बंटे दीयां'[१५]।
'पांच सोवन के टके देवरइ* धरे'[१६]।
'बे मालनी'[१७] 'आईयां'[१८] करे'[१९]॥

पाठान्तर—१. ध० एक दिवस देवर ढढणी मालणीका, का० एक दिन ढिढणी मालणीका। २. का० करया। ३. ध० पक्की नारंगी जंभीरीयां उदिला भरया,

---

* का० में यहाँ और है :

उहाँ दरबार आगै पुकारी। तब साहिजादै सुण्या। सुणत ही इंदर बोलाई। हां मालिणी हाजर। एते बीच हजूरी दोडे। पकर बांह इंदर ल्याए। फल साहिजादा के आगै धरया।

[इस अंशका अन्तिम शब्द प्रायः वही है, जो इसके पूर्वका है, इसलिए ज्ञात होता है कि पहले यह अंश हाशियमें बढ़ाया गया था, जिसको मूलमें सम्मिलित करते समय उक्त वाक्य दुहरा उठा]

का० पकीयां नारंजीयां जंभीरीयां दोना भरया, अ० पक्की नारिंग्यां जंभोरया भरयां। ४. ध० वांकी करया, का० बंकीयां कीयां। ५. ध० साहिजादां आगे, का० साहिजादा आगै। ६. ध० दुइ साहिजादाइं आपणइ हाथि कीयां, का० दोइ साहिजादे आपनै हाथ करया। ७. का० में यहाँ 'ए' और है। ८. अ० अगा (अग्गा), ध० आगां, का० आगा। ९. का० है। १०. का० साहिजादा। ११. ध० जोवन। १२. का० तौ षूब षूब षूब षूबका षूब। १३. ध० धीरी, का० धीरज धरणा। १४. ध० दई हइ, का० देता है। १५. का० नारंगी दोइ च्यार बाटि बाटि दीनी, ध० नारंगी दोइ दोइ च्यारि च्यारि बाटि दीयां, अ० नारीगी दो दो च्यारि बंटे दीयां। १६. का० पांच सोनोके टके देवरे छाव मे धरे, ध० पांच सोवनके टके दोइ धरे, अ० पाच सोवनके टकां दोवरइ भरे। १७. का० बे मालिनीयां, ध० अबे मालिनी। १८. का० आया, ध० आई। १९. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी है, जो है '४'।

अर्थ—एक दिन देवर ढाढिनीने मालिनका वेष किया। [उसने] पक्की नारंगियाँ और जंभीरियाँ [छाबड़ेमें] भरीं। बाँकी केश [-सज्जा] की। [तदनन्तर] उन्हें उसने हेलापूर्वक शाहज़ादेके आगे (सामने) [लाकर] रखा। [उनमें-से] दो शाहज़ादेने अपने हाथोंमें कर लीं, [और बीबी बिवानांसे कहा,] "आग़ा, यह मालिन अच्छी है।" [आग़ा ने कहा,] "हाँ राजकुमार, इसका यौवन अच्छा है। अच्छेको अच्छा ही [प्राप्त] होगा, [किन्तु] एक क्षण (थोड़े समय तक) धीरज [रखने] से। [अब] सुलतान फ़रमान देता ही है।" शाहज़ादेने दो-दो चार-चार नारंगियाँ बाँट दीं, [और] सोनेके पाँच टके देवर ढाढिनीने रख लिये। [तदनन्तर शाहज़ादेने उससे कहा,] "रे मालिन, तू आया करे।"

टिप्पणी—एकसि = एक (दे० 'दक्खिनी हिन्दी' : बाबूराम सक्सेना, पृ० ५२)। बंक <वंक <वक्र = बाँका, सुन्दर। वेली <वेल्ल + इका [दे०] केश, बाल। हेला = आयास-हीनता, सरलता। हथ <हत्थ <हस्त = हाथ। खूब <खूब [फ़ा] = भला, अच्छा, सुन्दर। फुरमाण <फरमान [फ़ा०] = अनुशासन-पत्र, राजकीय अनुशासन-पत्र।

[५]

'टुक एक गया मालनी फिरि'[१] आई।[२]
'साहिजादे आपणी जंभीरियां'[३] 'सुहंगीयां न बेचुंगी'[४]।
[५]'आगइ'[६] दावल 'दानसवंद'[७] की 'पूंगरी'[८] हइ।

'सु'[9] मुहर मुहर 'जंभीरियां मांगती हइ'[10] ।[11]
'जउ'[12] न देहुगे 'तउ'[13] सुलतांण सुं कहुंगी ।
एकस एकस कुं 'गहुंगी'[14] ।
'एताल ल्यावहु'[15] ।
'खाइयां'[16] क्या कहावइ ।
'जिनि खाइयां ते दिषावहु'[17] ।
'नांतर मुहर मुहर जंभीरियां नकी पाछी'[18] 'ल्यावहु'[19] ।।[20]

पाठान्तर—१. का० मालिनी बाहिर जाइ टुक एकै फिर। २. का० में यहाँ और है : क्या बात बनाई। ३. का० साहिजादा अपने सोनइये लेहु, हमारीयां नारंगीयां जे भीरीया फेर देहु। ४. ध० सुहंगी न बेचउंगी। ५. का० में यहाँ और है : साहिजादा बोल्या मुहगी कोंण न लेहुगा तेरी। ६ का० में यहाँ 'इहां' और है। ७. का० दानसमंद, अ० दानसबंध। ८. का० में यहाँ और है : हर रोज लेती। ९. का० में नहीं है। १०. का० जंभीरी देती है। ११. का० में यहाँ और है : हुं तो साहिजादा जानि आई, मोकुं दोइ मुहरकी टाप षाई, जंभीरीयां तो खाई, टुक एक मौरी आई। १२. का० साहिजादा। १३. का० तो मै। १४. ध० गहि, का० ग्रहुंगी। १५. का० में नहीं है। १६. का० षाई। १७. ध० जिणि षाइयाते दिषाई, का० जिण षाई सो दिषावो, अ० गिनि षाई हुइ ते दिषावहु। १८. ध० नही तर महुर महुर जंबीरियां की पाछी, का० नही तो मुहुर मुहुर जंभीरी नकी पाछी। १९. ध० मगावो, का ल्यावो। २०. अ०मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '५'।

अर्थ—एक क्षण, (थोड़ा ही समय) गया और मालिन लौट आयी। [उसने कहा,] "शाहज़ादे मैं अपनी जंभीरियाँ सस्ती न बेचूँगी। आगे दावर दानिशमन्दकी [एक] बालिका (कन्या) है; वह [मेरी] जंभीरियाँ [प्रत्येक] एक-एक मुहरकी माँग रही है। यदि तुम [मेरी जंभीरियाँ वापस] न दोगे, तो मैं सुलतानसे कहूँगी और एक-एकको [तुमसे वापस] ले लूँगी। [तुम] इसी समय [उन्हें] लाओ। 'खायी हुई' क्या कहलाती हैं ? जो खायी हुई हैं, उन्हें दिखाओ, नहीं तो [उन] ख़ालिस (अछूती) जंभीरियोंके पीछे एक-एक मुहर लाओ।"

टिप्पणी—सुहंग = सस्ता, कम दाममे प्राप्य। दावल < दावर [फ़ा०] = न्यायकर्त्ता। पूंगरी < पुद्गल + इका = बालिका, अथवा < पौगण्ड + इका = किशोरी। एकस = एक (दे० 'दक्खिनी हिन्दी', बाबूराम सक्सेना, ६-७९)।

एनाक [तुल० इत्ताहे<इदानीम्] = इसी समय। नकी<नकी [अ०] विशुद्ध, खालिस।

[६]

'अग्गा आगम[1] नट्ठियां, बीबी' बीहून'[2] दम्म।
साहिब 'सारी'[3] वत्तडो, साहिजादे सुं कम्म ॥[4]

पाठान्तर—१. ध. आगां आगमि। २. का. बीहूण, ध. बीहूम। ३. का. सारै, ध. सारइ। ४. अ. में इस अंशकी क्रमसंख्या भी दी हुई है, जो है '६'।

अर्थ—[ढाढिणी ने कहा,] "आगा तो पहले ही भाग चुकी है, बीबी बिवानां चुप है। साहिबाने बात चलायी [है], और [मुझे] काम शाहज़ादे-से है।"

टिप्पणी—आगम = आगे, पहले। नट्ठ<नष्ट = भागा हुआ। दम्म्< दम्<दमय् = निग्रह करना। सार्<सारय् = प्रेरणा करना, ले जाना, चलाना। वत्तडी<वत्ता<वार्त्ता = बात। कम्म<कर्म = काम, प्रयोजन।

[७]

पेरो साहि 'दुहाइयां'[1], 'झुट्ठी मालनि रुन्न'[2]।
'कुण स केही पुंगरी',[3] 'जिण मुहर जंभीरयां लिन्न'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. का. दुहाई। २. का. झूठी मालण रन्न। ३. ध. कोण स केसी, का. कोंण स केरी। ४. का. मुहर जंभीरी लंन, ध. जिण महुर जंबीरी लिन्न, अ. जिहि मुहर जंभीरयां लिन्न। ५. अ. में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है जो है '७'।

अर्थ—[राजकुमार ने कहा,] "फीरोज़ शाह की दुहाइयाँ, ऐ मालिन, तू झूठी है जो रो रही है। वह कौन है और कैसी वह पूँगरी (बालिका) है जिसने [एक-एक] मुहर की जंभीरियाँ ली हैं!"

टिप्पणी—रुन्न<रुण्ण<रुदित = रो रही। पूंगरी<पुद्गल + इका = बालिका, अथवा <पौगण्ड + इका = किशोरी।

[८]

'पकी जांणि जंभीरियां, 'उसका'[2] 'वरण सुहंदा झग्ग'[3]।
'जिसकी'[4] सूरति 'लोवतइं',[5] 'मेरे'[6] दीदे दूषण लग्ग ॥[7]

पाठान्तर—१. का० में यहाँपर और है : दावल दानसमंदकी साहिबां तिसका नाम : तास पटंतर का नही मै दिट्ठै सब ठाम। [यह दोहा भरतीका ज्ञात होता है]। २. ध० का० में यह शब्द नहीं है। ३. ध० वरण सोहंदा जग्ग, का० वर सोहंदै जग्ग। ४. का० उसकी। ५. ध० जोवतां, का० लोयतां। ६. ध० में यह शब्द नहीं है। ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दीउ है, जो है '८'।

अर्थ—[ढाढिणी ने कहा,] "मानो पकी जंमीरियाँ हों, [ऐसा] झक (निर्मल) और सुहाता हुआ उसका वर्ण है, जिसकी सूरत को देखते-देखते मेरे नेत्र दूखने लगे (दूखने पर आ गये)।"

टिप्पणी—लोव् <लोअ्<लोकय् = देखना।

[९]

'अवे'[1] 'मालिनीयाँ'[2] तूं 'इहि काम'[3] 'आई'।[4]
हां 'साहिजादे हूँ इहि'[5] काम आई।[6]
साहिब 'सौं*'[7] सूरत्तियां, 'हूं मालन'[8] 'इहि कम्म'।[9]
'जिउं किउं दक्खा वल्लियां'[10] 'जउ र विलग्गइ'[11] अंब॥[12]

पाठान्तर—१ का० वे। २. ध० का० मालनी। ३. का० इस काम, ध० इहां कामि। ४. का० में और है 'है'। ५. का० साहिजादा मैं इस। ६. का० में और है : तै कैसी है। ७. अ० सी (<सौ), का० सौ। ८. अ० हूं मलनी, का० मै मालन। ९. धा० इह कम्म, का० इस कंम, अ० इहि कांम। १०. ध० जिउं किउं देषां बेलीयां, का० वेली दाषा सदीयां, अ० जउ क्युं दखा (दक्खा) वल्लीयां। ११. ध० जिउं रि विलग्गा, का० जाणि विलग्गे। १२. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '९'।

अर्थ—[राजकुमारने पूछा], "[क्यों] हे मालिन, क्या तू इसी काम-से आयी [है] ?" [ढाढिणीने कहा,] "हाँ शाहज़ादे, मैं इसी कामसे आयी [हूँ]।

[उस] साहबासे अत्यधिक प्रसन्न होकर मैं मालिन इसी कामसे [आया] हूँ कि वह द्राक्षा-लता जिस किसी प्रकारसे [तुम] आमसे लग जाये।"

टिप्पणी—सु रत्ती <सु + रक्ता = अत्यधिक प्रसन्न। जउ <जइ <यदि। दक्खा <द्राक्षा। अंब <आम्र = आम।

[१०]

साहिजादे 'केही कहूं'[१], 'साहिब सूरति सुब्भ'[२]।
'जाने'[३] की करतारियां, लोयन 'हंदा'[४] लब्भ ॥[५]

पाठान्तर—१. का० केही कहां, ध० कैसी कहूं। २. का० साहिबां सूरति सब्भ, ध० साहिब सूरति सब्भ, अ० साहिब सूरति शुभ। ३. ध० का० जाणै। ४. ध० हंदे, का० हदै। ५. अ० में इस अंशकी छंद-संख्या भी दी हुई है, जो है '१०'।

अर्थ—[डाढिणीने पुनः कहा,] "मैं, ऐ शाहज़ादे, साहिबाकी उस शुभ्र सूरतको कैसे कहूँ ? उन लोचनोंके लाभको कर्ता भले ही जानता होगा !"

टिप्पणी—(१) केह <कीदृश् = किस प्रकारका। सुब्भ <शुभ्र। (२) लब्भ <लाभ।

[११]

'केसा के कसि बंधियां'[१], के छुट्टियां 'रुलंति'[२]।
जाणे 'सर्पनि अप्पणा'[३], चर चिट्ठुआ 'भषंति'[४,५] ॥

पाठान्तर—१. क० के केस कस बंधीया। २. का० रुलंदि। ३. ध० सापणि आपणो, का० सप्पण अप्पणा। ४. ध० करि चिंटला भषंति, का० चुणि चींटुला भषंदि। ५. अ०में इस अंशकी क्रम-सख्या भी दी है, जो है '११'।

अर्थ—"[उसके] केश या तो कसकर बँधे हुए हैं, और या तो खुले हुए लोट रहे हैं; [वे वेणीके साथ ऐसे लगते हैं] मानो साँपिन अपने चलते-फिरते (विचरण करते) हुए बच्चोंको खा रही हो।"

टिप्पणी—रुळ् <लुठ् = लोटना। सप्पण <सर्पिणी। चिंटुअ = शिशु।

[१२]

'अंगन'[१] चंद 'निलाट्टियां'[२], भ्रू 'तर'[३] नच्चइ नयण।
जाणे 'आण वधाइयां'[४], 'आगम'[५] 'हंदा'[६] मयण ॥[७]

पाठान्तर—१. ध० आंगण। २. ध० ललाटियां, का० नलाटीया। ३. ध०

का० तरि । ४. का० आणी बधीया । ५. अ० आगम । ६. ध० हुंदे । ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१२' ।

अर्थ—"उस अंगना (स्त्री) का ललाट चन्द्रमा [जैसा] है और उसकी भौंहोंके नीचे उसके नेत्र [इस प्रकार] नाचते रहते हैं, मानो वे मदनके आगमनकी बधाइयाँ ला रहे हों ।"

टिप्पणी—अंगन < अङ्गना = स्त्री । बधाई < बद्धावण < वद्धापिन = अभ्युदय-निवेदन और उसके प्रतीक स्वरूप दी जानेवाली भेंट, जो नारी-समाजमें प्रायः नृत्य गीतादिके साथ दी जाती रही है । मयण < मदन = कामदेव ।

[१३]

'वइंणी बंधि बिलंबिया,'[1] 'मुत्ती हेक रुलंति'[2] ।
'जाने सीपि सुमुष्षीयां'[3] 'कंठइ *कीर चुणंति'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. का० बेनी बद्ध बिलंबीयो, ध० बेणी बंधि बिलंबीया, अ० वइंणी विधि बिलंबीया । २. का० मोती एक रुलंदि, ध० मोती एक रुलंति, अ० मुत्ती हेक रुलंत । ३. का० जाणे सीप समंषीया, ध० जांणे सीप सुमुखीयां । ४. का० कांठै कीर चुगंदि, ध० कठै कीर चुणंति, अ० कठइ कीर चुणंति । ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है जो, है '१३' ।

अर्थ—"[जो] उसकी वेणीसे बँधा हुआ और विलम्बित है, [ऐसा] एक मोती [उसकी नासिकापर इस प्रकार] लोट रहा है मानो वह सीपियों (नेत्रों) के समक्ष ही हो और पासका कीर (नासिका) [उसे] चुन (चुननेका यत्न कर) रहा हो ।"

टिप्पणी—वइंणी < वेणी । मुत्ती < मौक्तिक = मोती । हेक < एक । रुल् < लुठ् = लोटना । कंठ < कण्ठ = समीप ।

[१४]

'ही उट्ठा दिट्ठाइयां, दीहा पंचइ च्यारि'[1,2] ।
जाणें 'नी नारिंगियां,'[3] बे अंगीया मझारि ॥[4]

पाठान्तर—१. का० में इस दोहेके पूर्व निम्नलिखित और है :

अधर सुढंका ढंकीया, झलड सोहंदे रूप ।
जांणे रक दुराईयां, नग पनीयां अनूप ॥

२. का० हीये ऊठा दिठाइयां दीहा पंच चयारि, अ० ही उठा दिठाइया दीहा पंचइ च्यारि। ३. का० नीसू नारंगीया। ४. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है १४'।

अर्थ—"चार-पाँच दिनोंसे [ही] उसके हृदय (वक्ष) उठे हुए दिखलाई पड़े [हैं], [और उसके कुच ऐसे लगने लगे हैं] मानो उसकी अँगियामें हूबहू दो नारंगियाँ हों।"

टिप्पणी—ही <हिअ <हृदय। दीह <दिवस। नी <निज = वास्तविक। वे <द्वि = दो।

[१५]

लंक 'धन कइ'[1] मुट्ठियां, 'बिध रसु रंगी'[2] बांम।
हत्था कांम 'सपीय भउ',[3] 'पिय हत्था भउ'[4] कांम ॥[5]

पाठान्तर—१. का० धनंषी, ध० घणुषइ। २. का० बिधरस अंगा, ध० बिध र सु रंगे। ३. का० त प्रीय भे, ध० कंपियो भयो। ४. का० प्रिय हत्था भै। ५. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१५'।

अर्थ—"उस स्त्रीकी कटिको मुट्ठीमें [पकड़] करके ही [जैसे] उस वामाको विद्ध (?) रस (प्रेम ?) में रँगा हो, [इसीलिए] कामके हाथ पीले हुए और उस प्रियाके हाथों (वश) में [वह] काम हो रहा।"

टिप्पणी—धन <धन्या = स्त्री। पीय <पीत = पीला। पीय <प्रिया।

[१६]

[1]'पाइ स रत्तां पंकजां'[2], अढ़ढी 'अंगुलियांह'[3]।
'जाणे राई बेलियां'[4] 'फूल्ली नीकलियांह'[5] ॥[6]

पाठान्तर—१. ध० में यहाँ और है :

जंघा रंभ नितंबीयां, केलि कहंदे षंभ।
काम कलिंदी सीचियां, जोवन हंदी अंभ ॥
अधर सुरंगा ढंकीया, डसण सुहंदा रूप।
जाणे रंक दुराइयां, नग पन्नीयां अनूप ॥

(इनमें-से दूसरा का० में स्वीकृत [१४] के पूर्व आ चुका है—देखिए

ऊपर।) २. का० पाव सरत्तां पंकजां, ध० पाय सरत्ता पंगजा। ३. का० अंगुलीयां। ४. का० जाणे राई अंबिया, ध० जाणे राई बेलियां, अ० जांणि राय वल्लीया। ५. का० फूले नीकलीयां। ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१६'।

अर्थ—"[उसके] चरण लाल पंकज हैं, और उनकी उँगलियाँ [ऐसी] सुन्दर हैं मानो राईकी बेलमें फलियाँ निकली हुई हों।"

टिप्पणी—रत्त < रक्त = लाल। अड्ढ < आढ्य = सम्पन्न; कदाचित् यहाँ-पर तात्पर्य है सौन्दर्य-सम्पन्नसे। राई < राइआ < राजिका। फूली = फली।

[१७]

[1]"बे मालनियां दिट्ठाइयां"[2], के 'सोनी'[3] गल्हरियांह।
[4]साहिब 'संची दिट्ठियां,'[5] 'लइ'[6] चलि संगरियांह॥[7]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है :

साहिजादा सचा जनम, साहिब लंते कभ।
जिम गै रंगी लदीया, तिहि मिलंदे सभ॥

२. का० मालणीयां तै दिट्ठियां। ३. ध० सोहणि, का० सूनी। ४. का० में यहाँपर और है : हां। ५. का० सचे दिषीया। ६. का० ले। ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१७'।

अर्थ—[शाहज़ादेने पूछा,] "रे मालिन, वह [तुझे] दिखी भी है, अथवा [तेरे-द्वारा] बातोंमें [हाँ] सुनी गयी है? यदि तूने साहिबाको सचमुच देखा है, तो मुझे साथ ले चल [और अपने वर्णनोंको सत्यता प्रमाणित कर]।"

टिप्पणी—सोनू < श्रु = सुनना। गल्हरी = बात। संगरी = साथ।

[१८]

'साहिजादे'[1] 'षर्था न होउ'[2], धरि 'खल्लरी षवेह'[3]।
डीवी 'डांग सुसिंगरी',[4] 'कमरि करंदा लेहि*'[5]॥[6]

पाठान्तर—१. का० साहिजादां। २.का० षर्थां न हो, ध० सत्ती न हु, अ० षथा न होउ। ३. ध० पल्लरी षवेह, का० षल्हडी षवेह, अ० षल्लरी खवेहि। ४. ध० डंग सु सिंगरी, का० डांग सुंगरी, अ० डांस स सांगरा। ५. ध० कमर

कसिदा लेह, का० कमरि करंदा लेहु, अ० धरि षल्लरी षवेहि (प्रथम चरणकी शब्दावली भूलसे दुहरा उठी है) । ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, जो है '१८' ।

अर्थ—[ढाढिनीने कहा,] "ऐ शाहज़ादे, तू उद्दीप्त न हो; तू [फ़कीरोंका वेष धारण कर और] खल्लरी (थैला) कन्धेपर रख तथा डीवी (हाँडी = भिक्षा-पात्र), डाँग (यष्टि), सिंगरी (शृंग) और कमरमें करन्दा (करण्डक = पेटिका) ले (धारण कर) ।

टिप्पणी—षथा <खित्तय [दे०] = दीप्त, प्रज्ज्वलित । खल्लरी <खल्लय < खल्लग [दे०] = थैला । खवा <खवय [दे०] = स्कन्ध, कन्धा । डीवी < दीपिका (?) = लघु प्रदीप (?) । डाँग <डंगा [दे०] = लाठी, यष्टि । सींगरी <शृङ्ग = विषाण । करंदा <करंडक = पेटिका ।

[१९]

[1]मालणीयां कहि 'नट्ठियां',[2] 'जाहि'[3] जमा की राति ।
दावल दानसमंद कै 'मांगि स' [4]तत्ता भात ॥

पाठान्तर—१. यह दोहा अ० मे नहीं है किन्तु कथामे आगे ही यह आता है कि शाहजादा जुमरातकी प्रतीक्षा करने लगा, और फिर जुमरातको ही वह साहिबाको उस ढाढिनीके साथ देख सका, इसलिए यह दोहा प्रसंगमें अनिवार्य है और क० मे भूलसे छूटा हुआ लगता है । २. ध० नीकल्या । ३. ध० जाहु । ४. ध० मंगिसु ।

अर्थ—"[और] तू जुमेरातको जा", यह कहकर [वह] मालिन भाग गयी, "तथा तू दावर दानिशमन्दके यहाँ [उस दिन] गरम भात माँग [तब तुझे साहिबाके दर्शन होंगे] ।"

टिप्पणी—नट्ठ <नश् = भागना । जमाकी राति <जुमेरात [अ०] = बृहस्पतिवार । तत्ता <तप्त = गरम । भात <भत्त <भक्त = उबाला हुआ चावल ।

[२०]

वचनिका : *'बीबियां आई ।'[१]
मालनी 'संच जाण्या'[२] ।
'साहिजादा सइतान र जाण्या ।'[३]
'जो आवे इता ही पूछता सदि हइ ।'[४]
'अबे जमाराति 'कदि हइ'[५] ॥
'पूछतइ पूछतइ जमाराति आई ।'[६]
बीबियां 'हरम द्वार'[७] धाई ।[८]
सुलाताण 'बाराम बारी आया'[९]
'एतइ बीच'[१०] साहिजादा 'जमा मसीति आया'[११] ॥[१२]

पाठान्तर—१. का में नही है । २. का० साच जाण्या, ध० संच जाण्या । ३. का० में यहां और है : मालणी गयी । बीबीयां आयी । [दूसरा वाक्य ऊपर इसके पूर्व आ चुका है और पूर्ववर्ती दोहेमें 'मालनियां कहि नद्वियां'में प्रथम वाक्यका आशय भी आ चुका है । इसलिए ये वाक्य प्रक्षिप्त लगते है ।] ४. ध० का० जोइ आवै तिसकूं (तिसही–ध०) पूछै । ५. का० कब है । ६. ध० पूछतां पूछतां जुमाराति आई अ० अबे पूछतइ पूछतइ जमाराति आई । ७. ध० हरम दुवार, का० सब द्वार कुं, ध० हरम धार । ८. का० में और है : बीबीयां हरम द्वार जाती चीन्ही । बेगम बिबानां कुं ताजीम कीनी । [अनावश्यक विस्तार लगता है।] ९. का० अंदरतै बाहिर आये । १०. का० सलाम कै मिसि करि । ११. का० जमा मसीत कुं धाए । १२. अ० में इस अंशकी दो क्रम-संख्याएँ भी दी हुई हैं, पाँचवें वाक्यपर क्रम-संख्या '१९' है, अन्तिमपर '२०' ।

अर्थ—[इतनेमें] बीबी (बिबानां) आ गयी । मालिनने [शाहज़ादेको] सच्चा जाना । [किन्तु] शाहज़ादेने उसे शैतान [ही] समझा । जो आता, उससे वह पूछता ही रहता, "[क्यों] रे, जुमारात कब है ?" पूछते-पूछते जुमारात आ गयी । बीबी (बिबानां) हरमके द्वारको दौड़ी । सुल्तान परमेश्वरके बार-ए-आम (आम दरबार) में उपस्थित हुआ । इतने ही (इसी) बीच राजकुमार जुमा मसजिद आया ।

---

* का० में यहाँ और है : तुमहो दुनीयांदार साहजादे । उहाँ दावल कै आगै बहुत दिवादे । साहिबां हाथ टुकरा एक पावै । हमारे कहै बुरां मत भावै । फकीर होवै आसका लेषे । तो दावलके दरबार साहिबां देषै । [यह अंश अन्य प्रतियोंमें नहीं है और पूर्ववर्ती दोहेके कथनका विस्तार-मात्र है, इसलिए प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता है ।]

टिप्पणी—सइतान <शैतान [अ०] = धर्मसे भ्रष्ट करनेवाली एक प्रकार-की शक्ति। सदि = ही। कदि <कदा = कब। बाराम <बार-ए-आम [फा०] = दरबार-ए-आम, सार्वजनिक राजसभा। बारी [फा०] ईश्वर। जमा <जुमा [अ०] = शुक्रवार, शुक्रवारकी नमाज। मसीति <मसजिद।

[२१]

[१]'दरेस सइ पंच'[२] 'आसाउरी'[३] करते हइ।
'दरेस सइ पंच'[४] 'भांग के नूते'[५] दीदे 'घूरते'[६] हइ।
'दरेस सइ पंच'[७] षुदाइ की बंदिगी करते हइ।
'दानसवंद कइ घर हतइ सहन केहु की वाटइ चाहते हइ'[८]॥[९]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है: तहा षलकका तमासा देष्या। [यह वाक्य प्रासंगिक है किन्तु अन्य दो प्रतियोमे नही है, इसलिए सन्दिग्ध लगता है। २, ४, ७. ध० दरवेस सइ पांच, का० दरवेस सुं पंच। ३. ध० का० राग आसाउरी। ५. का० मूठी भांगकी षाई है, ध० भागिके भूते। ६. ध० घोरते। ८. ध० दानसवंदके घर हतइ सहनको की बाट चाहते हइ, का० दरवेस सै पांच जिकर करते हैं, ध० दानसबंधन कइ घर हतइ सहन केहु की वाटइ चाहते हइ। ९. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है और वह है '२१'।

अर्थ—[वहाँ उसने देखा,] पाँच सौ दरवेश (फ़क़ीर) [राग] आसावरी कर रहे हैं, पाँच सौ दरवेश भाँग (भग) के द्वारा प्रेरित (नशेमें आये हुए) आँखें घूर रहे हैं, और पाँच सौ दरवेश (फ़क़ीर) परमेश्वरकी सेवा (प्रणति) कर रहे हैं। और वे दानिशमन्दके घरसे सहन तक किसीकी बाटमें देख रहे हैं।

टिप्पणी—दरेस <दरवेश [फ़ा०] = फ़क़ीर। नूत <णुत्त = प्रेरित, क्षिप्त। बंदगी [फ़ा०] = सेवा, प्रणति।

[२२]

साहिजादे चादरि सिर उपरि (उप्परि) लीनी।
दोस्तान दोस्तान 'करि'[१] हस्तक्यां दीनी।[२]
साषका 'सोरंभ'[३] आया।

अगर 'जाती'[४] जनाया।
'गुलाबीयां जागी'[५]।
टुक एक जमा 'मसीति'[६] 'भिस्तक्यां भोरइ लागी'[७] ॥[८]

पाठान्तर—१. ध० करतइ। २. का० में इस वचनिकाके प्रथम दो वाक्यों-के स्थानपर है: तहा तरकस बंध हुदक कुं चोटां करते है। तहां षलक तमासा देषनै कु आवते है। षान षानजादे। मलक मलकजादे। मीयां मीया-जादे। बगसीस पावते है। सादाने वागे। निवाज करनै सुलतांन लागे ['हुदफ़' निशाना लगाने (लक्ष्य वेध) को कहते हैं। मसजिदके प्रसंगमें 'हुदफ़' का यह समां सर्वथा अप्रासंगिक लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि का० के किसी पूर्वजमे ये दो वाक्य छूट गये थे अथवा अपाठ्य हो गये थे; इन्हीकी पूर्ति उसमे किसीने 'हुदफ़' की कल्पना करके की है।] ३. ध० सुवास। ४. ध० जती का। ५. का० गुलाब गई। ६. का० मस्जीति। ७. ध० भिस्तकी घोर भागी, का० [भि] स्ति कै भोले भई। ८. अ० के इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '२२'।

अर्थ—राजकुमारने चादर सिरके ऊपर कर ली और 'दोस्तो' 'दोस्तो' कहकर उपस्थित लोगोंको उसने हस्तकियाँ दीं। शाख़ (पक्वान्न-विशेष) की सुरभि आयी जब उसमें अगर और जातीफल जान पड़े। गुलाबी [सुगन्ध] जाग पड़ी और जुमा मसजिद एक क्षण [के लिए] बिहिश्त (स्वर्ग) की भूलमें (जैसी) लगी।

टिप्पणी—हस्तकी = हाथ, मिलनेका हाथ। साख < शाख़ [फ़ा०] = सुहाल, पक्वान्न-विशेष। सोरंभ < सौरभ = सुरभि। ज < यदा = जब। भिस्त < बिहिश्त [फ़ा०] = स्वर्ग।

[२३]

'जो दरेस ज्युं था त्युं ही धाया'[१]।
'अबे षुदाइ की फिरस्तइ *आया'[२]।
'इते बीच साहिजादइं'[३] 'किसहू की डीबी
किसहू की डांगी'[४] 'किसहू की षालरी चोरी'[५]।
'दीतु'[६] लीया 'दुनया बिछोडी'[७] ॥[८]

पाठान्तर—१. का० ठौर ठौर ते दरबेस धाए। २. ध० अबे षुदाइके फिरस्ते आए, का० दौरो बे षुदाइके फिरस्ते आए, अ० अबे षुदाइकी फिरस्तंइ (फिरस्तइ) आया। ३. का० इतनै ही बीचि साह्जिादै। ४. ध० में यह वाक्यांश नही है, का० किसही की सहन क डीबी किसही की डांगरी, अ० किसऊ (<किसहू) की डी किसऊ (<किसहू) की डांगी। ५. का० किसही की षलरी चुराइ लीनी। ६. का० दीन। ७. ध० दुनियारी, का० दुनिया तरक दीनी। दोसतान दोसतांन करि दोस्तपोसी कीनी। ८. अ० में इस अंश की क्रमसंख्या भी दी हुई है और वह है '२३'।

अर्थ—जो दरवेश (फ़क़ीर) जैसा था, वह वैसा ही दौड़ पड़ा [और कहने लगा] "रे, ख़ुदाका फ़रिश्ता (दूत) आया।" इसी बीच शाहज़ादेने किसी [दरवेश] की डीबी (हाँडी = भिक्षा-पात्र), किसी [दरवेश] की डाँगी (यष्टि) और किसी [दरवेश] की खल्लरी (थैली) चुरा ली। उसने [अब] दीन (धर्म) [का वेष] लिया और दुनिया छोड़ी (दुनियादारीका वेष छोड़ा)।

टिप्पणी—फिरस्ता < फ़िरिश्तः [फ़ा०] = देवदूत। डागी < डंगा [दे०] लाठी, यष्टि। खल्लरी < खल्लय [दे०] = थैला।

[२४]

दीवे 'लग्गे'[१]।
'सादा नइं वग्गे'[२]।[३]
'निवाज करणइ सुलतांण लग्गे'[४]।
इतई बीच साहिजादा दावल कइ दरवारि जाइ 'वग्गे'[५]॥[६,७]

पाठान्तर—१. ध० लागे, का० जागे। २. का० सादीनां वागे, ध० सादाना बगे। ३. ध० मे और है : तारां तगे। ४. का० सब कोऊ निवाज करने लागे। ५. ध० रगे। ६. का० में यह वाक्य नहीं है। ७. अ० मे इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है, और वह है '२४'।

अर्थ—दीपक लग (जल) गये और शब्दों (वाद्यों) को बजाया गया। सुलतान नमाज़ [अदा] करने लगा। इसी बीच राजकुमार दावर [दानिश-मन्द] के द्वारपर जा पहुँचा।

टिप्पणी—दीवा<दीअअ<दीपक । साद<सद्द<शब्द = वाद्य । दावल<दावर [फ़ा०] = न्यायकर्त्ता । वग्<वल्ग् = जाना, गति करना । दर [फ़ा०] दरवाज़ा । बार<द्वार = दरवाज़ा ।

[२५]

'अप्पाण पर डर ।
गया जे आण मर ।'[१]
बे दावल 'दानसवंद'[२] का घर ।
दोस्तान दोस्तान 'भत्तु लाओ'[३] ।
'कुछु षाहु'[४] 'कुछ'[५] षुलावहु ॥[६], [७]

पाठान्तर—१. ध० आपनपर उरु गया जुवानु मेर, का० आपन डर पर डर, जोगन गए मर । २. का० दानसमंद, अ० दानसबंध । ३. का० तत्ता भत्तु ल्याव । ४. का० कछु पावहु । ५. का० कछु । ६. का० में और है : ल्याव न तत्ते भात । ७. अ० में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है और वह है '२५' ।

अर्थ—अपना और पराया (अपने और परायेका) डर गया, और जो आन (अभिमान) था, वह मर गया । [शाहज़ादेने कहा,] "रे, यही दावर (न्यायकर्ता) दानिशमन्दका घर है ! दोस्तो, दोस्तो, भात लाओ, कुछ खाओ और कुछ खिलाओ ।"

टिप्पणी—अप्प<आत्म । आण<आज्ञा; किन्तु यहाँपर आशय 'अभिमान' से है । भत्त<भक्त = भात, उबाला हुआ चावल ।

[२६]

'साहिबां सहिन क्यां'[१] भरी हुइ ।[२]
देवर ढढ़िढनी 'अगाइ'[३] षरी हुइ ।
'दरेस दोस्तांन भत्तु लइ आवनइ हुइ'[४] ।[५]
दीदे भूषे 'दुहूं के'[६] मुझइ 'धावनइ*'[७] हुइ ॥[८]

पाठान्तर—१. का० आगे साहिबां सहनका, ध० साहिब्यां सहिन क्यां । २. ध० में पिछली वचनिका [२५] के दावल' शब्दसे आगे यहाँतकका अंश नहीं है—जो भूलसे छूटा हुआ है । ३. का० आपै, अ० अगइ (= आगइ) ।

४. ध० दरवेस दोस्त भात लेहइ कि न लेहइ आवणइ ही, का० दरवेस दोस्तांन तत्ता भात लेते हैं। ५. का० मे यहाँ और है : एते मैं साहिजादा आवै है। ६. ध० हइ । ७. ध० ध्यावणइ आए, का० सोचना, अ० धावन । ८. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '२६'।

अर्थ—[शाहज़ादेने देखा] साहिबा सखियोंकी (से) भरी है और देवर ढाढिनी [उसके] आगे खड़ी है। [ढाढिनीने कहा,] "दरवेशो और दोस्तो, [तुम्हारे लिए] भात ले आना है। दोनोंके नेत्र भूखे हैं, [जिससे] मुझे [उनके लिए] दौड़ना है।"

टिप्पणी—सही<सखिन् = सहेली। भत्त<भक्त = भात, उबाला हुआ चावल।

[२७]

[१]'पेरो साहि साहिजादा 'कुतबदी'[२]
दावल 'दानसवंद'[३] 'साहिजादी साहिबां'[४]
ढढ्ढनी गाइबां 'ही'[५] 'गुमांन'[६] बोली
[७]साहिबां 'दीदे'[८] 'उनइ'[९]।
'वुन्नइ*'[१०] साहिजादा षरा हइ।[११]

पाठान्तर—१. ध० का० में 'सुलतान' और है। २. का० कुतबदीन। ३. का० दानसमंद। ४. ध० साहिजादी साहिबा कूं, का० साहजादा दोनूं की नजर एक हुई। ५. का० में नही है। ६. ध० गुमानि। ७. का० में 'अए' और है। ८. ध० दीदो, का० में यह शब्द नही है। ९. ध० नइ, का० उनए। १०. ध० विनइ, का० विनए, अ० दुन्नइ (<वुन्नइ)। ११. अ० में इस अंश-की क्रम संख्या दी हुई है और वह है '२७'।

अर्थ—"फ़ीरोज़शाहके शाहज़ादे कुतुबुद्दीन" [ढाढिनीने कहा,] "[यह है] दावर दानिशमन्दकी शाहज़ादी साहिबा", ढाढिनीने ग़ैबों (परोक्ष) में ही अभिमानपूर्वक कहा। "साहिबा, नेत्रोंको ऊँचाकर, शाहज़ादा उद्विग्न ही खड़ा है।"

टिप्पणी—गाइब<ग़ैब [अ०] = परोक्ष। गुमान [फ़ा०] = घमण्ड, अहंकार, गर्व। उनव्<उण्णाम्<उद् + नमय् = ऊँचा करना। वुन्न<उण्ण [दे०] = उद्विग्न।

[२८]

दूहा : दीदे 'दिग्घ उचाइयां',[१] 'साहिब'[२] साहिब 'अंगि*'[३] ।
जाणे 'अग्गि अणंगियां, पडी'[४] 'पुराणइ दंगि'[५] ॥[६]

पाठान्तर—१. ध० दिघ उचाहियां, का० दिग्ग उचाईए, अ० दिध उचाइयां । २. का० साहिबां । ३. का० मे नहीं है, अ० अंगा (<अंगी< अंगि) । ४. ध० आगि अनंगिया परे, का० अंगनि अंगीया परे, अ० अग्गि (=अग्गि) अणंगिया पडी । ५ ध० पुराणे दंग, का० पुराणे द्रंग । ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '२८' ।

अर्थ—साहिबाने साहब (शाहज़ादे) के शरीरपर जब [अपने] बड़े नेत्र उठाये, तो [शाहज़ादेको ऐसा प्रतीत हुआ] मानो [किसी] पुराने द्रंगमें [आक्रमणकारी] अनंग [के जलते हुए अग्निपिण्डों] की आग पड़ गयी हो [जिससे उसमें हलचल मच गयी हो] ।

टिप्पणी—पुराण = पुरातन, पुराना । दंग < द्रङ्ग = महानगर ।

[२९]

[१]'साहिज़ादे' [२]साहिबीयां, ढढ्ढनि ढुंढे 'मंझि'[३] ।
जाणे जीवण इक्करा, 'बे पुड कीन्हा भंजि'[४] ॥[५]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ 'ढढणी वायक' और है। २. का० साहिजादां । ३. का० मुझ । ४. ध० बे पुर कीन्हें भंजि, का० दोइ पुड काना मंझ । ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '२९' ।

अर्थ—ढाढिनीने [इस समय जब] शाहज़ादे और साहिबामें मध्य (अन्तर) [के तत्त्व] ढूँढे, तो [उसे ऐसा लगा] मानों एक ही जीवनको तोड़कर दो पुटों (शरीरों) में कर दिया गया हो ।

टिप्पणी—मंझ < मध्य = अन्तर । इक्करा < इक्क + डा < एक = अकेला । बे < द्वि = दो । पुड < पुट = पात्र, शरीर ।

[३०]

[1]वचनिका : साहिजादे के षवे 'फुरकणइ'[2] लागे।
मालिनी के 'उंसान (औसान)'[3] भागे।[4]
साहि साहिबां 'उंचाई'[5]।
तउ कहइंगे ढढ्ढिनी 'तइ'[6] हुई बुराई[7]॥[8]

पाठान्तर—१. का० में यह पूरी वचनिका परवर्ती दोहेके बाद आयी है। पुनः का० में इसे 'बात' कहा गया है और इसमें प्रारम्भमें ही निम्नलिखित वाक्य और आता है : ढढणी साहिजादा कै दिलकी बात पाई। साहिजादा साहिबा कु ले जाण करता है। ग्रासकीके दीदे भरता है। २. का० फरकणै। ३. का० औसान। ४ का० में यहाँ और है : साहबा कै रंग राता है। जोवण कै मद माता है। ५. ध० ऊंचाई, का० उठाई, अ० उपारी। ६ ध० थी। ७. का० में यहाँ और है : ढढणी न होत तौ साहिबा कुं ले जाता। तब ढढणी कह्या। अैसीन बागा। सुलतांन सुनैगा। तो तुं न लाजैगा। तेरा उपजस परहन वाजैगा। साहिजादा वायक। मेरा जीवन साहिबां। सुलतांन दुहाई। ८. अ० में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है, और वह है '३०'।

अर्थ—शाहज़ादेके खवे (कन्धे) फड़कने लगे, [तो] मालिन (ढाढिनी) के होश-हवास भाग गये (उड़ गये)। [उसने सोचा,] '[यदि] शाहज़ादेने साहिबाको उँचाया (उठाया—भगाया), तो [लोग] कहेंगे, यह बुराई ढाढिनीसे हुई है।

टिप्पणी—खवा < खवय [दे०] = स्कन्ध, कन्धा। उंसान < औसान [फ़ा०] = होश-हवास।

[३१]

[1-2]'साहिब सारंगी'[3] नयण, 'सारंगा रिपु साहि'[4]।
अंषी 'अंषिनु वट्टडी'[5], 'जाणि गिलंदा ताहि'[6]॥[7]

पाठान्तर—१. ध० ढढणी वाक्य, का० ढढणी वायकं। २. का० में और है 'साहिजादां'। ३. का० साहिबा सारंग अंगीयां। ४. का सारंग सा रिपु साइ। ५. का० अंषन वटलां। ६. का० जाणि गलंदी तांहि। ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३१'।

अर्थ—[उसने देखा,] साहिबा शार्ङ्गी (मृगी)के नेत्रोंवाली है, और शाह-ज़ादा शार्ङ्ग (मृग)-रिपु (सिंह) है, [और, राजकुमार उसे इस प्रकार घूर रहा है] मानो वह आँखों ही आँखोंके मार्गसे उसे निगल रहा है।

टिप्पणी—सारंगी <शार्ङ्गी = मृगी। वट्ट <वर्त्म = मार्ग। गिल <गृ = निगलना।

[३२]

'तू रस कामंधा'[१] भूषिया, 'साहित बीचु अजांणु'[२]।
'सांई'[३] 'हाथ'[४] पकावना, षांहि न कच्चा षांन॥[५]

पाठान्तर—१. ध० तू रस कामंदा, का० तू है रस का मंदा। २. ध० साहिब बीचीया जांण, का० साहि तबीब अजाण। ३. अ० सांइ (सांई)। ४. ध० हाथि, का० हथ। ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३२'।

अर्थ—[अतः ढाढिनीने कहा,] "[ऐ शाहज़ादे,] "तू रस (प्रेम) और काममें अन्धा और [साहिबाके लिए] भूखा हो रहा है, [अतः] इस बीच (समय) वशीकृत और अज्ञान [हो रहा] है। [इस तथ्यपर ध्यान दे कि] अपने हाथका [बनाया] पक्वान्न अधिक उत्कृष्ट होता है, इसलिए कच्चा खाना न खा (बिना प्रयासके मिलनेवाले फल-भोगकी इच्छा न कर) !'"

टिप्पणी—साहित <साधित = वशीकृत। सांई <स + अति = अतिशय-युक्त, उत्कृष्ट।

[३३]

'आसा 'अंधी'[२] ढढ्ढिनी, भोग करंदे 'गोर'[३]।
गज्जइ गयण 'न नच्चिया'[४], पावस हुंदे मोर॥[५]

पाठान्तर—१. यहांपर ध० तथा का० में है 'साहिजादा वाक्य (वायकं—का०)। २. ध० का० हदी। ३. का० रोग। ४. का० न नच्चही, अ० न नचीया (= नच्चिया)। ५. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३३'।

अर्थ—[शाहज़ादेने उत्तर दिया] "ऐ ढाढिनी, आशा अन्धी होती है, और उसका भोग करते-करते [मनुष्य] ग़ोर (क़ब्र) में चला जाता है, [जैसे देखो,] गगन नहीं गर्जन करता है तो भी प्रावृट्‌के मयूर नाच उठे (उठते) ही हैं।"

टिप्पणी—गोर < ग़ोर [अ०] = क़ब्र। गयण < गगन। पावस < प्रावृट् = वर्षा।

[३४]

'साहिजादे साहिबियां, साहि 'करंदा लल्लि'[२]।
लज्जा 'लोयिन नच्चणां, लोइ हसंदे कल्हि'[३]॥[४]

पाठान्तर—१. ध० का० में यहाँ और है: ढढणी वाक्य (वायकं–का०)। २. का० करंदा लल, अ० करंदे लल्लि। ३. ध० लोयन वंचणा लोक हसंदे कल्ल, का० लोयन नच्चणा लोक सुणंदा कल्ह। ४. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है और वह है '३४'।

अर्थ—[ढाढिनीने कहा,] "ऐ शाहजादे और साहिबा, शाह [यदि] इसे अधूरा रखता है, तो लज्जा [में] लोचनोंके [इस] नृत्यको लोक कल (दूसरे दिन) हँसता है (हँसेगा)।

टिप्पणी—लल्लि [दे०] = अधूरापन [दे० लल्ल = न्यून, अधूरा]। लोयन < लोचन = नेत्र।

[३५]

'ढाढिनियां सोना भला, 'लउ (लउं) नि साहिब संग'[२]।
दुनियां दुक्ख 'लगाइया',[३] अति जागणा अरंग॥[४]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : साहिजादा वाक्यं, ध० में है : साहिबा वाक्यं [साहिबा वक्ता नही हो सकती है, क्योंकि पूर्ववर्ती कथन ढढिणी-के द्वारा शाहजादेको सम्बोधित है]। २. ध० लीनी साहिब संग, का० लुणं साहिब अंग। ३. का० वीचाटणा। ४. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी है और वह है '३५'।

अर्थ—[शाहज़ादेने उत्तर दिया,] "ऐ ढाढिनी, साहिबाका संग ठीक-ही-ठीक भले सोनेके सदृश है। दुनिया (समाज) ने [भले ही] उस [संग] में दोष—(दुःख) लगा रखा है, और [इस हेतु] उसमें अति जागरण तथा अरंग (प्रीतिहीनता) है।"

टिप्पणी—नि < णिअ < निज = वास्तविक, ठीक ही-ठीक। दुक्ख < दोष। दुःख। अरग < अ + राग = रागहीनता, द्वेष।

[३६]

[1]'ढड्ढिनियां 'हीय हत्थ लइ, आरतियां करि हेरि'।[2]
'साहिजादे'[3] सिर उप्परइ, 'मो साहिबियां तन फेरि'[4]॥[5]

पाठान्तर—१. का० में और है : साहिबा वाक्यं। २. ध० हिय हाथ दे आरतीयां कर हेर, का० हीय अत्थि ले आरतियां कर हेर, अ० हीय हत्थलइ आरतियां करि हेरु। ३. का० साहिजादा। ४. ध० साहिबिया सिर फेर, का० मे साहिबां तन फेर। ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३६'।

अर्थ—[साहिबाने कहा,] "ऐ ढाढिनी, हृदयको अपने हाथमें लेकर [शाहज़ादेकी] आरतियाँ कर और उसे देख। राजकुमारके सिरपर तू मुझ साहिबाके तनको फेर (वार) दे।"

टिप्पणी—फेर् < फेड् < स्फेटय् = परित्याग करना, अथवा < फेल् [दे०] = फेंकना, दूर करना।

[३७]

[1]'जउ' [2]जोरां तउ तुज्झ 'ही'[3], 'जउ'[4] गोरां तउ तुज्झ।
एह करंदा मुज्झ 'हइ'[5], 'ईर' (और ?)[6] करंदा 'बुज्झ'[7]॥[8]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : 'ढढिणी वाक्यं' [किन्तु यह वाक्य स्पष्ट ही शाहज़ादेका है, जिससे ज्ञात होता है कि यह शब्दावली बादमें किसी व्यक्तिके द्वारा अनुमानसे जोड़ी गयी है। ऊपर [३५] में हमने देखा है कि ध० और का० भिन्न-भिन्न वक्ताओंका उल्लेख करती हैं; वहाँपर ध० का

उल्लेख अशुद्ध है। इसलिए ध० तथा का० दोनोंमें मिलनेवाले ऐसे संकेत जो अ० में नहीं मिलते हैं, सन्दिग्ध हैं।] २. का० जे। ३, का० सु। ४. का० जो। ५. का० सुं। ६. का० ह्लोर। ७. ध० का० तुझ। ८. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '३७'।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा] "[अब] यदि (संयोग होता है) तो मैं तेरा हूँ और यदि ग़ोरमें [जाता हूँ] तो भी तेरा ही हूँ। यह तो मेरा कर्तृत्व है, और (शेष) कर्तृत्व तू जाने।"

टिप्पणी—जोरा < जोअ + डा < योग = संयोग। गोर < गोर [अ०] = कब्र। करंदा < कर्तृत्व।

[३८]

[1]'इतनी वात 'करतइ सुलताण निवाज्या'[2] कीनी।
'दानसवंदइ'[3] 'अपनइ अपनइ घरह की' [4]'वाटयां लीनी'[5]।
'पुहर'[6] एक 'चा'[7] राति वीती।
'साहिजादइ आपणइ कपरे कीए'[8] डीवो 'डांग'[9] षल्लरी 'अतीती'।[10]
सुलतांण केलि की 'षडकी खडे हइ'[11]।[12]
'किताबइं रहीं किताबा त्यां लीनी'।[13]
देस देस 'मुलक मुलक'[14] 'कुं फुरमांण दीनइ'[15]।
'इतइ बीच साहिजादा पछइ सहं था'।[16]
'सुलतांण सुरति'[17] कीनी। वे 'कुतबदी' तुं[18] कहां 'था'[19]॥[20]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : 'वात'। २. का० करतां सुलताण निवाज। ३. का० दानसमंद, ध० दानसबंधइ। ४. का० आपणैं आपणैं घर की। ५. ध० वाद नीन्ही, का० वाट लीनी। ६. का० पहर। ७. ध० का० में यह शब्द नहीं है। ८. ध० साहिजादे अपणे कपरे लिए, का० साहिजादे कपरे फेरे। ९. ध० दंडी। १०. का० उतारी, ध० तारि अतीता कहुं दीधे। ११. ध० का० षिरकी षरे हैं। १२. का० में और है : साहिजादा अपनै मन मै डरे है। १३. ध० किताब तइं किताब तइं लीनी, का० किताब ही किताब दीनी। १४. अ० मुलकहु। १५. ध० कहुं फुरमाण दीने, का० का परवान कीना। १६. ध० इतइं बीचि पीछइ, का० एतै बीच साहिजादा पीछै ही था। १७.

का० सुलतांन कै नजर। १८. का० साहिजादा। १९. का० था। २०. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है और वह है '३८'।

अर्थ—इतनी बातें करते ही सुलताननें नमाज़ें कीं, और दानिशमन्दोंने अपने-अपने घरोंकी राहें लीं। एक ही पहर रात्रि बीती [थी], शाहज़ादेने अपने कपड़े पहने तथा डीबी हाँडी = भिक्षा पात्र डाँग (यष्टि) और खल्लरी (थैले) को उसने दूर किया।

सुलतान केकि (?) की खिड़कीपर खड़े हैं। किताबें रहीं (थीं); उन किताबोंको [सुलतानने] लिया, और सुलतानने देश-देश और मुल्क-मुल्कको फ़रमान दिये। इतने बीच शाहज़ादा पीछे उसके साथ था। सुलतानने उसको याद किया [और उससे पूछा,] "क्यों रे क़ुतुबुद्दीन, तू कहाँ था ?"

टिप्पणी—चा = ही (दे० दक्खिनी हिन्दी, डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० ५३)। अतीत् <अती = हटना, जाना दूर होना। किताबी = लेखक। सुरति <स्मृति = याद।

[३९]

चमांऊ 'हाथ'[1] वाह्या।
'हस्तइं हीं वात्यां कीया'[2] ।[3]
बंदा जमा मसीति 'बंदियहु' की 'बंदिगी'[5] देषणइ 'हु'[6] गया था।
'फिरस्ता फिरस्ता करते दरेस बलइ बलइ'[8] 'धाया'[9] ।
हमारे हस्तइं हस्तइं दीदे 'दूषणह'[10] 'आया'[11] ।[12], [13]

पाठान्तर—१. का० हस्त। २. ध० हसतौं ही बात कीनी, का० हसतै बात कीनी। ३. ध० में और है : अबे क़ुतबदी हसतइ किउं दीदे दुषाणे। ४. का० बंदीयन। ५. अ० बंदिकी। ६. का० में नहीं है। ७. का० में और है : साषका सोस्त आया। ८. का० दरवेस फते करता फरेसता फरेसता करता, अ० फिरस्ती फिरस्ती करते दरेस बलइ बलइ। ९. ध० धाये। १०. का० दूषणा। ११. ध० आये। १२. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या नहीं दी है, जो कि '३९' होनी चाहिए—यह छूट गयी है।

अर्थ—नमस्कारका (?) उसने हाथ वाहा (उठाया-चलाया) और हसते हुए ही [उसने] बातें कीं। [शाहज़ादेने कहा] "सेवक जुमा मसजिदको

[परमेश्वरके] सेवकोंकी बन्दगी (प्रणति – निवेदन) देखने ही गया था, कि 'फ़िरिश्ता' 'फ़िरिश्ता' करते हुए दरवेश (फ़क़ीर) मेरी ओर घूम-घूमकर दौड़ पड़े और हँसते हँसते मेरे नेत्र दुखनेपर आ गये।"

टिप्पणी—चमाऊं = नमस्कारका (?)। बाह् < वाहय् = चलाना। फिरस्ता < फ़िरिश्त : [फा०] = देवदूत। दरेस < दरवेश = फ़क़ीर। वल = मुड़ना, वापिस आना।

[४०]

हरमद्वार जाता सुलतान टुक एक 'मुसक्यानइ'[१]।[२]
'एतइ बीच साहिजादा'[३] 'बीबीय नु'[४] पकरि कइ 'उसही'[५]
महल 'मइ'[६] आन्या।[७]
'पलंग पर लेटया'[८]।[९]
दोदे 'दुराए'[१०]।
कपूर 'पानइ न भावइ'[११]।
'षानइ की क्या'[१२] 'चलावइ'[१३]।
बीबी दूष 'लइनइ कहइ'[१४] परि दूषना'[१५] न जाणइ।[१६]
'साहिजादे जागतइं वेल्हतइ जगी किरण सुविहाणइ'[१७]॥[१८]

पाठान्तर—१. का० मुसकाए। २. का० में और है: साहजादे कुं जुवानी जोर जनाया। आगिना मेटि बाहिर आया। ३. का० इतनी बीचि साहिजादे कुं। ४. ध० का० बीबीया। ५. ध० में नहीं है। ६. का० अंदर। ७. का० में और है: पर मनका मरम किस ही न जांण्या। ८. ध० लोटाया। ९. का० में और है: लेटते ही। १०. अ० दुरार (<दुराए)। ११. का० पान न भावइ, ध० पानइ न षाइ। १२. का० तो षावणेकी कोंण। १३. ध० चलाईये। १४. ध० लहइ। १५. ध० पर दुष। १६. का० में यह पूरा वाक्य नही है। १७. का० साहजादे कुं विलपत रैन विहावे, अ० साहिजादे जागतइं वेल्हतइं जगा (<जगी) किरण सुविहाणइ। १८. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '४०'।

अर्थ—हरमके द्वारपर जाते हुए सुलतान एक क्षण मुसकाये। इतने ही बीच शाहज़ादा बीबी (बिवानां) को पकड़कर उसी [के] महलमें ले आया। वह पलंगपर लेट गया और उसने नेत्र छिपा लिये। [यदि] कपूर और पान ही न अच्छे लगें, तो खानेकी क्या चलाइए? बीबी (बिवानां) [उसका]

दुःख लेनेको कहती थी पर [उस] पीड़ाको नहीं जानती थी। शाहज़ादेके जागते और कलझते [रात्रि बीत गयी और] प्रभातमें किरणें जाग पड़ीं।

टिप्पणी—वेल् <वेलल [दे०] = काँपना, कलभना, छटपटाना।

[४१]

'इतनी वात्या करतइ साहिजादइ जह्मत्यां कीन्ही'[1]।
दुनी साहिजादइ की[2] 'अइ मत्यां'[3] लीनी[4] ॥

पाठान्तर—१. का० इतनै बात करता साहजादै जहमतीया कीनी। २. अ० मे 'की' नहीं है। ३. का० इयां मतीयां, ध० की मतीयां। ४. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '४१'।

अर्थ—इतनी बातें करते हुए शाहज़ादेने ज़हमत कर दी, [क्योंकि] दुनिया (सांसारिकता—ऐन्द्रियता) ने शाहज़ादेकी यह मति (बुद्धि) ले ली।

टिप्पणी—जह्मति <जह्मत [फ़ा०] = आपत्ति, बखेड़ा।

[४२]

[1]"फजरि हूई'[2] 'तबीबइ तबीब लाग्या'[3]।
'ओषदइ ओषद माग्या'[4]।
'बीबियां'[5] सहित सुलतांण 'जाग्या'[6]।
महल 'मइ'[7] आवनइ 'इंद्र का गर्ब भाग्या'[8] ॥[9]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : बीबीयां जागी। कहनै लागी। बीबीयां सहत अगां जागी। अफताबका किरन फूटत नही। सब बीबीयां फरपनै लागे। २. ध० का० में नहीं है। ३. ध० तबीबां तबीब लाग्या, का० तबबा तबीब (<तबीब) लागे। ४. का० में नही है। ५. का० हुरमां। ६. का० जागे। ७. का० तै। ८. का० इयुं इंद्रका गर्ब भागे। ९. अ० में इस अंशकी क्रम संख्या भी दी हुई है और वह है '४२'।

अर्थ—प्रभात हुआ। वैद्य-ही-वैद्य [उसके उपचारमें] लग गये और उन्होंने ओषधें ही-ओषधें माँगी। बीबी (बिवानां) के साथ सुलतान [भी] जागा। महलमें उसके आते (पधारते) ही इन्द्रका [भी] गर्व जाता रहा।

टिप्पणी—तबीब [फ़ा०] = वैद्य।

[४३]

षांन षांनजादे ।[1]
मलिक मलिकजादे ।
'मीयां मीयांजादे'[2] ।
'दरबार देषतइ दरिया का गर्ब वादे'[3] ॥[4,5]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ 'मीर मीरजादे' और है। २ का० में यह वाक्य-खण्ड नही है। ३. का० दरबार जुरे षरे है। ४. घ० में इस वचनिकाका कोई वाक्य नहीं है। [उसमें यह छूटा हुआ लगता है, क्योंकि उसी शाखाकी दूसरी प्रति का० में यह है।] ५. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '४३'।

अर्थ—[उसके साथमें] खान और ख़ानज़ादे, मलिक और मलिकज़ादे मियां और मियांज़ादे [इतने थे कि] उस दरबारको देखते ही समुद्रका गर्व चला जाता।

टिप्पणी—वाद् <वा = गमन करना।

[४४]

[1]'तबीब तमांम सब सुलताण कोके'[2] ।
'दानसवंद'[3] पानी अंजरणइ लागे' ।[4]
'मंत्रहु परजनइ लागे'[5] ॥[6]

पाठान्तर—१. का० मे यहाँ और है : तिस समय आवते पातिसाह इंद्रका गर्व घट्या। उस राउ के उभार घर दरबार उपड्या। ३. अ० दानसबंध। ४. यह वाक्य का० में नहीं है। ५. घ० मित्रहुँ परजरणे लागे। ६. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '४४'।

अर्थ—समस्त वैद्योंको सुलतानने बुलाया। दानिशमन्द [आ-आकर] अंजलियोंमें पानी लेने लगे और मन्त्रोंको [पढ़-पढ़कर उसे] पिलाने लगे।

टिप्पणी—कोक् <कोक्क् [दे०] = बुलाना, आह्वान करना। अंजरण = अंजलीमें लेना। परजण <पायन = पिलाना, पान कराना।

[४५]

जोइ 'दानसवंद'[१] आवइ पानी 'अंजरइ'[२] ।
'तिसही सुं'[३] पुकारइ ।
'अवे साहिबां'[४] 'नजरि' [५]साहिबां नजरि ।
ना जाणुं 'नमासा'[६] न जाणुं फजरि ॥[७]

पाठान्तर—१. का० दानसमंद, अ० दानसबंध । २. ध० अंजरणे पिलावइ, का० अंजरी भरै । ३. ध० किसही हुई हुई । ४. ध० का० में नहीं है । ५. का० नजरि बे । ६. ध० का० निमासाम । ७. अ० में इस अंशकी क्रम-संख्या भी दी हुई है, और वह है '४५' ।

अर्थ—जो ही दानिशमन्द आता और अंजलीमें पानी लेता, [शाहज़ादा] उसीसे पुकारता, "अरे, साहिबांकी नज़र। साहिबांकी नज़र! न मैं रात्रि जानता हूँ और न प्रभात।"

टिप्पणी—नमासा < निवास = रात्रि। फजर < फ़ज्र [अ०] = प्रभात।

[४६]

'बार दुइ च्यारि यों ही पुकारयां ।[१]
'तव सुलतांण* रिसाणा' ।[२]
एक 'पुंगरा'[३] मेरइं 'हो पुराणा'[४] ।
'जमामसीति'[५] देषणइ गया था ।[६]
दरेस हु 'नजरि की दीया'[७] ।[८-९]

पाठान्तर—१. का० में नहीं है और अधिक है : सुलतांन मुझ सूं कही मैं जमामसीत गया था वर। वेसै किस ही नजर कीनी। २. ध० तब सुलतान रिसाया, का० सुलतांन दरवेस ऊपरि रिसांने, अ० तव सुरतांण रिसाणा। ३. का० पूंगरी। ४. का० सो भी पुरानै। ५. ध० जमा मसीति बंदिगीयोंकी बंदिगी। ६. का० में यह वाक्य नही है। ७. ध० वरका दीया। ८. का० में यह वाक्य नहीं है। ९. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या नहीं दी हुई है—जो कि '४६' होनी चाहिए।

अर्थ—दो चार बार [जब शाहज़ादेने] इसी प्रकार पुकारा, तब सुलतान रुष्ट हुआ। [और उसने कहा,] "मेरा एक [ही] पुराना (प्रौढ़ सयाना)

बालक था। वह जुमा मसजिद्को देखने गया था, तो दरवेशोंने [उसपर] नज़र कर दी।"

टिप्पणी—पुंगरा (१) <पुद्गल + क = बालक, अथवा (२) <पौगण्ड = किशोर।

[४७]

'हाला कइ [1]मारणा न 'थी'[2] ।
डीवो डांग षल्लरी 'न जाणुं कहां थी लीन्ही'[3] ।
'दिल्ली सहर मइ ए ज घेरे'[4] ।
'अबे फिरस्तइ फेरे'[5]॥[6]

पाठान्तर—१. का० हाल वै, ध० हलकै कउ। २. ध० था। ३. का० किसही की थी तो क्या हूवां, ध० न जाणा कही थी लीन्ही, अ० न जाणुं कहा थी। ४-५. का० मे ये वाक्य नही है, ध० में इनके स्थानपर है: डिली सहर मांहि फिरस्ते फिरस्ते फिरे। ६. अ० मे इस अंशकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '४७'। इसके बाद अ० में सम्मिलित क्रम-संख्या नही दी हुई है, बीच-बीचमे आनेवाले दोहोंकी स्वतन्त्र क्रम-संख्याएँ हैं।

अर्थ—[इस प्रकार] घेर करके उन्हें [मरे शाहज़ादेको] मारना नहीं [चाहिए] था। पता नहीं, डीवी (हांडी) डाँगी (यष्टि) और षल्लरी (थैली) उसने कहाँसे ले ली था। दिल्ली शहरमें जब इन्होंने [उसे] घेरा, [ये कहने लगे] "रे, यह तो फिरिश्तेने फेरा लगाया है।"

टिप्पणी—हाला <हाल. [अ०] = कुण्डल, मण्डल, घेरा।

[४८]

[1]इतनइ 'करत'[2] बीबी बिवानां 'आई'[3] ।
सुलतांण 'क्या रिसाई'[4] ।
फकीर 'मारणा'[5] हइ कि जियावणा हइ'[6] ।
[7]माल वारणा'[8] हइ ।
साहिजादे के सिर उपर अवारणा'[9] हइ ।[10]
'फेरणा हइ'[11] ।

'फेरतइ फेरतइ षुदाइ रहम करइगा'[12]।
षूब थी षूब होइगा'[13]।
तबीब तमांम दूरि 'करउ'[14]।
मेरे कुं 'सहम'[15] होइगा।

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है: इतनी बात करतै बीच द्रवेस पकरि मंगावै। २. ध० बात करतै, का० बीच, अ० करत। ३. का० आए। ४. ध० तुम्ह क्या रिसाणा। ५. का० मारने। ६. ध० घोना ही, का० जीवावने है। ७. ध० में यहाँ 'इहु' और है। ८. ध० षारणा, का० उवारनां। ९. धका० उवारणा। १०. का० में यहाँ और है: फकीरां मानुं माल उवारनां है। फकीरा नुं माल बांटना है। ११-१२. का० में नहीं हैं। १३. ध० सुलतान्न देना षूब हइ, का० षुदाइ षुदाइ षूबका षूब करैगा। १४. ध० रहो। १५. का० साहम।

अर्थ—इतना ही करते (कहते) बीबी बिवानां आयी। [उसने कहा] "सुलतान, क्यों रुष्ट हुए [हैं]? फ़कीरोंको मारना है या जिलाना है? इन्हें [शाहज़ादेके ऊपर] द्रव्य वारना है, और शाहज़ादेके सिरपर वारना है, फेरना है [और वार-फेरकर इन्हें देना है]। [द्रव्य] फेरते-फेरते परमेश्वर कृपा करेगा। भले [कार्य] से भला होगा। सारे वैद्योंको दूर करो। मुझे उनसे भय होगा।"

टिप्पणी—माल [फ़ा०] = धन, दौलत। सहम [फ़ा०] = भय।

[४६]

'अमा आणि आगइ धरी हुई'[1]।
[2]साहिजा मुझइ जाणता हइ।[3]
हां 'मां'[4] 'जांणता हूं'।[5]
'फेरिवे दस लाष टके सिर उप्परइं'।[6]
सुलताण 'दइंणा'[7] षूब हइ।[8]
'षूब तइ षूब होइ।'[9]
'साहिजा साहि कहां।'[10]
पलिंग तइं उतरि 'करि'[11]'सलांम कुं ताई हूआ'।[12]
'तहां'।[13]

'फेरिबे दस लाख टके उर (उंर) सिर उपरइं' ।[14]
'सुलतांण दइणां षूब हइ' ।[15]

पाठान्तर—१. का. मे नहीं है। २. का. मे और है: बीबी बिवाना बोली। ३. का० में यहाँ और है: पहचांनतां है। ४. का० अमा। ५. घ० का० मे नही है। ६. का० में नहीं है। ७. घ० दीया। ८.–१०. का० में ये वाक्य नही है। ११. का० भुइं आंगुली घरी। १२. का० सलांम करणैकी त्यारी करी, घ० सलाम कू ताइ हूवा हइ, अ० सलांम कुं तई हूआ। १३. का० दिठ मूठी, घ० आवत हीं। १४. का० भूत प्रेत डाकिनी शाकिनी कै घकै फरै। १५. का० मे नहीं है।

अर्थ—[तदनन्तर शाहज़ादेकी] माता (बिवानां) आकर उसके आगे (सामने) खड़ी हुई। [उसने पूछा,] "राजकुमार, मुझे जानता (पहचानता) है?" [शाहज़ादेने कहा,] "हाँ माँ, जानता (पहचानता) हूँ।" [बिवानांने कहा,] दस लाख टके इसके सिरके ऊपर फेरने हैं। सुलतान, दान करना भला है। भले कार्यसे भला होता है।" [फिर उसने शाहज़ादेसे पूछा,] "शाहज़ादा, शाह (सुलतान) कहाँ है?" [इस प्रश्नको सुनकर] शाहज़ादा पलँगसे उतरकर सुलतानको सलाम करनेको उद्यत हुआ [और बोला,] "वहाँ"। [बिवानांने कहा,] "दस लाख टके और [इसके] सिरके ऊपर फेरने हैं। सुलतान, दान करना भला है।"

टिप्पणी—खूब<खूब [फ़ा०] = अच्छा, भला।

[५०]

यों करतइं दिण 'गरथा'[1] राति पाई।[2]
'जाणु'[3] 'साहिजादे को'[4] दूसरी वइरणि आई।
'ओही हालु'।[5]
जोई दानसवंद अवइ पांणी 'अंजरइ'।[6]
तिस ही सुं 'यों कहइ'[8]।[9]
'साहिबां नजरि साहिबां नजरि।'[10]
न जाणु 'नमासा'[11] न जाणु फजरि।[12]

पाठान्तर—१. घ० गिरधा। २. का० में यह वाक्य नहीं है। ३. का० फिर। ४. का० साहिजादा कै। ५. घ० उही हाली, का० राति दिन तलफतै

विहाई। ६. ध० अंजरै पिलावै। ७. का० में यह वाक्य नहीं है। ८. ध० इंउ ही ज पुकारया। ९. का० मे यह वाक्य नही है। १०. का० में यह वाक्य भी नहीं है। ११. ध० निवासाम। १२. का० में यह वाक्य भी नहीं है।

अर्थ—इस प्रकार करते-करते दिन गला (गया) और [शाहज़ादेने] रात प्राप्त की; मानो शाहज़ादेकी दूसरी बैरिन आ गयी हो; जो ही दानिशमन्द आता [और] अंजलीमें पानी लेता, उससे ही [शाहज़ादा] यों कहता, "साहिबांकी नजर ! साहिबांकी नज़र ! न मैं रात जानता हूँ और न प्रभात !"

टिप्पणी—नमासा < निवास = रात्रि। फजर < फ़ज्र [अ०] = प्रभात।

[५१]

यों करतइ रोज दुइ च्यारि 'गले'[1] ।[2]
'तबीबह'[3] हाथ 'धरे'[4] ।[5]
'सुलतांण'[6] षांन छंड्या।
'बीबी हुं'[7] 'रोवणां'[8] मांड्या।
'दीली मांहि सोर परया'।[9]
'साहिजादे सुं सइतांण लरया'[10] ।[11]
तबीब 'होते ते'[12] सुलतांण कोके।
'आणि दरबार रोके'[13] ।
'साहिजादे कुं'[14] 'जीयावणा'[15] ।
'कइ साहिजादे कइ साथि 'गोर मइ वाहणा'।[16]

पाठान्तर—१. ध० गिरे। २. का० में यह वाक्य नहीं है। ३. का० तबीब थे तिसनै, अ० तबीबह। ४. ध० झारे, का० डारे। ५. का० में और है : सजनके उर जारे। ६. अ० सुरतांण। ७. का० बीबीयां। ८. ध० रोज। ९. का० दीली बीच सोर जागे। १०. का० साहिजादे कै सिर कुं तान लागे, ध० साहिजादा कुं सइतान लरया। ११. यहाँ अ० में और है : एक कहत बे सइताण मारणा। एक कहत बाबा आदम बिगोया। 'सइतान' वाली उक्ति तो पूर्ववर्ती वाक्यमे आ ही गयी है, केवल 'एक'के स्थानपर 'सइतान' की संख्या 'बे' = दो हो गयी है। १२. ध० तमाम सबका सब। १३. का० में नही है। १४. ध० साहिजादा। १५. का० जीलावनां। १६. ध० कइ साहिजादा स्यु सब घोरि वाहणां, का० नहीं तो तबीबां कुं साथि घोरमें वाहिना।

अर्थ—इस प्रकार करते-करते दो-चार दिन गले (व्यतीत हुए) और वैद्योंने हाथ रख दिया। सुलतानने खाना छोड़ दिया और बीबी (बिवानां)ने रोना प्रारम्भ किया। दिल्लीमें शोर पड़ गया कि शाहज़ादेसे शैतान लड़ पड़ा है। जो भी वैद्य थे, सुलतानने उन्हें बुलाया और दरबारमें उन्हें रोककर कहा, "तुम्हें शाहज़ादेको जिलाना है, अथवा शाहज़ादेके साथ [मुझे] तुम्हें भी कब्रमें झोंकना है।"

टिप्पणी—तबीब [फ़ा०] = वैद्य। कोक<कौक्क = बुलाना, आह्वान करना।

[५२]

[१]दावल 'कुं'[२] तीनि रोज 'हुए षाणा षायां'[३]।
साहिबां ढढणी सु 'कहे'[४]।[५]
दूहा। साहिबा वाक्य।
'ढढ्ढणि या'[६] णीको करी नीकीय[७] 'नारी देषु'[८]।
नारी 'अत्थि'[९] 'तदोष कुं'[१०] 'नत्थि'[११] 'तदोष न लेषु'[१२]॥

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : एतै बीचि दावल कै घरि ढाढणी गई। साहिबां बोली ढढणी सुं कह्या। २. का० का। ३. घ० भए षाणा षायां, का० भए षांणइ षाया, अ० हुए। ४. घ० कह्या। ५. का० में और है : ढढिणी बोली मैं क्या जाणुं, घ० में और है : कम वावा कू तीनि रोज भए षाणा षायां। हूं क्या जाणूं। ६. घ० ढढणि या, अ० ढढणि आ। ७. घ० षरी। ८. का० नीकीय नारी देषि, अ० नीषीय नाडी देषु। ९. घ० हत्थ, का० हाथ। १०. त्रिदोष कुं, अ० तदोषु को। ११. घ० नत्थ। १२. का० त्रिलोष न लेषि।

अर्थ—[यहाँ] दावर (न्यायकर्ता)—दानिशमन्दको [साहिबाकी अस्वस्थताके कारण] खाना खाये तीन दिन हो गये, तो ढाढिनीसे साहिबाने कहा : "ऐ ढाढिनी, तूने यह अच्छा किया [कि तू आ गयी]। अब [मेरी] नाड़ी भली [भाँति] देख। नाडी त्रिदोष [होने] के लिए है अथवा नहीं है, और क्या तैं त्रिदोष नहीं देख रही है?"

टिप्पणी—दावल<दावर [फ़ा०] = न्यायकर्त्ता। तदोष<त्रिदोष।

[५३]

[१]'ओहि ओहि इह तउ उलटी कही'[२]।[3]
'तबीब'[४] नंही। 'तबीब की'[५] जाई नही।
'ढढणि कहि रहि साहिबां बोली'[६]।
'देषि रि दिषुं'[७] 'दिलमै दिल'[८] आया।
नारी [९]'दुइ जाइगहइ हइ'[१०]।
'साहिजां की साहिबा की'[१०]।

पाठान्तर—१. का० मे यहाँ और है: 'ढढणि वायक। वचनिका। २. ष० ताही तइ उलटी कही, का० मे यह वाक्य नहीं है। ३. का० में और है: साहिबां हुं। ४. का० तबीबनी। ५. का० तबीबनी की मै। ६. का० ढढणी हु साहिबां कह्या, ष० साहिबा वाक्य। ७. ष० देषु देषु, का० देषि देषि। ८. ष० दिल मै दिल, का० दिल मै, अ० दिल मु दिल्ल। ९. का० दोइ जागह हुई, ष० हुइ(<दुइ) जाइगहगइ हुंइ। १०. का० में नहीं है।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "वाह वाह, यह तो [तूने] उलटी कही! मैं न वैद्य हूँ और न वैद्यकी सन्तान हूँ।" ढाढिनी कह चुकी तो साहिबा बोली, "देख री, मैं देख रही हूँ कि [मेरे] दिलमें [एक और] दिल आ गया है, [जिससे] नाड़ियाँ दो जगहोंपर [चल रही] हैं: [एक] राजकुमारकी है और [दूसरी] साहिबाकी।"

टिप्पणी—तबीब [फ़ा०] = वैद्य।

५४]

दूहा[१] ॥ ढढि्ढणि 'ढोरी अंषियां'[२] साहिबा संमुहियांह।
'तइ'[3] तत्ता 'षांन न (ज?) षाइया'[४] दज्झइ 'साहि'[५] 'हीयांह'[६] ॥

पाठान्तर—१. अ० में यहाँ और है: 'ढढिणी वाक्य'। २. का० ढोरे अंषरी। ३. ष० का० में नहीं है। ४. ष० षाण न षाइयां, का० षाणा षाइयो। ५. का० समुझि। ६. ष० हिया।

अर्थ—ढाढिनीने साहिबाके सम्मुख आँखें मटकायीं [और कहा] "जो तूने गर्म खाना खाया उसीसे शाहज़ादेका दिल दग्ध हो (जल) रहा है।

टिप्पणी—ढोर्<ढोल् = ढुलकाना, चलाना : संमुह<सम्मुख = सामने आया हुआ। तत्त<तप्त = गर्म। दज्झ्<दह् (?) = दग्ध होना।

[५५]

[1]'ढढिणी 'बोली'[2]।
'हम'[3] 'तबहीं'[4] पाई।
जब 'की'[5] सहण 'क्यां सिराई'[6]।
'हमारा क्या (कह्या ?)[7] तूं' पराई।[8]
'इतनी'[9] 'करतइ कपरे फेरे'[10]।
'दीदह सुं'[11] दीदे जोरे।
साहिबां साहिजा 'जीवइगा'[12]।
'अर दिल्ल मइं की दिल क्या होइगा'[13]।
इह दिल जोरा ही रहइगा जोरा* ही जाइगा'[14]।

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : चउपाया। २. ध० वाक्य, का० वायक। ३. का० हमहूं तो। ४. का० तबहींका। ५. ध० मे नहीं है, का० तूं। ६. ध० कां सिरि आई, का० कीया सिरहि आई। ७. का० हमारे क्या, ध० हमारा क्या है। ८. का० में और है : दीदार सुं दीदार लाई। ९. ध० का० इतनी बात। १०. का० कहै वीचि ढढनी कपरे परे। ११. का० दीदा। १२. ध० दाइगा। १३.-१४. का० में नही हैं। १५. का० इया हजूरी ही महबत पावेगा, अ० जोरी (<जोरा) ही जाइगा।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "मैंने यह तभी पा (भाँप) लिया था जब [शाहज़ादेके आनेपर] तू सहनके सिरेपर आयी और मेरे करने (कहने ?) पर तू वहाँसे भागी।" इतना करते-करते (कहते-कहते) [ढाढिनीने] कपड़े पहने और वैद्याका वेष धारण किया। नेत्रोंसे नेत्र मिलाये और कहा, "साहिबा, शाहज़ादा जीवित होगा, किन्तु [तुम्हारे] दिलमें-से [उसका] दिल क्या होगा ?" [साहिबाने उत्तर दिया,] "यह दिल [शाहज़ादेके दिलसे] जोड़ा (जुड़ा) हुआ ही रहेगा और जोड़ा (जुड़ा) हुआ ही [संसारसे] जायेगा।

टिप्पणी—सहन [फ़ा०] = आंगन। सिराय् = सीझना। पराय्< पलाय् = भागना।

परतीति पाई ।
'तबीब'[1] का भेष करि ढढिढ्णी सुलतांण 'कइ' दरबार आई[2]
'तबीबांनि तबीबांनि' पुकारी ।[3]
'जीउ का जाणुं,'[4] क्या स नर क्या स नारी ।
'अवाज्यां बाजी'[5] ।[6]
'लष'[7] दउरे ।
'हत्थइ हत्थ'[8] लीनी जहां साहिजादा कुतबदीन गाजी ।[9]
देषतइं पांणी 'अंजरि'[10] पहर एकइ पुकारथा ।[11]
'इओही'[12] साहिबां णजरि 'साहिबां'[13] णजरि ।
'न जाणुं'[14] 'नमासा'[15] न जाणु फजरि ।[16]

पाठान्तर—१. का० तबीबणी । २. ध० में नहीं है, का० कइ घरि । ३. ध० तबीबानू तबीबानू करि, का० तबीबणी तबीबणी करि । ४. ध० जीव का जानू, का० जीव का जीवन जाणु । ५. ध० अवाजवा, का० आवाज आवाज जागे । ६. का० में और है : उषदां (उँषदां) उँषद मगे । ७ का० लष एक । ८. का० हाथै हाथ, ध० हाथइ हाथ । ९. का० में यहाँ और है : तहां बैदनी कुं ले गया ताजी । १०. ध० अंजरि पिलाया । ११. का० में वाक्य है : साहिजादा देषते ही पुकारथा । १२. ध० का० में नहीं है । १३. का० वे साहिबां । १४. का० वे न जाणु । १५. ध० निमासाम, का० निमासा । १६. अ० में यहाँ और है 'यो हीं पुकारथा' ।

अर्थ—[इस प्रकार साहिबाकी] उसने प्रतीति प्राप्त कर ली, तो ढाढिनी वैद्याका वेष [धारण] कर सुलतानके दरबारमें आयी । "वैद्या, वैद्या" उसने पुकारा । "मैं जीवका [भी] जीव जानती हूँ, वह चाहे नर हो अथवा नारी हो ।" [जब ये] आवाज़ें बजीं (हुईं), लाख [आदमी] दौड़ पड़े । [उन्होंने उसे] हाथो-हाथ किया और [उसे] वहाँ ले गये जहाँ शाहज़ादा कुतुबुद्दीन ग़ाज़ी था । अंजलीमें पानी [लिये हुए ढाढिनीको] देखते ही वह एक पहर तक पुकारता रहा, "इओही, साहिबाकी नज़र ! साहिबाकी नज़र ! न मैं रात्रि जानता हूँ और न प्रभात जानता हूँ ।"

टिप्पणी—ग़ाज़ी <ग़ाज़ी [अ०] = धर्मरक्षक । इओही—एक उद्गार वाचक अव्यय । नमासा <निवास = रात्रि । फजर <फ़ज्र [अ०] = प्रभात ।

[५७]

'ढढ़िढणी'[१] बोली।
'साहिजादे दीदे न भरु'[२]।
'लज्या न डरु'।[३]
कीया सु करु।
'क्या करहिगा मरु'[४]।
'हथ देषुं'[५]।

दोहा ॥ नारि (नारी) नारि सुहत्थियां नारी नारि सुहत्थ[६]।
'साहिजादइ साहिबां हीयां'[७] 'दुउ'[८] लग्गिया 'सनत्थ'[९] ॥[१०]

पाठान्तर—१. का० वैदनी। २. का० साहिजादा दिल भर। ३. का० लज्या न करि, अ० भजी (<लज्जी) न डरु। ४. ध० क्या करोगे, का० क्या करूंगी। ५. ध० मेरा हाथ देषु, का० देषु मेरे हाथ। ६. का० सु हत्थि। ७. ध० का० साहिजादइ साहबीया। अ० साहिजादे साहिबां हीयं। ८. ध० का० दुहं। ९. का० सुनत्थ, अ० समत्थ। १०. का० में और है :

साहिजादा साहिबां विरह जो जीवंदा जाहि।
लजा लोइ उलंघणा सिरि परि पेरो साहि।

अर्थ—डाकिनीने कहा, "शाहज़ादे, आँखें न भरो! लज्जाको मत डरो! जो कुछ [कार्य] तुमने किये हैं, वे ही [पुनः] करो। मृतक क्या करेगा? हाथ [तो] देखूँ!" [और नाड़ी देखकर उसने कहा,] "[इसके] सुन्दर हाथोंमें नारीकी नाड़ी है, और [इसकी] नाड़ी नारीके सुन्दर हाथोंमें है। शाहज़ादा और साहिबा दोनोंके हृदय भली-भाँति नथकर परस्पर लग (जुड़) गये हैं!"

टिप्पणी—मरु < मडय < मृतक = मुर्दा, अथवा < मड < मृत = मरा हुआ।

[५८]

[१]साहिजादा बोल्या 'बुझाइयां'[२] बुझाइयां।
'साहिजादे किणि बुझाइयां'।[३]
'जिणि'[४] लगाइयां 'तिणि बुझाइयां'[५]।
अब 'उस सुं'[६] क्या 'करण आइयां*'[७]।
'तबीबइ रोग जाण्या।[९]

'रोगीइं'[10] रोग मान्या ।
'साहिजादे दीदे देषगइ लागे'[11] ।
'तबीब के रोर भागे'[13] ।
'पंच सइ सोने के टके षोरइ मि लाओ' ।[14]
'फुरमाण हूआ जीइ तउ 'जिलाओ'[15]' ।[16]

पाठान्तर—१. का०में 'वचनिका' और है । २. ध० का० बुझाइयां वे, अ० बुझाईया बुझाईया । ३. ध० साहिजादा कउणइ बुझाइयां । अ० साहिजादे किणि बुझाईया, का० में वाक्य नहीं है । ४. ध० जिणही, का० जिणहि । ५. ध० का० तिणही बुझाइयां, अ० तिणि बुझाईया । ६. अ० सु । ७. अ० करण आईया ध० का० करणां । ८. ध० में 'इसा' और है । ९. का०में यह वाक्य नहीं है । १०. ध० रोगीयें । ११. का० में यह वाक्य नहीं है । १२. का० साहिजादा मुष बोलणै लागा । १३. का० तबीबनी का रोर भागा, ध० तबीब का रोर भागा । १४. का० पाँच सै टका सोनैका मँगाया । १५. अ० जिलाउं (<जिलाउँ) । १६. का० में यह वाक्य नहीं है ।

अर्थ—शाहज़ादेने कहा, "बुझा दिया ! बुझा दिया !" [डाढिनीने पूछा,] "किसने बुझाया ?" [शाहज़ादेने उत्तर दिया,] "जिसने लगाया, उसीने बुझाया । अब उससे क्या करने आयी हो ?" वैद्याने रोग जान लिया, और रोगीने रोगको स्वीकार कर लिया । शाहज़ादेके नेत्र देखने लगे, [इसलिए अब] वैद्याकी परेशानी दूर हुई । [बीबी बिवानाने कहा] "पाँच सै सोनेके टके उपहारमें लाओ ।" उसका फ़रमान हुआ, "जिये तो जिलाओ ।"

टिप्पणी—रोर<रोल [दे०] = कलह, झगड़ा, बखेड़ा । खोर<खोड = राजकुलमें देने योग्य सुवर्ण आदि द्रव्य ।

[५६]

'ढढिढणी बोली'[1]
जउ सब कोउ कुसादे 'होउ'[2] तउ 'कहूं' कहुं ।[4]
सद कइ एक फुरमाणं 'लहुं'[5] ।[6]
फुरमांण साहि फुरमांण बीबीयां । बोलणा हइ सु बोलि ।
पाछइ का 'कीजइ तबीबियां नु'[8] ।[9]
जउ कछू 'बोयायां'[10] बजावइ तउ कछू हम गावइ'[11] ।[12]

'साहिजादा जिलावइ'[13] ।[14]
तमासा एक अवही 'दिषावइ'[15] ।[16]
महल 'हतई'[17] 'ढोल कई मंदिरि मांगी' ।[18]
'जवान हुवांगी' ।[19]
'स्वर'[20] हूआ 'सोर'[21] छूट्या ।[22]
'तबीबइ ओतरइ लागी' ।[23] ।
'दूहा ज्युं कह्या त्युं साहिजादा उठ्या'[24] ।[25]

पाठान्तर—१. का० तबीबनी कहणै लागी । २. घ० होहिं । ३. घ० कछु एक । ४. का० में इस पूरे वाक्यके स्थानपर है : साहिजादा चंगा होइगा तब मैं ल्युंगी । अब मैं सब पाया । साहिजादा मुष बुलाया । ५. का० पांऊं । ६. का० में यहाँ और है : लोक सब कुंसाद कराऊं । ७. का० में यह वाक्य नहीं है । ८. घ० कीजेगो तबीबियां । ९. का० में यह वाक्य नहीं है । १०. घ० बीबी । ११. घ० तो हूं गावउं । १२. का० में यह वाक्य नहीं है । १३. घ० साहिजादा कउ जिलावउं । १४. का० में यह वाक्य नही है । ७, ९, १२, १४. इन वाक्योंके स्थानपर का० मे हैं : तब सुलतान हुकम कीया । बीबीयांनैं दौरि सब कुसाद कीया । साहिजादैका फुरमांन पांऊं । तौ ढोल मंजीरा हुडक मंगाऊं । ज्यु कुछ एक गांऊं । १५. घ० दिषावउं, का० दिषाऊं । १६. का० में और है : साह फुरमाण एक षाया । १७. घ० मैं, क० मैथी । १८. का० ढोल मंजीरा मंगाया । १९. घ० जुवान हूं जगे, अ० ज्वान हुवांगी, का० में यह वाक्य नहीं है । २०. का० सुर । २१. उंर सुर । २२. का० में और है : पडदा बंधाया । २३. घ० तबीब ऊतरे, का० तबीब ऊबरे । २४. घ० दूहा कह्या, का० तबीबणी दूहा गाया हुडक वागी । २५. का० में और है : साहिजादै की नगर लागी ।

अर्थ—ढाढिणी बोली, "यदि सब कोई [शाहज़ादेसे] दूर हो [जाओ], तो कुछ कहूँ । यह अवश्य है कि [उसके लिए] एक फ़रमान पा जाऊँ ।" [कहा गया,] "शाहका फ़रमान है, और बीबी (बिवानां) का फ़रमान है । तुझे जो कहना है, वह कह । पीछे वैद्याको क्या कीजिए ?" [ढाढिनीने कहा,] "यदि बीबो (बिवानां) कुछ बजायें, तो मैं कुछ गाऊँ; शाहज़ादाको जीवित करूँ और अभी एक तमाशा दिखाऊँ । महलसे ढोल अथवा मर्दल मँगाइए और ज़ुबानसे भी स्वर निकालिए ।" स्वर हुआ तो शोर समाप्त हुआ । वैद्या [गीतके साथ] उतरने लगी और ज्योंही उसने दूहा कहा, शाहज़ादा उठ बैठा ।

टिप्पणी—मंदिरि <मर्दल = मृदंग । जवान <जुबान [फ़ा०] = जिह्वा ।

[६०]

दोहा ॥ ढढ्ढणि 'ढोर समुदीया'[१] मुख मुदिया 'न' जीव ।
साहिब साहि 'कुतब्बियां'[३] गुण बंधिया 'सुनीव'[४] ॥[५]

पाठान्तर—१. का० दोर समंदीयां । २. का० सुनि । ३. का० तबीबियां । ४. अ० सुनीम । ५. अ० में यहाँ '१' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[उसने गाया,] "द्वारसमुद्रकी यह ढाढिनी मुद्रित मुखके साथ (इस तथ्यको उद्घाटित किये विना) नहीं जी सकती है कि साहिबा और शाहज़ादा कुतुबुद्दीन [परस्पर] गुणोंके ब्याजसे बँध गये हैं ।"

टिप्पणी—ढोरसमंद < द्वारसमुद्र : धुर दक्षिण भारतका एक प्रसिद्ध स्थान । नीव < णिव्व [दे०] = व्याज, बहाना ।

[६१]

'लज्जा गउ गुण आगुणी धण लज्जा बउहार' ।[१]
'लज्जा गउ जुय'[२] जोवणां साहि 'सुणंदा'[३] सार ॥[४]

पाठान्तर—१. ध० लज्ज गयइं गुण अवगुणइं धण लज्जइ बहु बार, का० लजा गो मुष गुणीयणा धण लजा व्यवहार, अ० लज्जी गउ गुण आगुणी धण लज्जी बउहार । २. ध० लजा गये जु, का० लजा गयो ज, आलज्जी गउ जुय जोवणां । ३. का० समंदा । ४. का० में यहाँ निम्नलिखित छंद और हैं :

जीवंदा सब कुछ मिलै गज अस नर नायक ।
मूयां हमारा क्या चलै साहजादा वायक ॥
जो दिन्हा दिल मुझ कुं सो दिल हुंदा जांन ।
मैं तिस बाझू बिसारहूँ आषै साहि सुजांन ॥

इनके अतिरिक्त का० में यहाँपर ऊपर आया हुआ ६० संख्यक दूहा दुहराया हुआ है । [ऐसा ज्ञात होता है कि ये दो छंद हाशियेमें उक्त दोहेके सामने लिखे हुए थे, और इन्हें मूलमें सम्मिलित करते समय वह दोहा एक तो पहले लिखा ही गया था, दूसरी बार इन अतिरिक्त छन्दोंको उतारनेके बाद पुनः लिख उठा । इसलिए ये छन्द प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं ।] अ० में यहाँ '२' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—"लज्जामें इस गुणीका गुण गया (चला जाता है), लज्जामें स्त्री-का व्यवहार गया (चला जाता है), और लज्जामें दोनों (स्त्री-पुरुष) के यौवन गये (चले जाते हैं), शाहज़ादा यह सार तत्त्व ही बात सुन रहा है ।"

टिप्पणी—वउहार<व्यवहार । आ = यह । जुय<युग = दोनों ।

[६२]

साहि घरां साहिबियां जिणि 'दिण्णियां'[१] 'सु जाणि'[२] ।
'वइ पुज्जइं दिल लम्भीयां' [३]'कउण'[४] करंदा 'काणि'[५] ॥[६]

पाठान्तर—१. का० दीनीयां, ध० दिन्निया । २. ध० का० सुजांण । ३. का० वेय पुजइं दिन लभई, ध० वय पुज्जय दिन लंभिया । ४. का० कोणि । ५. ध० काम । ६. अ० में यहाँ '३' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा,] "शाहजादेके घटमें जिस सुजान [स्त्री] के द्वारा साहिबाको स्थान दिलाया गया है, उसको पूजने [प्रसन्न करने] से मैंने [अपना] दिल प्राप्त कर लिया है, [तो] कौन [अब] लज्जा कर रहा है ?"

टिप्पणी—घर<घट=शरीर । काणि = लज्जा, मर्यादा ।

[६३]

मइ 'सउणा'[१] सुणि 'दिठियया'[२] आज 'अणंदी'[३] 'वेलि' ।[४]
'साहिबियां'[५] 'सर मझरां'[६] हंस करंदा केलि ॥[७]

पाठान्तर—१. ध० का० सुहणा । २. ध० दिट्ठीया । ३. ध० आणिंदी ४. ध० वेल । ५. का० साहिबां । ६. ध० सर मुंझरा, का० सर मंझरे । ७. अ० में '४' की यहाँ क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[ढाढिनीने कहा] "मैंने शकुनों (या स्वप्नों) को सुनकर [स्वप्न] देखा है, आज वेला (या वल्लरी) आनन्दित हुई है [जब कि] साहिबाके [हृदय] सरोवरमें [शाहज़ादा] हंस केलि कर रहा है ।"

टिप्पणी—सउण<शकुन स्वप्न । वेलि<वेला । वल्लरी । मझरा<मध्य ।

[६४]

जे मुत्ताहल दिट्ठियां 'तइ तन'[१] 'मंझरियां'[२] ।
'ते तइं ही हसि हंसरा वइ वर गंजरियांह'[३] ॥[४]

पाठान्तर—१. का० तेतत । २. ध० वभ्करीयांहि । ३. ध० ते ताही सुर हंसरा उंअइ गुण मंजरीयांहि, का० में यह पंक्ति नही है—भूलसे छूटी हुई लगती है । ४. का० में यह दोहा नहीं है—किसी प्रकार छूटा हुआ लगता है । अ० में यहाँ '५' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[और] जिस मुक्ताफल (मोती) [की कान्ति] को तूने [उस] शरीर [लता] में देखा था, "ऐ हंस, वह तूही है जिसने उसे वपन कर [अब] नष्ट भी कर दिया है ।"

टिप्पणी—मुत्ताहल < मुक्ताफल = मोती । मंझर < मध्य । वर < वरम् । गंज् = आहत करना, नष्ट करना ।

[६५]

[१]साहिब साहिब्यां बिरह, जइ जीवंदा जाइ ।
'लज्जा लीक उलंघणी'[२] सिर परि पेरो साहि[३] ॥[४]

पाठान्तर—१. अ० में यहाँ और है : साहिबजादा वाक्य । २. अ० लज्जी लीक उलंघणा । ३. का० में यह दोहा नहीं है—किसी प्रकार छूटा हुआ लगता है । ४. अ० में यहाँ '६' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा,] "शाहज़ादा यदि साहिबाके विरहमें जीता आ रहा है तो [केवल इस कारण कि] उसे लीक (मर्यादा) के उल्लंघनकी लज्जा है और, [उसके] शिरपर [उसका पिता] फ़ीरोज़शाह है ।"

टिप्पणी—लीक < रेखा ।

[६६]

ढढ्ढिणी बोली । तउ[३] 'मूए'[१] 'हमारा क्या चलइ' ।[२]
'साहिजा वाक्य' ।[३]

जिण हीजीय'[4] जहमतीयां सोई 'हूआ'[5] तबीब।
सोई 'लज्जा'[6] रक्खिहइ 'जादे'[7] साहि नसीब ॥[8]

पाठान्तर—१. ध० तू मूआ। २-३ ध० में ३ तथा का में २-३ नहीं है—किसी प्रकार छूटी लगती है। ४. ध० जिण हीजी, का० जिणि दीनी, अ० जां होजीय। ५. ध० का० भय। ६. अ० लज्जी। ७. ध० तेडे, का० जोडे। ८. अ० मे यहाँ '७' की 'क्रम-संख्या' भी दी हुई है।

अर्थ—ढाढिनीने कहा, "तब मूए, मेरा क्या [बस] चले ?" शाहज़ादेने कहा, "जिसने [मेरी] जहमतको हरण किया है वही मेरा वैद्य हुआ है। जो शाहज़ादेको 'नसीब' देता है, वही उसकी लज्जा भी रखेगा।"

टिप्पणी—हिज्ज् < हृ = हरण करना। नसीब [फ़ा०]-भाग्य, प्रारब्ध।

[६७]

'सुणतई ही लल्ले कीए'[1] लोयण 'जल हल थल्ल'।[2]
'कंपण लग्गे'[3] अंग वल 'एण सुणंदा हल्ल'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. ध० सुणतइ ही ललते कीये, का० सुणत समे ही लल कीयां। २. ध० लोयग जल हलत्थल्ल, का० लोयण जलहर याल। ३. का० इयुं कंपिया ए। ४. का० कुंण हवंदा वल। ५. अ० में यहाँ '८' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—यह [उत्तर] सुनते ही [ढाढिनीने उसकी] मनुहार की, [उसके] लोचन [अश्रुओंके] जलाशय हो रहे। किन्तु इन हालोंको सुनकर [ढाढिनीके] अंग [अनिष्टके भयसे] काँपने लगे।

टिप्पणी—लल्ल < ललिल [दे०] खुशामद, मनुहार। लोयन < लोचन। जलहल < जल भर = जल-समूह। थल्ल < स्थल = स्थान। वल < वले [फ़ा०] किन्तु, परन्तु।

[६८]

[1]जीवंदा कहि गाइया 'अब'[2] कंपीया तबीब।
बीबी बीहन पूछीया क्या बातीयां 'निसीब'[3] ॥[4]

पाठान्तर—१. अ० में यहाँ और है : बीबी विमाणा वाक्य। २. ध० अत्र, का० तब। ३. ध० नसीच। (<नसीब), अ० तबीब [यह पूर्ववर्ती चरणमें आ चुका है]। ४. अ० में यहाँ '९' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—बीबी बिवानां ने पूछा, "ऐ वैद्या, तूने [शाहज़ादेको] 'जीवित' कह कर गाया, और अब काँप रही है। 'नसीब' में क्या बातें हैं।"

टिप्पणी—निसीब<नसीब [फ़ा] = भाग्य, प्रारब्ध।

[६९]

[1]बीबी 'बीहण'[2] वत्तडी मइं जाणीया निसीब।
साहिजादे दिल अउर दिल 'यों'[3] बोलीया तबीब॥[4]

पाठान्तर—१. अ० तबीब बोल्या, का० तबीब वायक। २. ध० ऊहुत, का० बहुते। ३. ध० इम, का० इयुं। ४. अ० में यहाँ '१०' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—[वैद्याने कहा,] "ऐ बीबी बिवानां, बात यह है कि मैं [इसके] 'नसीब'को जान गयी। शाहज़ादेके दिलमें [एक] और दिल है।"

टिप्पणी—अउर<अपर = अन्य।

[७०]

सो दिल 'दिल अज्जइ'[1] मिलइ तउ मिलि मंगल 'गाउ'[2]।
'नत साहिजां न साहिबा'[3] 'जं'[4] धावणा 'सुधाउ'[5]॥[6]

१. पाठान्तर—ध० जउ दिल मइं, का जो दिल मै। २. का० गायो। ३. ध० नहि तरि साहिब साहिबा, का० नातर साहिब साहिबां। ४. का० जो। ५. ध० ध्यावणा सु ध्यावो, का० धावणा सुधाणो। ६. अ० में यहाँ '११' की क्रम-संख्या भी दी हुई है।

अर्थ—"वह दिल और [यह] दिल आज ही मिल जायें, तो [सब] मिलकर मंगल गान करो; नहीं तो न राजकुमार [रहेगा] और न साहिबा [रहेगी]; क्योंकि दौड़ना-धूपना है, [भले ही] दौड़-धूप करो।"

टिप्पणी—जं<यत् = कि, क्योंकि।

[७१]

'असि अस माणा'[1] तर तरुणि जोमी जीवण 'पूरि'[2] ।
दावल दाणस पुंगरी दीदे 'दीठिहुं मूरि'[3] ॥[4]

पाठान्तर—१. का० अस समान । २. का० पूर । ३. ध० दुहूं मूर, का० दिट्ठेह मूर । ४. अ० में यहाँ '१२' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—"[इन] तरुण और तरुणिने एक-दूसरेको ऐसी और ऐसा माना [है] कि जैसे जावनकी पूर्ति (सफलता) हो । दावर (न्यायकर्त्ता) दानिशमन्दकी कन्याके नेत्र [इसके] नेत्रोंके मूल हो रहे हैं ।"

टिप्पणी—माण् < मानय् = सम्मान करना, आदर करना, अनुभव करना । तर < तरुण । पूरि < पूर्ति । पूंगरी < पुद्गल + इका । पौगण्ड + इका = बालिका । किशोरी ।

[७२]

'जमा जमी'[1] ति मसीतियां दुहु दिट्ठया रसाइ ।
'नदरि'[2] ज 'लम्भइ'[3] 'नदरि'[2] कुं 'नदरि'[2] 'पुकारत'[4] जाइ ॥[5]

पाठान्तर—१. का० जिमे जमां । २. ध० का० नजरि । ३. ध० सुं लगी, का० ज लागी । ४. ध० पुकारइ, का० पुकारे । ५. अ० में यहाँ '१३' की क्रम-संख्या भी दी हुई है ।

अर्थ—"उन्होने जमा-जमी (स्थिरता) के साथ तो [एक-दूसरेको] मसजिदमें प्रेम-विभोर होकर देखा । और नज़र जब [अन्य] नज़रसे मिलती है तो वह 'नज़र', 'नज़र' पुकारती [ही] जाती है ।"

टिप्पणी—नदरि < नजर [फ़ा०] = दृष्टि ।

[७३]

'इती बात करतइ बीबियां ऊठी'[1] ।[2]
सुलतांण पासि गई 'छूटी'[3] ।
सुलतांण साहिजादा 'आसिष हूआ'[4] ।
'जुवाणिहिं जोग जूआ'[5] ।

'लाजनुं सोचणा हूआ'।[6]
वेगि 'आणहु नत'[7] मूआ।
जह्मतियां 'हमई'[8] सो धी।
मिलावणा 'तुमई'[9] को धी।
'फुरमांण हूआ'।[10]
'जह्मतियां'[11] क्या 'जाणइ'।[12]
जिमी 'आकास तल' होइ तउ 'हम आणइ'।[14]
बीबियां बोली।
दावल 'दानसवंद कइ'[15] 'आगलि बिछाओ'[16] ऊंली (औली)।
'सुलतांण'[17] मानी। दीन दुणियां एक 'ठउड होत जांणी'[18]।

पाठान्तर—१. का० में 'वचनिका' और है। २. ध० इतनी बात करत बीबी बाणा उठी, का० उतनी बात करतइ बीचि बीबी बिवांना उठी। ३. का० अपूठी। ४. का० आसिक हूवा, अ० आसिष हूआ। ५. ध० में यह वाक्य नहीं है, का० जुवानहु जोग हूवा। ६. ध० में यह वाक्य नहीं है, का० लाजनुं सोचनै हूआ, अ० लाजहुं सोचणा हूआ। ७. ध० आणउ नही तरि, का० आनि नहीं तर। ८. ध० हमाउ, का० हमहु। ९. ध० तुमहूं। १० ध० का० में नहीं है। ११. ध० जह्मतीयां हमहूं, का० जह्मतीयां हम। १२. का० जाना। १३. ध० असमान बीचि। १४. का० सो आंनां। १५. का० दानसमंद की, अ० दाणस बंध कइ। १६. ध० आगै बिछायो, का० आगै बिछाई। १७. ध० सुलतान मान्या, का० तब सुलताण बात मानी। १८. ध० होता जाण्या, का० ठौर होती जाणी।

अर्थ—इतनी बातें करते-करते बीबी (बिवानां) उठी। सुलतानके पास वह छूटी (भागी) हुई गयी। [उसने कहा,] "सुलतान, शाहज़ादा आशिक हुआ है, वह युवतीके योग्य युवा [हो गया] है। हमें लाजोंसे (के कारण) सोचना हो गया है। शीघ्र आओ, नहीं तो मरा। शाहज़ादेकी ज़हमत [तो] हमने शोध की है, और [उसे दूर करनेके लिए] मिलानी है तुम्हें कोई कन्या। फ़रमान हुआ, "ज़हमत हम क्या जानें (हमारे लिए 'ज़हमत'का क्या सवाल)? पृथ्वीपर और आकाशके नीचे कहीं भी (वह) हो, तो हम उसे लायें।" बीबी (बिवानां) बोली, "दावर (न्यायकर्त्ता) दानिशमन्दके आगे औली बिछाओ।" सुलतान मान गया और [उसने] दीन (दानिश-

मन्द) तथा दुनिया (सुलतान) को एक स्थानपर होता (एक सम्बन्धमें बँधता) [निश्चित] जान लिया ।

टिप्पणी—आसिष<आशिक [अ०]=प्रेमी, अनुरक्त । धी<दुहिता =कन्या । जिमी<ज़मीन [फा०]=पृथ्वी । ऊंळी (औली) [दे०]= कुल—परिपाटी । ठउड [दे०]=ठौर, स्थान ।

[७४]

'पावइं पाव सुलताण-दरबारि 'आया' ।[1]
'पाछइ साहा सुषासण चउडोल डोली असपती अंस चड़ाया'[2] ।[3]
दावल 'दरबार सोर हूआ'[4] । सुलतांण 'आया'[5] ।
'सुकराणा सुकराणा करता सामहा धाया' ।[6]
'सुलताण कह्या इउं कीया'[7] ।
बे दावल साहिजादा जीइया ।
दावल 'बोला' ।[8]
सुलतांण के बषत 'बड़े'[9] ।
दुनी के दीदे ऊघरे ।
'इयारह के होए'[10] भरे ।
दुसमणां के दिल 'जरे'[11] ।
'सुलतांण'[12] षैर करणा ।

पाठान्तर—१. ध० सुलतान पयादा हूआ दरबार आया, का० मौहला मांहि तै पातिसाह पावु पावुं दरबार आए । २. ध० पीछै सुषासण दोलीयां असपती अस चढाए, का० पीछै नै पालंषी सुषासण चौडोल धाए । ३. का० में यहाँ और है : जब सुलतांन महलमें थी वागा पहनि नीकल्या तब देसतै इंषका गरब गल्या । इंद्र षानजादे । मलक मलकजादे । बरबार देखते ही इंद्रका गरब मिटांना । असपति सुलतांन ऐसै चढीया । तब च्यार चक भंगांना पड़ा था । [यह वर्णन सुलतानके पैदल चलकर आनेके साथ ठीक नहीं बैठता है, यह तो किसी चढ़ाईका लगता है ।] ४. का० कै ताईं षबर हुई जु । ५. का० आए । ६. सुकराणा सुकन करता सामहा धाया, का० तब दावल सुकराणा

सुकराणा करते सांम्हे धाए। ७. का० आय करि सलाम कीया, ध० सुलतान तुम्हां क्या कीया। ८. का० दावल बोल्या, ध० में यह वाक्य नहीं है। ९. का० सबरे। १०. का० यारां के दीदे, ध० याराहांके दिल। ११. ध० जुरे। १२. का० सुलताण 'कछु'।

अर्थ—पैदल ही सुलतान [दावर के] दरबार आया और शाहके पीछे सुखासन, चौडोल, डोली तथा अश्वपतिका अश्व—[यह सब] चढ़ आये। दावरके दरबारमें शोर हुआ कि सुलतान आया। [दावर] 'शुकराना' 'शुकराना' करता हुआ दौड़ा। उसने कहा, "सुलतान, तुमने यह क्या किया (कि यहाँ तुम पैदल आये)?" [सुलतानने कहा,] "रे दावर, शाहज़ादा जी गया।" दावर बोला, "सुलतानके भाग्य बड़े हैं! [शाहज़ादेके जीवित होनेसे] दुनियाके नेत्र खुल गये, मित्रोंके हृदय भर गये और दुश्मनोंके दिल जल गये! सुलतान दान-पुण्य करना!"

टिप्पणी—सुकराणा < शुक्रानः [अ०] = कृतज्ञता-ज्ञापक पुरस्कार। यार [फ़ा०] = मित्र, सहायक।

[७५]

'अमहु 'घइर'[१] करी'।
'तुमहं घइर करणा'।[२]
साहिबां 'साहिजादे कुं'[३] वरणा।
[४]'ऊताल'[५] ही मंडप छवावउ।
'अषत'[६] पढावउ।
'सादा नइ बजावउ'।[७]
षूब षूब होइ 'त्यु' करावउ'।[८]
[९]'दावल बोल्या'।[१०]
'जु फुरमाण दीना'।[११]
इती 'बात कुं'[१२] सुलताण क्या समीना।[१३]
तुमु तरकसबंद 'अर'[१४] ईयार बाणइ।[१५]
'दुनिया दाणसबंद बड़े वषाणइ'।[१६]

पाठान्तर—१. अ० एइर। २ का० में ये दो पंक्तियाँ नहीं हैं, और इनके स्थानपर है : सुलतांन बोल्या। ३. ध० साहिजादा स्युं। ४. का० में और है :

दावल बोल्या। हजरत सलांमत मुझ कूं बोलावते तो तब ही आवतां पाए। इतनी बात कुं क्या तुम्ह आए। पातिसाह दावलके वषांने। य्हा आइ तुम्ह पीर जांने। ५. ध० का० इताल। ६. का० अषित। ७. का० सादा ने बजावउ, अ० सादा नइ बजावउं। ८. का० तो ओरता मंगावौ, अ० षूब्रइ होइ त्यु करावउ। ९ का० में और है: बीयाहनके गीत गवावौ। १०–१६. का० मे यह अंश नहीं है। १२. ध० वातइ। १४. ध० हूं यार।

अर्थ— [सुलतानने कहा,] "मैंने दान-पुण्य किया। तुम [भी] दान-पुण्य करना। साहिबाको शाहज़ादेसे वरण करना है। शीघ्रतासे मण्डप छवाओ, और अक्षत पढ़ाओ। बाजोंको बजवाओ। [जिससे] 'ख़ूब' 'ख़ूब' हो, वही कराओ। दावर बोला," "जो [सुलतानने] फ़रमाया; इतनी बातके लिए, सुलतान, क्या खेद?" [बादशाहने कहा,] "[तो] सेना (सैनिक), तरकश-बन्द और ऐयार बाने धारण करें, [जिससे] दुनिया दानिशमन्दको बड़ा बखाने।"

टिप्पणी—ख़ैर <ख़ैरात [अ०] = दान-पुण्य। ऊताळ <उत्तावल [दे०] = उतावली, शीघ्रता। समोना <सम्म <श्रम = खेद (?)। तुम <तुमन = सेना। ईयार <ऐयार [अ०] = छद्मवेषी [सैनिक]।

[७६]

इतनी बात करतइं मंडप 'छावणइ'[1] लागे।[2]
'गायणे गावणइ लागे'[3]।
'नर ततइं नोसाण दग्गे'[4]।
'सज्जणा जग्गे'[5]।[6]
'वेलिया बधाय गूडी'।[7]
'नर ततइं नफेरी मंडी'।[8]
'भेरी भूंगल भींमं नंढी'।[9]
'सहणाइ तंढी'।[10]
[11]'जंझि मंदिर नाइ संगा'।[12]
'तंति'[13] तुंबर राइ रंगा। 'वाजिया ढप ढोल ढंगा'।
'ढाहिया ढंगा'[14]।

सेहरा ढढिढनी सु गाणइ ।
साहिजादे सु ‘वषाणइ’ ।[16]
तुंग तोरण ‘करस ठाणइ’ ।[17]
नेहरा ‘ठाणइ’[18] ।
[19]बीबियां संगि साहिजादा ।
आइ दावल ‘दरहि’[20] बादा ।
निहसियां नीसाण नादा ।
नारियां नादा ।

पाठान्तर—१. ध० छवावणइ । १—४ का० में नही हैं—छूटे हुए लगते हैं, ४. ध० में भी नही है । ५. का० सजन बोलनै लागै । ६. का० में और है : साद्यांने वागे । ढोल = ढोल हुडक ढक्का । ७. का० में यह वाक्य नहीं है, अ० वेलि आवधराइ गुंडी । ८. का० में नही है, अ० नर ततइं नफेर मंडी । ९. ध० भीम तुंडी, का० भीतरंगा । १०. ध० सरणाई तुंडी, का० सहणाई नफेरि भूंगा । ११. का० में और है : मृदंग तालरि उपंगा । १२. का० झंझ मदिर न्याय । १३. का० तंत । १४. ध० ढाहियइ ढंगा, का० में यह तथा इसके पूर्वके दो वाक्य नहीं हैं और अधिक है : निरत नीसांन बंगा । सोवतावासि जंगा । १५. का० में और है : अनेक राय रंग गाया । ढढिणी सेहरा सुनाएा [किन्तु पीछे यह शब्दावली पुनः आती है] । १६. का० कुं वपाणो । १७. का० सकल जांणी, अ० करस ठाणइं । १८. ध० चाणइ, का० गाणै । १९. का० में यहां ‘बहुत’ और है । २०. का० दरबारह ।

अर्थ—इतनी बातें करते ही [लोग] मण्डप छाने लगे और गायक गाने लगे । लोगोंने तदनन्तर निशान दागे, [जिससे] स्वजन जाग पड़े । वेलियाँ (बन्दनवार) और गुड़ियाँ (पताकाएँ) बाँधी गयीं । तदनन्तर लोगोंने नफ़ीरी माँडी । भेरी और भूँगल भीम रवके साथ निनादित हुए, और शहनाई उच्च स्वरमें बज उठी । झाँझ, मर्दल और साथमें नागसुर, तन्त्री, तथा तुम्बुरुने राग रँगे । डफ, ढोल, और ढंग बज पड़े । [इस तुमुल निनाद-से] ढंग ढह गये । ढाढिणी सेहरा (मौरका गीत) गाती है, और वह राज-कुमारको बखानती है । ऊँचे तोरण तथा कलश वह स्थापित करती है और नेहरा ठानती है । बीबी (बिवानी) के साथ शाहज़ादा आकर दावरके द्वारपर पहुँच गया । निशानों और नारियोंके नाद [कानोंको] बधिर करने लगे ।

टिप्पणी—गायन = गायक । तत < ततः = तदनन्तर । सज्जण < स्वजन । नफेर < नफ़ीरी [अ०] = तुरही या करनाय । तंड < तंड [दे०] = उच्च स्वर

का। मंदिर < मर्दल = मृदंग। नाइ < नाग = नागसुर। ढंग = ढाँग, टीला। सेहरा < शेखरक = मौर। वखाण् < वक्खाण् < व्याख्यानय् = वर्णन करना। तुंग < उत्तुङ्ग। दर [फ़ा०] = द्वार। वाद् < वा = गमन करना। निहस् < णिहस् < नि + घृष् = घर्षण करना। नीसाण < निशान [फा०] = धौसा।

[७७]

सेहरउ दूहा[१]

साहिब 'सा हत्थइ हीया'[२] हत्थइ साहिब साहि।
'वेरू'[३] मंडप मंडिया ढढ्ढणि 'वरन्यइ* काहि'[४] ॥[५]

पाठान्तर—१. अ० सेहरउ दोहा, ध० सेहरइ दुहा, का० सेहरा दूहा। २. का० साहु स हुथ कीया। ३ का० वारू। ४. ध० वयन कहाइ, का० वरण कीयाह। ५. अ० मे इस प्रसंगमें आने वाले दोहोंकी स्वतन्त्र क्रम-संख्याएँ है, जिनमें-से इसकी है '१'।

अर्थ—सेहरा दूहा—''शाहज़ादेके हाथमें साहिबाका हृदय है और साहिबाके हाथमें शाहजादेका। द्वारपर मण्डप माँडा गया है, ढाढिनी किसे वर्णन करे ?''

टिप्पणी—वेर < द्वार = दरवाजा।

[७८]

'वर'[१] सिर सोहइ सेहरा वरणी 'सिरि'[२] सिंदूर।
जांणे 'संझ सुमष्षिया सिंधु सपत्ता'[३] सूर ॥[४]

पाठान्तर—१. अ० वं। २. का० सिर। ३. ध० का० संभ्कि (संभ-ध०) समुषिया सिंध तपंदा (नपंदा—का०)। ४. अ० मे इसकी क्रम-संख्या '२' है।

अर्थ—''वरके सिरपर मौर शोभित है, और वधूके सिरपर सिन्दूर है, मानो सन्ध्याके समक्ष पहुँचा हुआ सूर्य सिन्धुमें सम्प्राप्त [हो रहा] है।''

टिप्पणी—सेहरा < शेखरक = मौर। सुमष < समक्ष = सामने। सपत्त < सम्प्राप्त।

[७९]

वर कर 'वीर'[1] अंगूठियां वरणी कर 'करि'[2] लाल।
'जाणे'[3] हीयइ हिलगियां काम 'स कढ्ढइ'[4] साल ॥[5]

पाठान्तर—१. का० बे। २. का० कर। ३. का० जांनिक। ४. ध० सुकढण, का० करंदा। ५. अ० में इसकी क्रम संख्या '३' है।

अर्थ—"वरके करोंमें सुन्दर अंगूठियाँ हैं, और वधूके करोंमें लाल कड़ियाँ (चूड़ियाँ) हैं, [जो ऐसी लग रही हैं] मानो [किसीके] हृदयसे हिलगकर काम अपने शल्य निकाल रहा हो (कामने अपने शल्य निकाले हों)!

टिप्पणी—वीर <विल्ल [दे०] = अच्छ, स्वच्छ, विलसित। करि <कडय + इका <कटक + इका = कड़ी, वलय, चूड़ी।

[८०]

'आसिर अषत भणंदीया'[1] 'सेष सुणंदा सार'[2]।
जांणे 'जलहर वुट्ठियां 'सारसु कीया* सुढार'[3] ॥[4]

पाठान्तर—१. ध० आसिर अषित पढि दीया, का० आसां अषित पढिया। २. का० साहि सुणंदा सोर। ३. ध० सरसु कयां सुढार, का० सरस कीया न ठोर। ४. अ० में इसकी क्रम संख्या '४' दी हुई है।

अर्थ—आशीर्वादका अक्षत कहते हुए शेख सार (सुन्दर) [सेहरा] सुन रहा है। [यह सेहरा ऐसा लग रहा है] मानो जलधर बरसे हों [जिससे सुखी होकर] सारसोंने सुन्दर शब्द किया हो।

टिप्पणी—आसिर <आशिष = आशीर्वाद। वुट्ठ <वृष्ट = बरसा हुआ।

[८१]

वाए वज्जण 'वज्जणा'[1] सज्जणां मिलि 'सचोल'[2]।
आसा पूरण 'साईयां'[3] 'पइ'[4] ढढिणिया 'के'[5] बोल ॥[6]

पाठान्तर—१. का० वाज्जीया । २. का० सुबोल । ३. ध० पाइयां । ४. का० पय । ५. का० का । ६. अ० में इसकी क्रम-संख्या '५' दी हुई है ।

अर्थ—"बजनियोंने बाजे बजाये और सजन तथा सगोत्री मिले । सातिशय आशा पूरी हुई और ढाढिनके बोल प्राप्त (पूरे) हुए ।"

टिप्पणी—वाय् < वादय् = बजाना । सचोल < स + चोल्लक = साथ-साथ भोजन करनेवाले । साइ < सात्ति = सातिशय । पइ < पत्त < प्राप्त ।

[८२]

'साहिब साहि'[1] घरं दीयां तरह 'सलग्गी'[2] वेलि ।
जे जे 'रत्ति उकत्तियां'[3] 'कालिह कहंदी केलि'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. ध० साहिब सार, का० साहिबा साहि । २. का० सुलग्गी । ३. का० रतोकंतीया । ४. का० काल्ह करंती केल । ५. अ० में इसकी क्रम-संख्या '६' दी हुई है ।

अर्थ—"साहिबाने उसे शाहज़ादेके घटमें दिया, तो वह [प्रीति] बेली लग गयी । जो-जो अनुराग [पूर्ण केलि] की उक्तियाँ हैं, उन्हें मैं कल कह रही हूँ (कहूँगी) ।"

टिप्पणी—घर < घड < घट । तरह < तरिहि < तर्हि = तो, तब । रत्ति < रक्त = अनुरागपूर्ण ।

[८३]

'फजरि हूअंदा साहि दर गई'[1] गुण रष्षणहार ।
'मलिणीयां र'[2] तबीबियां ढढिणी तीजी वार ॥[3] [4]

पाठान्तर—१. का० फजर हुवंदी साहिबा गया । २. का० मालन होइ, अ० मल्लिणीया । ३. का० में निम्नलिखित दोहे इस प्रसंगमें और है :

देनि कुंकम देह भू वलि मोतीयां वधाई ।
वारू मंडप छाईया ढढणि बाहर गाइ ॥
साहिजादा साहबीयां झालि करंदा कोल ।
साहजादा आया इहा ढढणीयां दे बोल ॥

(तुल० ७७.२, ८२.२ तथा ८१.२) ।

४. अ० में इसकी क्रम-संख्या '७' दी हुई है।

अर्थ—प्रभात हो रहा था और यह गुणी स्त्री (ढाढिनी) शाहज़ादेके द्वारपर गयी; [पहली बार यह] मालिन थी, [फिर] वैद्या थी और तीसरी बार ढाढिनी थी।

टिप्पणी—फजरि < फ़ज्र [अ०] = प्रभात।

[८४]

ढढिणियां क्या गाया।[1]
हलकइ 'हालि अलापिया'[2] हलकइ 'हुरक बजाइ'[3]।
जे 'रति सुट्ठि सुगुट्ठीया'[4] 'ते सु कहंदी गाइ'[5]॥[6]

पाठान्तर—१. का० ढढणी कुछ गावौ। २. का० राग अलापही। ३. का० हुडुक बजाव। ४. ध० रत सुंठ सुगुंठीयां, का० राति सुट्ठु सुवाटीया। ५. का० में छूटा हुआ है। ६. अ० मे इसकी क्रम-संख्या '८' दी हुई है।

अर्थ—ढाढिनीने क्या गाया? हलके ही हिलकर (हिलते हुए) उसने आलाप ली और हलके ही हुडुक बजाकर [वर-वधूकी] जो रति (अनुराग) की सुष्ठु गोष्ठी हुई, उसे गाकर वह कह रही है।

टिप्पणी—सुट्ठि < सुष्ठु = शोभन, सुन्दर। गुट्ठी < गोष्ठी।

[८५]

प्रथम पलिंगा साहिबां साहि 'दिहंदा वयण'[1]।
अंबर हंदा 'इंदुला'[2] 'इह अउर उगंदा'[3] गयण॥[4][5]

पाठान्तर—१. ध० गहंदा पैणि, का० गयंदी रयण। २. का० इंदुला। ३. ध० ज्यो र उगंदा, का० उंर गयंदा। ४. का० में और है :

साहिजादा साहिबां सरिस प्रमुदित बोले बाणि।
दुषा हंदा संचीया सुष फलंदा [············]॥
[तुल० छंद ८६]

५. अ० में इस छंदकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '९'।

अर्थ—"साहिबाके पर्यंकमें आकर प्रथम ही राजकुमार यह वचन दे (कह) रहा है '[उधर] आकाशका चन्द्रमा है, तो यह दूसरा [मेरे] आकाशमें उग रहा है' ।"

टिप्पणी—वयण<वचन । इंदला<इन्दु = चन्द्रमा । गयण<गगन = आकाश ।

[८६]

झलहल 'झालंदे'[1] नयण साहि 'गहंदा पाणि'[2] ।
दुष 'छिणंदा सिंचणा'[3] सुष्ष 'फलंदा जाणि'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. का० कंदे । २. ध० गहंदा पैण, का० गयंदा पाण । ३. का० विणंदा संचणा । ४. ध० का० थियंदा जाण । ५. अ० मे इस छंदकी क्रम-संख्या दी हुई है और वह है '१०' ।

अर्थ—"नेत्र [प्रसन्नतासे] झलमल-झलमल कर रहे हैं और शाहज़ादा साहिबाका हाथ पकड़ रहा है, मानो [वृक्षका] दुःखपूर्ण सींचना अब छिन्न (समाप्त) हो रहा है, और [उसमें] सुखका फल [लग] रहा है ।"

टिप्पणी—जाणि<मानो ।

[८७]

के दिन केही केलियां के दिन केही केलि ।
दरिया 'हिया' तरंगिया 'कडण गिलंदा षेलि'[2] ॥[3, 4]

पाठान्तर—१. का० केर । २. ध० किं न गिलंदा षेल, का० कुंन गनंदा-केलि । ३. का० में और है :

साहिजादा साहबीया लध्धा सुष कहंति ।
दरिया चसै तरंगी को तस पार लहंति ॥
[तुल० छंद ८७]

४. अ० में इस छन्दकी क्रम संख्या दी हुई है, और वह है '११' ।

अर्थ—किसी दिन किसी प्रकारकी केलि और किसी दिन किसी प्रकारकी केलि [थी] । समुद्र तथा हृदयकी तरंगोंको कौन खेलमें गिन (?) सकता है ?

[८८]

जादे जा दिन 'अग्गला'[१] साहिब सा दिन रूप ।
'सइंमुह सोम बिलग्गीया'[२] 'तो न बुझंदा'[३] धूप ॥[४]

पाठान्तर—१. का० आगला । २. ध० सामुह सोम विलग्गीया, का० सोमे सोम विलंवीया । ३. का० कोंन कढदी । ४. अ० में इस छन्दकी क्रम-संख्या दी हुई है, और वह है '१२' ।

अर्थ—शाहज़ादेके जो [यौवनके] अगके दिन हैं, साहिबाके वे ही रूपके हैं, फलतः शतमुख (सूर्य ?) [शाहज़ादा] सोम (चन्द्र) [साहबा] से [कितना भी] लिपट रहा है तो भी उसकी धूप (मिलन-लालसा) मिट नहीं रही है ।

टिप्पणी—सइं < सय < शत = सौ ।

[८९]

'इतनी बात करतइं 'उह रितु'[२] गई ।
'अउर'[३] रितु फजर भई ।[४]
'मुरग हुं बांग दई'।[८]
'गाइण'[५] हुं ललित कई ।[६]
'तारहु का'[७] तेज छई ।
सुविहाण अंबर 'दई' ।[९]
[१]वसंत 'रितु'[१०] पाछी भई ।
'धूपकाला कहल'[११] लई ॥

पाठान्तर—१. का० में यहाँ और है : वचनिका । कोककी कला परवीन साहिजादा । तिसकै कामका उवादा । रोज ३।४ गैर महल रहीया । तब साहिजादां साहिजादै कुं कहीया । बहुत गुनीजन मिलै है । बहुत करी है आसा । एक बार महला दईयै साहिजादा देषीयै तमासा । २. का० अहोराति । ३. ध० उह । ४. का० यह वाक्य नहीं है । ५. का० गायना । ६. का० में और है : तीजै रोजकी फजर भई । ७. ध० तारुं, का० तारन । ८. ध० का० लई । ९. का० में और है : गुनी जन गुनि धुनि लई । साहिबां साहिजादे की बलाइ गही । १०. का० रुति । ११. ध० धूप काल हलहल, का० धूप काए कलहल ।

अर्थ—इतनी बातें करते वह [रात की] ऋतु गयी और दूसरी ऋतु प्रभातकी हुई। मुर्गने भी बाँग दी। गायकोंने भी ललित [रागिनी] की। तारोंका भी तेज—क्षय हुआ। आकाशने सुप्रभात दिया। वसन्त ऋतु पीछे हुई और धूपकी ऋतुने कहल (दाहकता) ग्रहण की।

टिप्पणी—अउर<अवर<अपर = अन्य। फजर<फज्र [अ०] = प्रभात। गायण<गायन = गायक। कहल = दाहकता।

[९०]

इतनी वात करतइं साहिजादह कुमकुमइ 'विरषे'[१] भराए।[२]
'बारि ऊंछह'[३] लगाए।[४]
'अबीर हुं धर वणाए'।[५]
'कपूर कस्तूरी भूषण भराए'।[६]
'फूलहुं वितन तणाए'।[७]
'गायणहुं गाए'।[८]
एकइं 'योग'[९]।[१०] 'एकइं भोग'[११]।[१२]
'न जाणीइं साहिजादे कुं क्या सु 'रोग'[१३]॥[१४]

पाठान्तर—१. ध० वरष। ३. ध० बारुहछांह। ९. ध० जोगइ। ११. ध० भोगइ। १३. ध० रुचइ। २, ४, ५, ६, ७, ८, १०, १२, १४. का० में इन समस्त वाक्योंके स्थानपर है : साहिजादै हुकम कीया। समीयानें तनावौ। छिरकाव करावौ। गिलमा विछावौ। सिंहासन वयावौ। सादाने बजावौ। सब गुनीजन बोलावौ। अपनी-अपनी कला है सो ले ले आवौ। साहिजादां मौज तूठा। लाख लाख दान वूठा। कसतूरी कपूरा अरगजा चंदन बनावौ। चोवा जवाद के भुवन भरावौ। खाक की जाहिगा अबीर मंगावो। मुखमल कतीफा। जरबाब सुं महल बनांनां। आछै जरकसी समीयानां ताना। मोतीया चौक पूंराना। साहिजादै कुं लैत भुवाना। जरी जराव का पहरीयां वागा। एक-एक नग लाष लाष केरा। कटि मेखला जर कपुर बषानै। आप है नवग्रह सधि रास जानै। साहिबां साहजादै अरगजै भीनै है। रंग सुरगी उंढणी साहिजादी—नी है। ता भीतर नाग सरस लटकती वैनी है। चपल दांदे जाके कटित्थभ करते हैं। पंच बान साहिजादै कुं मेलूबे देते है। सहजादा नै महला दीया है। गुनी जन जय जय सबद कीया है। कोटि कमल वने। मेघ घटा घने। बारह आदीत

उगा। इंद्रका पारिषा पूगा। गुनी जन बोलवा लागे। छत्रीस वाजित्र वागे। [इन वाक्योंकी शब्दावली और उक्तियाँ कुछ यहाँकी और कुछ बादमें आनेवाले प्रसंगकी हैं।]

अर्थ—इतनी बातें करते शाहज़ादेने कुमकुमे और वरषे (सिल्हक) भराये, जलके उत्स लगाये। धरापर अबीर भी बनायी (रचायी)। कपूर और कस्तूरीके आभरण भराये। फूलके वितान तनाये। गायकोंने भी [गीत] गाये। एकने योगके, एकने भोगके, [इस विचारसे कि] शाहज़ादेको न जाने क्या रुचिकर हो।

टिप्पणी—वरष < वरक्ख < वराख्य = गन्ध-द्रव्य-विशेष, सिल्हक। ऊंछ < उच्छ < उत्स = झरना। गायण < गायन = गायक। रोग < रोअग < रोचक = रुचिजनक।

[९१]

'इतनी बात करतइं दुइ नटिणी आइ षरी हुई'।[1]
'एक जोगिणी का स्वांग कीयै'[2] 'एक भोगिणी का'।[3]
'दोउ दूहे कहे'[4]।

पाठान्तर—१. का० इतनै वीचि दोइ नटकी आई। २. का० एकै जोगिनीका भेष कीया, श० एक जोगिणीका स्वांग। ३. ष० एक भोगणीका स्वांगका लीयै, का० एकै भोगिनीका भेष कीया। ४. का० में इसके स्थानपर है : जाकै सूंधै भीनी चोली।

अर्थ—इतनी बातें करते दो नटनियाँ आकर खड़ी हुईं : एक योगिनीका स्वाँग किये हुए और एक (दूसरी) भोगिनीका। दोनोंने दूहे कहे।

[९२]

'पढमां ची'[1] सिंगारी 'बोली'[2]।
[3]साहिजादे। लोयण ते 'लोइंदिए'[4] जे 'दिट्ठां ही पिट्ठ'।[5]
'पाधर'[6] 'सर जिम कट्ठीइं'[7] नेह 'समट्ठा' निट्ठ'[8]॥[9]

पाठान्तर—१. ष० प्रथम चढ, का० प्रथम पढम। २. का० बोली है। ३. का० में 'भोगिनी वायक' और है। ४. ष० लोयंदीयां। ५. का० दिट्ठाइं

पिठि। ६. अ० पीधर (पाधर), का० पधर। ७. का० सर जन कढिए। ८. ध० समिट्ठा निट्ठ, का० समिट्ठा निट्ठि अ० समठा निठ। ९. अ० मे इस प्रसंगके दोहोंकी स्वतन्त्र क्रम-संख्या दी हुई है, और इस दोहेकी क्रम-संख्या है '१'।

अर्थ—पहले-पहल श्रृगारी (भोगिनी) बोली, "शाहज़ादे, लोचन तो वे देखते हुए होते हैं, जो दीखते ही प्रविष्ट हो जाते हैं, और जो स्नेहसे ऐसे भली-भाँति समर्थ (पुष्ट) होते हैं कि उन्हें निकालना शरोंको सीधा निकालने-जैसा होता है।

टिप्पणी—ची : ही (दे० 'दक्खिनी हिन्दी' पृ० ५३)। लोय्<लोच् = देखना। पिट्ठ<पइट्ट<प्रविष्ट। पाधर<पद्धर [दे०] = सीधा। समट्ठ<समर्थ।

[६३]

जोगिणी 'बोली'[1]।

> लोयण ते लोयंदीइ जे 'लोअंदे'[2] जग्ग।
> 'अप्पा'[3] काम कमच्छलां 'बहु देषंदा'[4] कग्ग॥[5]

पाठान्तर—१. का० वायक। २. ध० लोयदीया जे लोइंदे, का० लोयंदीयां जे लोयंदा, अ० लोयंदीइ जे लोअंदे। ३. का० आपा। ४. का० बह देषंदे। ५. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या है '२'।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन वे देखते हुए होते हैं जो जगत् [की वास्तविकता] को देखते [होते] हैं। अपने कर्म्म और कर्म-छलको बहुतेरे काग भी देख रहे होते हैं।"

टिप्पणी—**अप्पा**<आत्म। **काम**<कर्म्म। **कग्ग**<काग।

[६४]

भोगिणी 'बोली'[1]।

> लोयण ते 'लोइंदीइ'[2] जे पेम सु 'वुट्ठइ धार'[3]।
> रीझडिआं झड 'मंडि कइ'[4] 'सव्वसु'[5] अप्पणहार[6]॥

पाठान्तर—१. का० वायक । २. ध० जोअंदीयां. का० लोयंदीयां । ३. का० वुट्ठार । ४. का० मंडीयां । ५. ध० सरवस, अ० सरवरैसु । ६. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या है '३' ।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन वे देखते हुए होते हैं, जो प्रेमकी धारा बरसते हैं, और जो रीझनेपर झड़ी बाँधकर [अपना] सर्वस्व अर्पित करने-वाले होते हैं ।"

टिप्पणी—वुट्ठ <वृष्ट = बरसा हुआ । अप्प <आत्म । सव्वसु <सव्वस्स < सर्वस्व ।

[९५]

जोगिणी बोली ।

लोयण ते 'लोइंदीए'[1] जे 'लोइंदे'[2] अप्प ।
तीन्ही तिन्नि[3] अवत्थडी कउ ण करंदा 'वप्प'[4] ॥[5]

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीयां । २. का० लोयंदा । ३. ध० तिन्ही नन्ह, का० तिन्हा विण । ४. का० अप्प । ५. अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या है '४' ।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं, जो आप (आत्म) को देखते हैं । उनकी तीन ही अवस्थाएँ—जाग्रत, स्वप्न और तुरीय—होती हैं, और वे कभी [अपने आपको] ढँकते नहीं हैं—(सुषुप्तिको नहीं प्राप्त होते हैं) ।

टिप्पणी—अवत्थ <अवस्था । कउ <काउ = कदापि । वप्प् <त्वच् (?) = ढँकना, आच्छादित करना ।

[९६]

भोगिणी बोली ।

लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे अणरत्ता 'ही'[2] रत्त ।
'दीया'[3] देह 'स दुज्झीया'[4] तोइ पडंदा पत्त ॥[5]

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीया। २. ध० का० में नहीं है। ३. ध० दीवइ, का० दीवै। ४. ध० सु झंपीयां। ५ अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या है '५'।

अर्थ—मोगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो [मादक द्रव्यादिसे] अनराते ही राते होते हैं, जो [उन पतिंगोंकी भाँति होते हैं] दीपकसे [जिनका] देह दग्ध हो गया है, तो भी [जो दीपकके पास] पहुँचकर उसमें पड़ते ही हैं।"

टिप्पणी—रत्त < रक्त = अनुरक्त, लाल। पत्त < प्राप्त।

[९७]

जोगिणी बोली।

> लोयण ते 'लोइंदीए'[१] जे जुग 'जोइ अरत्त'[२]।
> माया 'ओढण'[३] भुल्लिया जांणि कलाली मत्त[४]॥

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीया। २. का० जोई रत्त। ३. का० माया ढढणी। ४. अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या '६' है।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जिन्होंने जगत्-को अ-रक्त [भावसे] देखकर मायाके [आकर्षणपूर्ण] ओढ़न (परिधान) को उसी प्रकार भुला दिया [है] जैसे कलाली [मदिरासे] मत्त व्यक्तिको [भुला देती है]।"

टिप्पणी—जुग < जगत् = संसार। कलाल < कल्यपाल = मदिरा बेचने-वाला।

[९८]

भोगिणी बोली।

> लोइण ते 'लोइंदीए'[१] जे 'अंबा'[२] ही अब्ब।
> 'ज्युं हीउ पाउस रंगीया'[३] 'ताइ'[४] मिलंदा सब्ब॥

पाठान्तर—१. ध० का० लोअंदीआं। २. का० अबा। ३. ध० ज्युं हो उसु रंगीयां, का० जुं ही पाउसु रंगीयां, अ० ज्युं ही पीउस(<पाउस) रंगीया। ४. ध० तोइ, का० तइ। ५. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या '७' है।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो अंभस् (जल) वाले बादलों [के समान] होते हैं, जो जैसे ही पावस उनका हृदय रँग देता है, वैसे ही वे [बरसनेके लिए] समस्त रूपसे मिल रहते (जाते) हैं।"

टिप्पणी—अंबा<अंभस् = जल। अब्ब<अभ्र = बादल। पाउस<प्रावृट् = वर्षा। ताइ<तदा।

[९९]

जोगिणी बोली।

लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे जाणि परंदा गत्त।
को घरीयां घर लग्गीयां रत्ता तोइ अरत्त॥[2,3]

पाठान्तर—१. ध० लोयंदीयां। २. का० में इस दोहेके स्थानपर है:

लोयण ते लोअंदीयां माया मांहि अंग।
पोयण जलहर ऊपरै तोइ न भीजैं अंग॥

३. अ० में इस दोहेकी क्रम-संख्या '८' दी हुई है।

अर्थ—योगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं, जो गत (गए) से जान पड़ते होते हैं। किसी घड़ी यदि वे घर (गृहस्थी) से लगे भी हुए होते हैं तो उससे रक्त [ज्ञात] होते हुए भी वे [सचमुच] अ-रक्त होते हैं।"

टिप्पणी—गत<गत = गया हुआ।

[१००]

जोगिणी बोली।

लोइण ते 'लोइंदीए'[1] जे रंगइ करियांह'[2]।
'बीकर'[3] 'बाजि न चड्डही'[4] ज्युं 'गज बंगरियां'[5]॥[6]

पाठान्तर—१. ध० का० लोयंदीयां। २. का० जे रंगइ करीयां, अ० ने रंगइ करियांह। ३. का० बीयकरि। ४. ध० बाज न चढही, का० बाज न चडई। ५. अ० च बंगरीयांह। ६. अ० मे इस दोहेकी क्रम-संख्या '९' है।

अर्थ—मोगिनी बोली, "लोचन तो वे देखते हुए होते हैं जो एक मात्र रंग (प्रेम) करते हैं, जैसे [घोड़ेपर चढ़नेवाला] घोड़ेको बेचकर विकृत अंग वाले हाथीपर नहीं चढ़ता है।"

टिप्पणी—वीक् <विक्क् <वि + क्री = बेचना। वंगर <वंग <व्यङ्ग = विकृत अगका।

[१०१]

[१]'इतिनी बात करतइं साहिजादे कुं 'ठंढ'[२] लागी।
'निवासा हुउणइ लागी'[३]।
'दाणसवंद'[४] साहिजादी सुं साहिजादइ कह्या।
साहिबा 'आसा आण'।[५]
'आए' [६]पग 'पाण'[७]।
'अबीर 'महि'[८] मुझइ भरम 'होइ'[९]।
न जाणीयइ 'गिरइ ती'[१०] क्या होइ।

पाठान्तर—१. का० में और है : वचनिका। नटनिया सबद करि बहुत भेद बताया। बगसीस लाष टका सौने का पाया। नटनई बाहिर गई। साहिबा के चालनै की त्यारी भई। सा दावल दानसमंद कै अनेक षाणा मिजमानी करी। साहिबा कै तांई मुहुर जुहर षच भरी। विदा करी। दुलहा वधाया। विविध रंग राग हुआ सादाने वागे। लाख कोंडी युं मोजह वचन लागे। साहिजादा महलां रंग करता है। मानु सुषके सागर भरता है। गुलाब कमकमाके होद मै रमता है। अबीर अरगजा कादम करचा। साहिजादै आसष सु मन धरचा। २. ध० का० ढढि लागणै। ३. ध० निवासाम हुणइ लागी, का० में यह वाक्य नहीं है। ४. अ० दाणसबंध। ५. ध० का० आसव आणि। ६. ध० का० मे यह नहीं है। ७. का० पाणि। ८. का० तै। ९. ध० हो चाहइ, का० होता है। १०. ध० गिरइ थी, का० गिरें थी।

अर्थ—इतनी बातें करते शाहज़ादेको ठण्ड लगी, और रात्रि होने लगी। [दावर] दानिशमन्दकी शाहज़ादीसे शाहज़ादेने कहा, "साहिबा आसव ला,

जिससे पैरोंमें प्राण आयें। अबीरमें मुझे भ्रम हो रहा है; [यदि गिर गया तो] न जाने गिरनेसे क्या हो !

टिप्पणी—निवासा < निवास = रात्रि। आसा < आसव = मदिरा। पाण < प्राण = चेतना।

[१०२]

साहिबां 'अरगजइ'[1] भीनी हइ।
रंग पर रंग ऊंढणी साहिजादइ दीनी हइ।
[2]'फुरमांण'[3] धाई।
'जाणुं'[4] काठ की पूतरी 'कुं करि'[5] वणाई।
'पाचि'[6] का करावा।
'सारइ'[7] लाल का प्याला।
'जाणें[8] नील कमल पर बे दीयें की जाला'[8]।
करणी के 'झार तर साहिबां' भरचा।
'जाणें'[10] अपछरां अमी हरचा।
[11]'बार दुइ दीन्हा'[12]।
'साहिजादइ लीन्हा'[13]।
'तजइ कइ आवतइं हवाल कीन्हा'[14]।
'ते हवाल कहणा'[15]।
'जिणइ'[16] दुनिया जाणी 'तिणहुं'[17] का लहणा।

पाठान्तर—१. का० अरगजै, अ० अरगजां। २. का० में यहाँ और है: साहिबां साहिजादै कुं कह्या। जांनि सराब के सोसे आनि। पगपाणि [तुल० पूर्ववर्ती वाक्य]। ३. ध० फुरमान ही, का० कहत ही। ४. का० मांनु। ५. का० में नहीं है। ६. ध० पाचका, अ० पाचिका, का० काच। ७. का० सारी, अ० सारे। ८. ध० का० जांने नील कमल पर बे दीयै (वेलो—ध०) की झाला, अ० जाणी नील कमलपर बे दीयकी जाला। ९. का० झड़ तलै। १०. ध० जानो, का० जानु। ११. का० मे यहाँ और है: साहिबां र दौरी। मै दीया हूवा। अबीर मांझि मुझें भरम हूवा। १२. का० साहिबां आनि दोइ प्याला दीया। १३. का० तैसा साहिजादा लीया। १४. का० ताजै (तीजै) आवतै ही प्याला हाथ छूटि गिरीया। १५. का० मे नहीं है। १६. का० जिणइ दीन। १७. ध० तिनहीं।

अर्थ—साहिबा अरगजासे भीनी है, शाहज़ादेने रंगपर रंग [की] ओढ़नी [उसको] दी है। वह फ़रमान पर [ऐसी] दौड़ पड़ी, मानो किसी प्रकारसे बनायी हुई काठकी पुतली हो। पर्चाकारीका क़राबा (बड़ा पात्र) था और समस्त रूपसे लाल [से निर्मित] प्याला था, [जो उस क़राबेपर ऐसा लगता था] मानो नीले कमल पर बिना दीपकोंकी ज्वाला हो। करना (?) की झाड़के नीचे साहिबाने [वह] प्याला भरा, मानो अप्सरा द्वारा हरा हुआ अमृत [भरा गया] हो। [इस प्रकार] दो बार उसने [प्याला] दिया। और शाहज़ादेने [उसे] लिया। तीसरी बार प्यालेके आते ही [साहिबाने] [एक] हवाल कर दिया। वह हवाल कहना है। जिन्होंने दुनिया [की नश्वरता] जानी है, उन्हें [इस हवालसे] क्या लेना है (उनके लिए इस घटनामें क्या रखा है) ?

टिप्पणी—क़राबा <कराबः [अ०] = शीशेका बड़ा पात्र। दीया < दीअअ < दीपक। करणी = करना। पुष्प (?)।

[१०३]

दूहा—लंक 'लहक्को'[१] झीणियां 'की भांणी रतिभार'[२]।
'सास सरदा वुदीयां (सरंदा बुट्ठियां) कुसल कहंदइ वार'[३]॥[४]

पाठान्तर—१. का० लहक्कै। २. ध० कइ भगी रत भार। ३. यह पक्ति ध० का० में नहीं है। इनमे अगले दोहेका भी प्रथम चरण नही है। इस छंदके प्रथम चरणसे अगले छंदके प्रथम चरणके तुक-साम्यके कारण ये बीचके दोनों चरण छूटे लगते हैं। ४. अ०में इस प्रसंगके दूहोकी भी स्वतंत्र क्रम-संख्या दी हुई है, और उसके अन्तर्गत इस दूहेकी क्रम-संख्या '१' है।

अर्थ—'या तो [साहिबाकी] क्षीण कटि रति भारसे टूटी होनेके कारण लचक गयी, अथवा कुशल (?) कहते समय साँसें चलती हुई व्युत्थित हो गयीं (ज़ोरोंसे चलने लगीं), [इसलिए यह हुआ]।

टिप्पणी—लहक् = लचकना। झीण < क्षीण। भाणी < भग्न। सर् < सृ = गमन करना। वुट्ठिअ < व्युत्थित = उठा हुआ।

[१०४]

'की पग पंतरि चुक्कियाँ की भीनी रस भार'[1]।
'लष्ष लियंदा सट्ठि का'[2] प्याला भज्जणहार[3]॥

पाठान्तर—१. यह चरण ध० का० में नही है—पूर्ववर्ती दूहेके प्रथम चरण से तुक-साम्यके कारण छूटा हुआ लगता है। २. का० लाष लहंदा साठि वां। ३. अ० मे इस दूहेकी क्रम-सख्या '२' है।

अर्थ—अथवा पैर पदान्तर करनेमें चूक गये, अथवा वह रस भारसे भीनी हो रही थी [इसलिए ऐसा हुआ] कि साठ लाखका किया जा रहा (लिया) हुआ प्याला टूटनेवाला हुआ।

टिप्पणी—पंतर < पदान्तर < डग रखनेमें होनेवाली भूल। भज्ज् < भञ्ज् = तोड़ना।

[१०५]

भग्गा लाल सु भज्जणा 'भग्गी भम्म सु बाल'[1]।
गई सासू 'सरणागताँ'[2] कउण 'हुअंदा हाल'[3]॥[4]

पाठान्तर—१. का० बिभगल भग्गी बाल। २. ध० सरणागती। ३. का० हवंदा हवाल, अ० हुअंदी हाल। ४. अ० में इस दूहेकी क्रम-संख्या '३' है।

अर्थ—वह लाल [निर्मित] भाजन (पात्र) टूटा तो भ्रम (भय) के कारण वह बाला भागी। वह सासकी शरणागत गयी (हुई) कि उससे यह कौन-सा हाल हो रहा (हो गया) था।

टिप्पणी—भग्ग < भग्न = टूटा हुआ। भज्जण < भाजन = पात्र। भम्म < भ्रम = भय।

[१०६]

टुक एक 'जातइ'[2] साहिजादइ कह्या
'वे'[3] साहिबाँ 'अजहुं'[4] न आई।
'अपइ'[5] छिपी 'किनहुं'[6] छिपाई।
'अबे मरणा तई'[7] क्या बुराई।

'कुमकुमा कइ जल महि तइ'[9] निकस्या ।
'मानहुं कमल'[10] विकस्यां ।
[11]'अबीर महिं षोजइं षोज दे्ष्या'[12] ।
'दे्षइ तउ पग लस्या'[13] ।
प्याला 'भूजा'[14] दे्ष्या ।[15]
दे्षत ही 'हस्या'[16] ॥[17]

पाठान्तर—१. का० में यहाँ है : वचनिका । साहिबां बीबी बिवानां पास जाइ छिपी है । मन मैं डरी है । २ का० जातां । ३. का० में नही है । ४. ध० अजुह सु, का० मे नही है । ५. का० आप । ६. का० कै किसही कै । ७. का० साहिबां गई; मुझ कुं कांम बान लाई । ८. का० और मरणै थी । ९. का० कमकमै कै जल, अ० कुमकुमा के जल महि थी । १०. ध० मनहि कमल, का० मानुं कंवल । ११. का० मे यहाँ 'तब साहिजादै' और है । १२. ध० अबर नइं षोजइ षोज देष्या, का० अबीर अरगजै मै षोज षोज आई देषि हस्या । १३. ध० देषत ही पग लस्या, का० साहिबा का पाव देषि लस्या, अ० देषइ तउ पल गस्या । १४. ध० भागा । १६ ध० हसि पेष्या । १५.-१७. का० में इन दो वाक्योके स्थानपर है : प्याला के टुकरे ठौर ठौर परे । साहिजादा अपणै मन मैं डरै । कबही साहिबां कै चोट आई होइगी ।

अर्थ—कुछ क्षणोंके जाते (बीतते) ही शाहज़ादेने कहा, "रे, साहिबा आज (अभी) भी नहीं आयी ? वह आप ही कहीं छिप गयी या किसीने उसे छिपा दिया ? रे, [उसके न होनेपर] मरनेसे क्या बुराई [होगी] ?" वह कुमकुमेके जलमें से [होकर] निकला, मानो कमल विकसित हुआ हो । अबीरमें खोज करते हुए [उसने] उसकी खोज देखी । देखता है तो [साहिबाका] पैर उसमें लसित (अंकित) है । [साथ ही वहाँ] उसने प्याला टूटा देखा । देखते ही वह हँसा ।

टिप्पणी—भूजा < भग्न = टूटा ।

[१०७]

दूहा—षइर 'करंदा कोडि कहि'[1] मन अप्पणइ विचारि ।
षूब 'स'[2] पत्थर भग्गीया 'बिभगन'[3] भग्गी नारि[4] ॥

पाठान्तर—१. घ० करंदा कोड कहि, का० करूंदे कोडि दां, अ० करंनइ कोडि कहि। २. का० सु। ३. घ० जे हुन। ४. अ० में प्रसंगके इस अकेले दोहेपर '१' की संख्या दी हुई है।

अर्थ—[उसने कहा,] "अपने मनमें विचार कर मैंने करोड़का खैर (दान-पुण्य) करनेकी [बात] कही थी, किन्तु यह खूब रहा कि पत्थर [का प्याला] टूट गया और [उसके] टूटनेके परिणाम-स्वरूप [मेरी] नारी भाग गयी।"

टिप्पणी—खइर <खैरात [अ०] = दान-पुण्य।

[१०८]

साहिजादा हसता हइ।
पग देषि देषि उलसता हइ।
मा आवती चीनी।
चादर सिर परि लीनी।
'लाजनु संकुचि आया'[1]।
'जाणहुं'[2] चंद 'बादलइ*'[3] छिपाया।
'मा अरदास करी'[4]।
पूत साहिबां 'षून हमहि दीन'[5]।
मा क्या षून।
[6]'सठि लष लिअंदा'[7] प्याला 'भग्गा हइ'[8] अउर क्या षून।
[9]'साठि लष लिअं[दा]'[10]।

पाठान्तर—१. घ० लाजन ही सकुचाया, का० लाज सुकचाया। २. का० में नहीं है। ३. घ० बादरइ, का० बादरै, अ० बादलि। ४. घ० कीनी। ५. घ० षून मइ दीनी, का० षूब भरी। ६. का० में और है 'पूत', घ० में 'पुत्र'। ७. का० साठि लाष का। ८. का० भागा। ९. का० में यहाँ और है: साहिजादा वायक। १०. घ० में यह वाक्य नहीं है, का० अैसा षून ल्यावै को प्यादा।

अर्थ—शाहज़ादा हसता है और साहिबाके पैरों [के चिह्न] को देख-देखकर उल्लसित होता है। [उसने] माँको आती हुई पहचाना। [अतः]

चादर उसने सिरपर कर ली। लज्जासे वह [ऐसा] सकुचाया, मानो चाँदको बादलने छिपाया हो। माँने निवेदन किया, 'पुत्र, साहिबाने [हमें] ख़ून [का ज़ुर्म] दिया। [शाहज़ादेने पूछा,] "माँ क्या ख़ून ? [उसने कहा,] "साठ लाखका लिया जाता हुआ प्याला टूटा है, और क्या ख़ून ? साठ लाख-का लिया जाता हुआ !"

टिप्पणी—ऊलस् < उल्लस् = उल्लसित होना, उमंगमें आना। भग्गा < भग्न।

[१०६]

'अमा सच्च'[1]।
हमहुं सुलताण पेरो साहि उपाए।
'समरकंद साहिजादी बीबी बिवांणां'[2] जाए।
'मा साहिबां का न्याउ अछए'[4]।[5]
'उसकइ दावल पछइ'।
मांगि 'बे लाल ढमरे'[7]।
न जांणउं 'उंती घरी कित एक अमरे'[8]।[9]
'मां के सिर उपर फेरि फेरि भाने'[10]।
मानुं चांद तारां 'सुं'[11] रिसानइ।
'अेह'[12] वेला लाल धरती 'हुइ रही'[13]।

पाठान्तर—१. ध० मा सच्च हइ, का० मा सच। २. ध० पुत्र साहिबा साहिजादी बीबीयन। ३. का० में पुनः यहाँ है : साहिजादा वायक। ४. का० इस बात का न्याउ है, ध० मा साहिबा का न्याव छइ। ५. का० मे और है : साहिबां तौ न्याय करें। ६. का० जिसकै दावल दान पीछै। ७. ध० बे लाल के ढावरे, का० कै लाल के ढावरे। ८. ध० उत घरी केते ही आंवरे, का० उसकै घरि कितनेक आउरे। ९. का० में यहाँ और है : ल्यावौ प्याले में है। १०. का० अमा के सिर पर फेरे; प्याले उवारि उवारि भाने। ११. का० परि। १२. ध० उहिं, का० उवह। १३. ध० हुई, का० भई।

अर्थ—[शाहज़ादाने कहा,] "माँ [यह] सच है। किन्तु हम भी तो सुलतान फीरोज़ शाहके पैदा किये हुए और समरकन्दकी बीबी बिवानांके

जन्म दिये हुए हैं। माँ साहिबाका [जो] न्याय है, [वह तो] उसके दावर [दानिशमन्द] के पक्ष में (पास) है।" फिर उसने कहा, "कालके दो ढमरे माँगो (मँगाओ)।" न जाने उस घड़ी कितने ही वहाँ [लाये] गये। [उन सबको] शाहज़ादेने माँके सिरपर फेर-फेरकर तोड़ डाला, मानो चाँद-तारोंसे रुष्ट हुआ हो, [इसलिए] उन्हें तोड़ रहा हो। उस वेलामें धरती लाल हो रही।

टिप्पणी—उपाया <उप्पाइअ <उत्पादित = उत्पन्न किया हुआ। अछ् < अस् = होना। पछ <पक्ष = पास। ढमरा [दे०] = पिठर, स्थाली। अम् = जाना। भान् <भञ्ज् = भग्न करना, तोड़ना।

[११०]

'सुलताण सुण्या'।[1]
'सुणतइं जुंहरी बुलाए'।[2]
'कइंमति कराई'।[3]
तीनि अरब बासठि कोडि बारह लाष[4] 'कुतबदी गमाई'।[5]
'सुलताण कह्या'[6] टुकरे भंडारि 'धरावउ'॥[7]

पाठान्तर—१. का० में इसके स्थानपर है : बीबीयां उठि उठि पातिसाह पास गई। सुलतांन कुं बात कही। सत्ता सबहै चक रही। साहिजादै जुलम कीया। प्याला सब भांनि दीया। सुलतान मन रोस न आया। २. का० सुनतै ही जुंहरी बुलाया। ३. ध० कीमति कराए, का० कीमति कराया। ४. यहाँ ध० में और है : साठि हजार नव सइ नेऊ, यहाँ का० में और है : पचीस हजार च्यार सै चोरासी इतनी कीमति सुणाया। ५. का० इतनी कुतबदी बहाया। ६. का० में इसके स्थान पर है : अब क्या चाहै। ७. ध० धरहु, का० वाहौ।

अर्थ—सुलतानने सुना और सुनते ही जौहरियोंको बुलाया। उनकी क़ीमत करायी। [जौहरियोंने कहा,] "तीन अरब बासठ करोड़ बारह लाख [की क़ीमत] क़ुतुबुद्दीनने गँवायी।" सुलतानने कहा, टुकड़ोंको भाण्डारमें रखवाओ।

टिप्पणी—गमाँव् <गमय = समाप्त करना।

[१११]

एक पाइ खरा कुतबदी अरदास करइ'[1] ।
'टुकरे पाउं तउ कछू नाम ना चलाउं' ।[2]
'सुलताण'[3] कह्या 'तेरा ई हइ'[4] ।[5]
'राषि भावइ गमाइ'[6] ॥

पाठान्तर—३. ध० तेरे ही है । ४. अ० सुलताणि । १,२,५,६. का० में इन वाक्योके स्थानपर है : इतनौ साहिजादै एक पाव षरे हूये । सुलतान सुं वीनती करी । टुकरे भंडार चाहौगे तो नाम ना न चलै । [पातिसा]ह हुकुम कीया । लूटाइ भावै तेरे ही हैं । अब ए निरमाइल भए । साहजादा....ए । षलक मुलक धाया । टुकरै नाषनै लागा । सादांना वाजनै लागा । एक चडते है । एक पडते है । एक भरते हैं । षूब षूब षसते है । साहिबा साहिजादा हसते है । षलक निहाल कीया । लाष लाष का सब किसही नै दीया ।

अर्थ—[यह सुनकर] एक पैरपर खड़ा होकर कुतुबुद्दीन निवेदन करता है, "मैं [उत्तराधिकारमें] टुकड़े पाऊँगा तो तुम्हारा कुछ भी नाम न चला सकूँगा ।" सुलतानने कहा, [सब कुछ] तेरा ही है, चाहे रखे, चाहे गँवाये ।

टिप्पणी—अरदास < अर्जदाश्त [फ़ा०] = निवेदन । गमाव् < गमय् = समाप्त करना, नष्ट करना ।

[११२]

'जिण ही*'[1] जीव अरंगिया 'घरि घरि लग्गी लाइ'[2] ।
हलकइ 'जलहल ओल्हिया'[3] रहइ 'सुरेष उसाहि'[4] ॥

पाठान्तर—१. का० जिनही, अ० जिणी । २. ध० ज्वल न भई जन जाइ, का० घर घर आऊ जास । ३. का० जलहर वुट्ठीया, ध० कह्या सु साह कुतबदी । ४. ध० सु राषउसाहि, का० सु रष्यो पास ।

अर्थ—[शाहज़ादेने कहा,] "जिन्होंने जीवको [प्रेमसे] रँग लिया है, उन्होंने घट-घटमें आग लगा दी है; जिन्होंने [प्रेमके] हलके जलधरकी आर्द्रता ग्रहण की है, वे ही सुलेख (सुयश) को ऊँचा कर सके हैं ।"

टिप्पणी—घर < घट = शरण, अन्तःकरण । ओल्ह < आर्द्र । उसाह् < उत् + साध् = उन्नत करना (?) ।

[११३]

'सुलतांण फुरमाण दीना'[1] ।
'लइ टुकरे गउष परि चीना'[2] ।
'फकीर लूटणइ लागे'[3] ।
'सादानइं वाजणइ लागे'[4] ॥

पाठान्तर—१. अ० सुलतांणि फुरमाण दीना । ४. घ० सादाने वागे । १,२,३,४. का० में ये वाक्य नहीं हैं, और इनके स्थानपर है : वचनिका । जां लगि दीप निछत्र द्रू दायम । ता लगि साहिजादा साहिबा कायम । जां लगि मेरु मेखला सायर । दीपै शसि जाम दिवायर । अविचल जां लगि धरती अंबर । ब्रह्मा विष्णु रुद्र रिषेसर ।

अर्थ—सुलतानने फ़रमान दिया और टुकड़ोंको गवाक्षपर चुन दिया गया। फ़कीर [उन्हें] लूटने लगे और [लोग] बाजोंको बजाने लगे ।

[११४]

वज्जे 'वज्जत'[1] वज्जीया 'हूआ हूअंदे'[2] काइ ।
जीमी 'जीवइ कुतबदी'[3] मूआ वहंदा 'साहि'[4] ॥

पाठान्तर—१. का० वाजित्र । २. का० हुई हुयंदी । ३. का० जावो कुतबदी । ४. का० गई बहुते ['साहि' शब्द छूटा हुआ है], घ० जिन नामना न जाइ ।

अर्थ—बाजे बजते हुए बज उठे, होते होते क्या हो गया ? पृथ्वी-तलपर कुतुबुद्दीन [अब भी] जी रहा है, [जब कि] बहुतेरे शाह मृत (विस्मृत) हो गये ।

टिप्पणी—जिमी <ज़मीन [फ़ा०] = पृथ्वी ।

■ ■

पाठ

कुतुबशतकका वार्त्तिक तिलक

[निम्नलिखित पाठ सं० १७२२ में लिपिबद्ध की हुई अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेरकी प्रति सं० ४७ के अनुसार है, जिसकी प्रतिलिपि राजस्थान विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके एक प्राध्यापक डॉ० हीरालाल माहेश्वरीने की थी। यह तिलक पूरी रचनाका नहीं उसके छन्द २-३ का ही है।]

दिली तखत पेरोज शाह सुलितांन थांना।
तिसकै साहिजादा कुतबदी जुवांनां।
बरस नव तीस उमरह प्रमानां।
बीवीयैं लाजलौ भौ बंधानां॥
डोसीयो आगै बीबी बिवाना बैठी।
तिन्हौं पंचसै हथ सोवन लठी।
बारीयां बेलीयां नैनौं दिषावै।
पैं साहिजादा उन आगैं सरकणैं न पावै॥

(१) दिल्ली कैं तषत सुलतांन पेरोज स्याह षतम बादस्याहान बादस्याही करै। सु कैसा एक पातिस्याह। दस लाष हाथी। बीस लाष असवार॥ कौंन कौंन उमराउ। करैकंन दाज उजीर। कालू चवर ढाल उजीर। मलिक सरूप सौद्घावर। मीयां चिमनषां सिलहदार। हिसाम मलूक सभा चातुर। राव सिंघ पाल राव गंग। पातल नेतल संग। ह्वंद हेजम ओढण गडे. ड. गषड.। मोल्हण ठाकुर। रायो चेतन सेवड़ा। ए सुलतांन पेरोज षतम बादिस्याहके मज[लि]सी उमराव॥ चौदाह सै हरम चालीस हरम की चौकी। एक एक राति आवै॥ तिसके च्यारि बेटे। स्याह दरीया। स्याह एदल। स्याह महमंद। स्याह षुन्नी महमद। ए च्यारि बेटे॥ तिसकै पेरोज षां सिकारी। तिन दरियाव की मछी मारी। आहु षांना पेरोज षां सौं पैदा हुवा॥ बकरा हिरण सो लडावै। अैसा सुलतांन। पेरोज साह षतम बादिसाह॥

(२) तिसकी निवै बरस की उमर हुई। आँषैं की पलकौं गालै सौं आई लगी। पातिसाह देषणै सौं रहा। तब पलकों सौ रेस के डोरे लगे रहै। ज्यौं रंग-

रेज चूनड़ी कौं बंद देता है। जब कीसी उमरावका काम होता होय। तब पातिसाह तषत आइ बैठै। पलकौं के डोरे पैंचि दिस तारै सौं बांधीए। तब पातिसाह को नजरि आवै। हाथी का हाथी। घोड़े का घोड़ा। आदमी का आदमी नजरि आवै। मुहल्ला ले पातसाह उठै।

(३) तब सिकार सौं बहुत प्यास पातसाह का रहै। पै घोड़ै असवार हुवा न जाय। तब सिकार काहे की देषीयै। तब गिलम ऊपर ऊजली सितारे की चादरि बिछाय तिसपर चीनी सकर बषेरीयैं। सकर कौं आय माषी लगै। तब मकड़ी माष्यौं पर छोड़िए। सो मकड़ी चीते की। चीते की नाहायति दौडि कै मषी कौं पकडै। ज्यौं हिरण कौं चीता पकडै। तब पातिसाह बहुत षुसियाली होय। सु अैसी मकडी की सिकार पातिसाह जी देषै। जंगल की सिकार सौं रहै। तब अैसी मकडी की सिकार देषै। अैसे मों सुलतान पेरोज साह पतम। बादिसाहान अैसी पातिसाही का धणी॥

(४) एक दिन तख्त पर ब्यास करता हुवा ज मेरे च्यारि बेटे। परि असल पातिसाह जादा कोई नहीं। किसी पातिसाह की बेटी ब्याहीए। तिसके पेट का असलि पातसाहजादा होइ तौ भला। पातिसाह षुदाइ की बंदिगी करणै लागा। दिलवजातह दिल होय एक तन मन एक ध्यान होय। चित सौं लव लगाइ षुदाय की बंदिगी करणै लागे। पाव उरि करै। सिर नीचा रषै। सोना रूपाकी जंजीर सौं पातस्याह औधे लटकै। आपणे साहिब कौं यादि करै। आषरि तू। बातल तू। जाहिर तू। है हूंदा। है दंदा। सरोस की बंदगी करै। तसबी पातिसाह चारचौ पहर यादि करै। पहर र फजरि। सुबही पहर। साम के वक्त की अर च्यारि पहर अपने उमरावै का हाथी घोड़ा का, मलिक मुलिक के षबरिदार चिहुरा मुहुला के होय। षुब चुस्त बंदगी खुदाय की थी। तब साहिब मिहरबान हुवा।

(५) नब्बै बरष की उमर मौं समरकंद के पातसाह का नालेर आया सुलतान सलेम का। पातिस्याह पेरोज साहि पतम बादिसाहि कौं। पातसाह कौं फेरि जवांनी चढी। बहुत षुषाल हुवा। षुदाय को आदि करता हुवा। ए पाक परवर दिगार तु बडा साहिब करीम मिहरबान। कोई अैसी नबै बरस की उमरमें बेटी कौन कै दे पै तू दे। मोतियन का सेहुरा सैं बांधि पातिसाह परणनै कौं असवार हुवा। जाय समरकंद के पातसाह की बेटी ब्याही। अष्त काजी यौं पढै। पातिसाह के दिलके दरद कढे (कढै ?)। पेरोज साह मैं बीबी बिवांनां ब्याही।

(६) सु बीबी बिवांनां अवलि बहुत सुरति जमाल। षूब फहिम आकलिकार। किसी कै काजी मुला कै आगैं पढाए तौ इल्म आवै। किसी कौ पंडितो पास

रषीए तौ बिद्दा आवै। बीबी बीवानां कौं फारसी। हिंदुही। च्यारौं ही हकीकति। तरीक बेद की। कुरांन की। षुदाय की इन्याइति रहम सौं। दिल मही थी। पैंदा हुई। अैसी बीबी बिवानां पातसाह कौ ब्याही। पेरोज षत्म बादिसाह दिल्ली आऐ।

(७) दिल्ली आइ फेरि पातसाह षुदाय की बंदगी करने लागे। किस वासतै बंदिगी करनै लागे। कि साहिब मिरवान बीबी बिवाना कौ पहलै हीं एक अवल फरज्यंद का पेट रहै। अवल बीबी बिवानां कौ फरज्यंद होइ। अैसी बंदिगी करता करतां षुदाय मिहरवान हुवा। बीवी बिवांनां कौ फेरि पेटि उमेद रहै।

(८) यक रौज फजर का वष्त है। बादिसाह तष्त पर आय बैठे। मिसाष करनै लागे दात्यौंण। अैसे मै बीबी बिवानांकी दाई हरमषानै सौ दौडी ही आई। पातिसाहि पूछया कि दाई क्यों आई। आलमपनाह सलामति षुस षबरि ल्याई। बीबी बिवांनां कौं पेट की उमेद रही। पातिसाह हुकम कीया कि दोय लाष रुपैए बिवांनां ऊपर कुरबांन करी षैर करो। ए दाई तू ब माग क्या मागती है। पातसाह सलामति मै क्या मागौं। मांगणै लायक पातिसाह नै बदी करी नाह। अैं दाई कुछू तू मांग। जीवो पातसाह सलामति मैं क्या मागौं। जिस रोज बीबी बिवांनां कै फरज्यंद होय। तिस रौज बादिसाह की जौष आवै सु दीजीए षूब।

(९) हुकम षुदाइ का अैसा हुवा। कि बीबी बिवांना कै फरज्यंद हुवा। उमेद की षबरि पर दोइ लाष रुपैए कुरबान हुवए थे। अब तौ लाषौं। करोड़ौके मुह कुरबान होते हौ। दिली कै बाजारि ठौर ठौर मोती अवछाड़ीयै है। डेरै डेरै ठौर ठौर नवबतो बाजतो है। पातिसाह के मनच्यंते कारिज हुए।

(१०) एक रोज गुजरांन हुवा। दूसरा रोज गुजरान हुवा। तीसरा चौथा पांचवां छटै ठै रोज बीवी बिवांना नौं षूद सायति मै गुसल किया। सिर मै पानी डालि कपड़े पिहने। सहजादे कु न्हुलाइ कै कपड़े पिन्हाए। ताज कुलह की ताषी सिर पर रषी। दाई कपड़े पिन्हाइ ले पातसाह की नजरि पेस कीया। तब पातसाह की नजरि अैसा आया। तो। सा माहीना एक का लडिका होय। पातसाह नै हुकम दीया। ए दाई साहिजादा फेरि माहीने का होई तब नजर करिये। फेरि फेरि महीने कौं और पातसाह की नजरि। साहिजादा राषा तब पातिसाह की नजरि साहिजादा अैसा आया। तैसा महीना तीनि का लरिका नजरि आवै। अैसा देषा पातसाह उमराउ सौं बोले कि साहिजादा बहुत अजमति पैदा हुवा। कि हां हजरति साहिजादा षूब अजमति पैदा होइगा। बरषुरदार उमरदराज होंह।

(११) पातिसाह् कह्या कि यारो उलमावो । पंडितो, कुछ साहिजादे का नाव षुब सा राषौ । उलमा वा पंडित बोले कि पातिसाह् सलामति पहिलौ तस पातसाह् कौंन नाम रषै । कि भा, यारो बडा भाई ह्यंदू छोटा भाई मुसलमान । हिन्दूई मौं पंडित नाम रषौ । सोई नाम षूब । तब पंडितां आपणा सास्त्र देष्या । तब साहिजादा कुतबदीन नवल नाम नजरि आया । पंडित कहते नाही, पातसाहि बोले, क्यौं यारो क्यौं बोलते नाही । कि जीवो पातसाह् सलामति । ए उलमा भी आपना फाल देषौ, हजरति भी आपना फाल देषौ । तब हम कहैंगे । तब पातसाह् नै भी फाल देषा । तब पातसाह् कौ भी कुतबदीन नवल नाम नजरि आया । तब ताई उलमा व पंडित बोले नाही । पातसाह् लागे पूछणै । क्यौं यारो बोलते क्यौं नांही कि अवलि पातिसाहि बोल्यौ । तुमारे फाल मैं क्या नाम नजरि आया । तब पंडित उलमाव बोले साजगार बरषुरदार हमारे फाल मैं भी याही नाम है । साहिजादा कुतबदीन नवल नाम दीया । पातसाह् नौ । नाम देकर साहिजादा हरमषानै मै ले गए । कि बीबी बिवांनां तुम्हारे बेटे का नाम साहिजादा कुतबदीन नवल नाम दीया है । बिवांनां तसलीम करि कहा की षूब कीया ।

(१२) पातिसाहि कहणै लागै कि बीबी बिवांनां हमारी एक अरज है । हजरति क्यैसी क्या अरज है । तब पातसाह् बोले कि कुतबदीन नवल का एक व्याह् ढूंढि कैं पैदा करो । तब बीबी बिवांनै बोली । पातसाह् तुम कुतबदं.न नवलको एक व्याह् का नांव क्यौं लीया । कुतबदी दिल्लीके घर पातिसाहजादा पैदा हुवा । बहुत बंदिगीका फरजंद है । इसकै वासतै तुम कौंण कौंण बंदिगी षुदाय की है की । तिसको एक व्याह् का नाव् क्यौं लीया । एक सैं सौ व्याह् कुतबदी के हमेसौं करै । तौ भी किसी बात की कमी नाही । एता जबाब बीबी बिवांना नै दीया । तब पातसाह् बोले बीबी बिवांनां कुतबदीन नवलके हम बहुत व्याह् करैंगे । मैं अवलि व्याह् कुतबदीका तहां करैंगे जहां लड़िकी सुरति जमाल होइगी । षूब फहीम होइगी जैसा पष होइगा । मां साहिजादी । बाप साहिजादा । नानी साहिजादी । नाना साहिजादा । अैसे पष सूरति पाक फहमदार ए तीन बस्त जिस लड़िकी मै होइगी कुतबदीन नवल कौ अवलि तही व्याहैगे । पीछै व्याह् और बहुतेरे करेंगे । यह जबाब पातसाहि नै कीया । तब बीबी बिवांना फेरि बोली । पातसाहि सलामति यह बात दरोग लगती है । दरोग किस वास्तै । कि होजरति सूरति पाईगी तौ फहीम कहा (कहां) पाईएगी । अर फहीम पाइएगी तौ पष कहा पाईएगी । तिस थे याह बात दरोग लगती है । पातसाह् बोले ए बीबी जिस षुदाय नै हमकौं कुतबदी बेटा दीया है सो अलाह् कुतबदी कौं

अैसा ब्याही भी देइगा। तब बीबी बिवाना बोली। पातिसाह अलह तौ इस-सौं भी आले आले देगा। पर मुसकलि सौं पैदा होहिंगे। पातसाह बोले षुब बीबी या मुसिकल यासान सांब अलाह ते होइगी। पै कुतबदी षुब जतन सौ राष्या चाहिए। जहां तक षूब ब्याह ढूंढि करि पैदा करौं।

(१३) तब ग्यारह सै आदमी कुतबदीन नवल पास रषे तिसमैं पंज सौं बूढी। तिन्हौ कै हाथ पंच सै सोवन लठी। छिह सै छडीदार सोनेकी छडी लिये रहौ। तिन्हौ को पातिस्याह हुकम कीया कि वारीया बेलिया नैना दिषलावो। पैं साहिजादा अनंत जाणै न पावै। ग्यारह सै आदमी असी भाति रषै। तिन्ह कौ य हकीकति फुरमाई जु कौडी लायक आदमी आवै तिसकौं लाष देहुं तौ लाष दीजीयौ। फेरि जुवाब करणै न पावै। पीछै षाल काढूंगा। एक सौ मुहर की हिमानी दरवाजै की षैर कौ, साहजादै कौ, कोई मत पूछियौ। सौ मुहुर उपरांति कोई बड़ा गुनी आवौ तिसकी साहिजादे कौ मालूम होई तब बिदा होई।

(१४) सोनेके तुके कुतबदीन नवल चलावैं। तिसपर अज्ञातच लीषीए। जो पावैं तिसही का। कोई किस ही कै हाथ सौ लेणै न पावै। आठवै रोज जुमा-राति आवै तिस रोज पंज पंज हार के दो ईराकी बकसीए सो किस रौस बकसए, पचीस पचीस मुहर कौ गज एक कीं नीलक षरीद की तिसका जीन करिए, कचे सूत सौं नग जौ हार परोए यह मेलि करि घोडेके गले यौ बांधीए अपनी समसेर जमधड़ कौं कचा सूत से परोईए। नग बाँधीए। तूझे ढूंढनेवाले कगा[ल] आठवै रोज दिली कै बडे बाजार आइ जमा होई, नगोकी दोस्ती कुतबदीन नवल घोड़ै को षुरी करावैंगे, मसालो के चांदणै असवार के डील सौं तारे से नग टूटि टूटि परैंगे मसालैंको उजियारे गरीब लूटहिगे, आप षुसाल होय साहिजादा दरवाजै षासै आई उतरै जब जिसकौं हाथ पहली बाग लागै उसका ही घोड़ा, कुदरति नाही उसके हाथ सौ कोई और लेणै न पावै एक दोइ नग लगे रहै सो उसके वष्त के दूसरा घोड़ा उसही रौस का फेरि रास होंणै लागा।

(१५) आप अंदर षाणां षाणें कु आए छ सै छडोदार बाहरि षड़े रहै पंज सौ बूढी साथ अंदरि गए जाई बीबी बिवांनाकी हजूरि षाणा षाणैं कौं बैठा। कुतबदीन नवल ह्यंदूगी तुरकी कुरान भी हाजरि हुऐ अवलि पुरान वाला बोला साहिजादे सलामति बहुत षुब सायति का वक्त है एक निवाला उठायए। होम कुरानवाला बोला ए साहिजादे बहुत षूब सायति का वक्त है घुट एक ठंढा अब पाणी की लीजिए, योगिणी पाणीकी घुंटै, ईस ही रौसनिवाले गिणे, कुतबदीन नवल षाणा षाय करी बाहरि आया दूसरा घोड़ा उसही रौसका फेरि करि आया

हाजिर हुवा फेरि मसालांकी रोसनाई मी पुरी करावते नंग लुटावते आपणे महल आए।

(१६) महल सुलतान पेरोज षतम बादिसांह नै सहर बाहिरे कराए किस वास्तै जु दुनियां की बतास पवन लागनै न पावै दुनिया का जनावर ईस की नजरि न आवै दुनिया का दरष्त उसकी नजरि न आवै जु ईस की नजरि पड़ै सु जंगल का ही जनावर जंगल का ही दरष्त जंगल का ही देषै पवन भी लगै सु जंगल की ही लगै।

[समाप्तिकी पुष्पिका नहीं है, इसलिए ज्ञात होता है कि प्रति अपूर्ण छोड़ दी गई थी, प्रतिलिपि भी यहींपर समाप्त हुई है।]

■ ■ ■